श्री तीर्थंकर—चरित्र

प्रथम भाग ।

लेखक—

श्री बालचन्द श्रीश्रीमाल

प्रकाशक—

श्री साधुमार्गीजैन पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी

महाराज की सम्प्रदाय का हितेच्छु
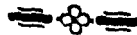
श्रावक-मण्डल रतलाम

द्वितियावृत्ति १०००	सम्वत् २००७	मूल्य ॥)

प्रकाशक—

श्रीसाधुमार्गीजैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज
की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक—मण्डल
रतलाम (मालवा)

प्राप्ति स्थान
श्रीसाधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज
की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक-मण्डल रतलाम

मुद्रक
सूरजमल जैन
श्री जवेरी प्रिं० प्रेस, रतलाम

भूमिका ।

भगवान तीर्थङ्कर का चरित्र लिखना—या वर्णन करना—कोई सरल कार्य नहीं है उसमें भी सांसारिक प्रपंच में फँसे हुए व्यक्ति की इस विषय में की गई चेष्टा, अनधिकार चेष्टा है। इस महान् कार्य को तो भगवान गणधर, या कोई महान् आचार्य ही कर सकते, हैं, दूसरे की शक्ति से यह कार्य परे का है फिर भी मैंने यह दुस्साहस क्यों किया, इसका कारण पाठकों को बताना मेरे लिए आवश्यक है।

श्री साधुमार्गी जैन पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदायिक हितेच्छु श्रावकमण्डल रतलाम द्वारा संचालित श्री धार्मिक परीक्षा बोर्ड के कोर्स में 'तीर्थङ्कर चरित्र' भी है। कोर्स में तीर्थङ्कर—चरित्र तो अवश्य है परन्तु ऐसी कोई सरल और सुगम पुस्तक नहीं है जिसके द्वारा परीक्षाबोर्ड की परीक्षा में सम्मिलित होने वाले छात्र, भगवान तीर्थङ्कर का चरित्र सरलता से और थोडे में जान सकें। आचार्य श्री हेमचन्द्राचार्य द्वारा निर्मित 'त्रिषष्टिश्लाघापुरुष जीवनचरित्र में भगवान तीर्थङ्कर का चरित्र है, परन्तु वह बहुत बड़ा ग्रन्थ है। विद्यार्थियों के लिए उस महान् ग्रन्थ का लाभ प्राप्त करना, एक कठिन-सा कार्य है

इसके सिवा त्रिषष्टिशलाघा पुरुष जीवन चरित्र गुजराती में है
इस ग्रन्थ से यत्किंचित लाभ उठाने के लिए गुजराती का ज्ञान
आवश्यक है, जो सब विद्यार्थियों के लिए सम्भव नहीं है। फि
परीक्षा बोर्ड की परीक्षा देने वाले विद्यार्थीगण तीर्थङ्कर चरित्र
कैसे परिचित हों? इस प्रश्न ने एक ऐसी पुस्तक की आवश्क
बताई, कि जिसके द्वारा विद्यार्थीगण थोडे में सरलतापूर्वक भ
वान तीर्थङ्कर के चरित्र से परिचित हो सकें इस आवश्कता की
पूर्त्ति के लिए ही मैंने यह पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक को लि
खने में मैं अपनेआप को सफल हुआ नहीं मानता। मान भी
कैसे सकता हूं। जब मैं, तीर्थंकर भगवान का जीवन चरि
लिखने का अधिकारी ही नहीं हूं तब असफलता स्वभाविक है
फिर भी यह पुस्तक उन कतिपय विद्यार्थियों के लिए अवश्य
लाभ देने वाली होगी, जो थोडे में भगवान तीर्थंकर के चरित्र
से परिचित होने की इच्छा रखते हैं, और जिनका हित दृष्टि में
रखकर यह पुस्तक दो भाग में लिखी और प्रकाशित की गई हैं।

इस पुस्तक का मूल आधार शास्त्र और त्रिशष्टिश्लाघा पुरुष
जीवनचरित्र ग्रन्थ है। यद्यपि इन दोनों आधार पर भगवान
तीर्थंकर का अलंकार—एवं विशेष व्याख्यापूर्ण जीवनचरित्र
बहुत बड़ा लिखा जा सकता है, परन्तु यह निर्दिष्ट न था।
ऐसा करने से तो विद्यार्थियों के सामने बड़ी कठिनाई आ
खडी होती, जो त्रिषष्टिश्लाघा पुरुष चरित्र के विषय में ऊपर

बताई गई है। इसलिए विद्यार्थियों की सुगमता को दृष्टि में रख कर, पुस्तक में भगवान तीर्थंकर के जीवन चरित्र अलंकार एवं विशेष व्याख्या रहित ही दिये गये हैं। बल्कि अनेक जगह आने वाला एक ही प्रकार का वर्णन भी एक से अधिक जगह नहीं दिया गया है और इस प्रकार पुस्तक के कलेवर को बढ़ने से रोका गया है इन सब कारणों से पुस्तक में त्रुटि होना आश्चर्य की बात नहीं है। आशा है कि त्रुटियों के लिए सज्जनगण हमे क्षमाकरेंगे और त्रुटियोंसे सूचित करने की कृपा करेंगे,जिसमें हम पुस्तक की उन त्रुटियों से विद्यार्थियों को भी सूचित कर सकें और भावी संस्करण में उन्हें मिटाने का प्रयत्न भी कर सकें।

पुस्तक के विषय में, हम विद्यार्थियों को यह सूचित कर देना आवश्यक समझते हैं कि हमने पुस्तक का कलेवर न बढे इस दृष्टि से बहुत सा ऐसा वर्णन—जो प्रत्येक तीर्थंकर के चरित्र में आना चाहिए था—संकोच लिया है और वह वर्णन किन्हीं भी एक तीर्थंकर के चरित्र में कर दिया हैं। जैसे पाँच कल्याण वर्णन, नगर और क्षेत्र का वर्णन ; राज्य सम्पदा का वर्णन दान वर्णन आदि। अतः किसी एक चरित्र में वर्णित ऐसी बातों के लिए यह न समझ लिया जावे कि यह घटना केवल इसी चरित्र के लिए है

श्री अ. भा. श्वे. स्था. जै. का. के अजमेर अधिवेशन के ठहरावनुसार, पुस्तक को प्रकाशित करने के पूर्व कान्फ्रेन्स

द्वारा सर्टिफाई (प्रमाणित) कराना चाहिए था और इस ठहराव का पालन करने के लिए, हमने पुस्तक तयार होते ही पत्र नं० ५६०—३०। ५। ३३ के द्वारा कान्फ्रेन्स आफिस को लिखा था कि पुस्तक कहाँ भेजे ? इसके उत्तर में आफिस ने हमें पत्र ता० ११। ६। ३३ द्वारा लिखा था कि हम इस विषय में फिर लिखेंगे। परन्तु कान्फ्रेन्स आफिस ने इस विषय में कुछ नहीं लिखा। हमने पत्र नं० ६५२—२३-६-३३ द्वारा कान्फ्रेन्स आफिस को फिर लिखा कि यह पाठ्यपुस्तक है, जिसका छपना आवश्यक है, अतः आप इसके विषय में शीघ्र प्रबन्ध करें, अन्यथा विवश होकर पुस्तक छपवानी पडेगी। कान्फ्रेन्स आफिस से इस पत्र का हमें कोई उत्तर नहीं मिला फिर भी हमने पुस्तक का कुछ भाग जयपूर भेज कर वहाँ विराजित शतावधानी पं० मुनि श्री रत्नचन्दजी महाराज की दृष्टि में निकलवा लिया। यह पुस्तक विशेषतः बच्चों के लिए ही लिखी गई है, और यथासम्भव हमने सावधानी से भी काम लिया है, फिर भी हम पुस्तक की त्रुटियों को दूर करने के लिए सदैव उद्यत हैं। इतिशुभम्।

रतलाम
महा सुदि १ २००७

निवेदक—
श्री बालचन्द श्री श्रीमाल

ए था और इस
तयार होते ही
आफिस को
में आफिस ने
कि हम इस विषय
ने इस विषय में
३-६-३२ द्वारा
पाठ्यपुस्तक है।
विषय में शीघ्र
ना। पड़ेगी।
नहीं मिला
भेज कर वहाँ
महाराज की
बच्चों के लिए
से भी
को दूर करने
इतिशुभम्।

श्री श्रीमाल

चारित्र—सूची।

नाम

भगवान श्री आदिनाथ।

पूर्व-भव

श्लोक—

आनन्द मन्दिर मुपैमितमृद्धि विश्व
नाभेय देव महितं सकला भवन्तम् ।
लब्ध्वा जयान्तियतथो भव यांधमादौ
नाभेय देव महितं सकला भवन्तम् ॥

यह जम्बू द्वीप तिर्छे लोक के असंख्य द्वीपों के मध्य में है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई, एक लाख योजन है। इसके अन्तर्गत, भरत, ऐरावत आदि मनुष्यों के निवास के दस क्षेत्र हैं।

भरत क्षेत्र में, क्षिति प्रतिष्ठित नामक एक नगर था। इस नगर के राजा का नाम, प्रसन्नचन्द्र था। इसी नगर में, धन्ना सार्थवाह नाम का एक प्रतिष्ठित, समृद्ध, एवं यशस्वी साहुकार रहता था। एक समय, धन्ना सेठ व्यापार निमित्त अन्य देश में जाने को तैयार हुआ। उसने, नगर में यह घोषित किया कि ,मैं, व्यापारार्थ वसन्तपुर जा रहा हूँ, अतः मेरे साथ जो भी चलना चाहे, चले; मैं, उनकी सब प्रकार से सहायता करूंगा। धन्ना सेठ की इस घोषणा के परिणाम-स्वरूप, नगर के बहुत से लोग, धन्ना सेठ के साथ वसन्तपुर जाने के लिए तैयार हो गये। पूर्व समय का प्रवास, आज की तरह सरल न था। इसलिए आत्म-रक्षा की दृष्टि से, प्रत्येक प्रवास करनेवाले को, किसी न किसी के साथ की आवश्यकता रहा करती थी। धर्मघोष आचार्य को भी वसन्तपुर की ओर ही पधारना था, इसलिए वे भी अपने सन्तों सहित धन्ना सेठ के ही साथ हो लिये।

नगर के दूसरे लोगों एवं धर्मघोष आचार्य सहित, धन्ना सेठ, वसन्तपुर की ओर रवाना हुआ। चलते-चलते मार्ग में ही वर्षा ऋतु आ गई, इस कारण सार्थवाह धन्ना सेठ को पड़ाव डाल

कर रहना पड़ा। धन्ना सेठ अपने साथियों सहित पड़ाव डालकर रह गया है, यह देखकर धर्मघोष आचार्य भी, पर्वत की कन्दराओं में चातुर्मास विताने के लिए चले गये। संयोगवश, धन्ना सेठ को इन मुनियों का स्मरण न रहा, इस कारण वह मुनियों की साल-सम्हाल भी न कर सका। जब चातुर्मास समाप्त हुआ और फिर आगे चलने की तैयारी होने लगी तब धन्ना सेठ को मुनियों का स्मरण हुआ। वह कहने लगा, कि मेरे साथ जो मुनि आये थे, वे कहाँ हैं? अपनी घोषणा के अनुसार [illegible] न तो उनकी खबरगीरी ही की, न किसी प्रकार की सेवा [illegible] इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ, धन्ना सेठ, [illegible] विराजित आचार्य की सेवा में उपस्थित हुआ और [illegible] अनुनय-विनयपूर्वक उनसे प्रार्थना करने लगा कि [illegible] से आप विस्मृत किये गये। इस कारण [illegible] न ले सका। आप मेरा अपराध क्षमा करें और [illegible] ग्रहण करें।

धर्मघोष आचार्य, सेठ के [illegible] के लिए पधारे। दान देने के लिए धन्ना [illegible] के देवताओं को भी आश्चर्य हुआ [illegible] करने के लिए, देवताओं ने [illegible] अपने पात्र को देख [illegible] हुआ घी, पात्र भर [illegible]

घी डालता ही रहा। परिणामों की उत्कटता के कारण, वह यही समझता रहा, कि मेरा वहराया हुआ घृत तो पात्र में ही जा रहा है। सेठ के दृढ़ परिणामों को देखकर, देवताओं ने, अपनी लीला समेट ली और दान का माहात्म्य बताने के लिए, वसुधारादि पाँच द्रव्य प्रकट किये।

इस उत्तम दान के प्रभाव से, धन्ना सेठ ने तीर्थङ्कर नाम गोत्र के योग्य पुण्य-सम्पादन किया। पश्चात्, सुख-पूर्वक अपनी शेष आयु समाप्त करके इस भव को त्याग कर, उत्तर कुरु-क्षेत्र में युगुलिक * हुआ।

उत्तर कुरु-क्षेत्र भोग भूमि है। वहाँ के मनुष्यों (युगलयों) की अवगाहना, तीन गाऊ (कोस) की होती है और तीन पल्योपम की आयु होती है। दस प्रकार के कल्पवृक्ष, उनकी इच्छा की पूर्ति करते हैं। उन्हें, तीन दिन में अहार की इच्छा होती है। वे मनुष्य, सरल परिणामी, अल्प कषायी तथा अल्प विषयी होते हैं और सदा प्रसन्नचित्त एवं महा सुखी रहते हैं। वे लोग आयु भर में केवल एक बार युगल सन्तान (एक ही साथ एक पुत्र और एक पुत्री) उत्पन्न करते हैं और वह भी आयु के छः मास शेष रहने पर। उन्हें अपनी सन्तान का पालन-पोषण, केवल

---

* युगुलिया, उन मनुष्यों का नाम है, जो भोग-भूमि में, एक पुत्र और एक कन्या, साथ ही उत्पन्न होते हैं।

४६ दिन तक करना होता है। पश्चात् वे युगुल (पुत्र-पुत्री) युवक युवती पति पत्नी के रूप में स्वतंत्रता से रहने लगते हैं।

प्रकृति की विशुद्धता के कारण, वे युगुल्ये अपनी आयु समाप्त करके, देव-गति में ही जाते है। धन्ना सेठ का जीव भी युगुल्या का भव त्याग कर, देवलोक में देवता हुआ।

इसी जम्बू द्विप के पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में, गान्धार नामक देश था। वहाँ के राजा का नाम शतबल था। शतबल के, चन्द्रकान्ता नाम की रानी थी। देव-भव-धारी धन्ना सेठ का जीव देवताओं के दिव्य भोगों को भोगकर, आयुष्य पूर्ण होने पर, राजा शतवल की रानी चन्द्रकान्ता की कुक्षि से उत्पन्न हुआ। यहाँ उसका नाम महाबल रखा गया। महाबल, सब विद्याओं एवं कलाओं में पारंगत हुआ। महाबल युवक होने पर, राजा शतबल ने, उसके साथ अनेक राजकन्या विवाह दीं। पश्चात्, समय देखकर शतबल ने राज-भार महाबल को सौंप दिया और स्वयं संयम में प्रवर्तित हो गया। बहुत काल तक संयम की आराधना और अनेक प्रकार के तप करके, शतबल स्वर्गवासी हुआ।

राजा महाबल, नीती-पूर्वक राज्य करने लगे। महाबल के, प्रधानतः चार मन्त्री थे, जिनके नाम स्वयंबुद्ध, सम्भिन्नमति, शतमति और महामति थे। इन चारों मन्त्री में से, स्वयंबुद्ध तो सम्यक्त्वधारी एवं धर्मपरायण था और शेष तीन मंत्री,

मिथ्यात्वी थे। तीनों मिथ्यात्वी मंत्री तो, राजा महाबल को संसार में ही फ़ँसाये रखने की चेष्टा करते रहते थे, लेकिन स्वयंबुद्ध मंत्री, समय-समय पर राजा को धर्मोपदेश द्वारा, संसार से निकलने के लिए सचेत करता रहता था। महाराज महाबल भावी तीर्थंकर था, इसलिए उसे स्वयंबुद्ध मंत्री की बात पसंद आना स्वभाविक था। एक दिन राजा महाबल अपनी आयु समाप्ति के सन्निकट आन पंहुची है यह जानकर स्वयंबुद्ध मंत्री की बात से कहने लगा, कि मेरा हितचिन्तक तू ही है। तेरा हृदय मेरी भलाई के लिए सदा चिन्तित रहा करता है। मैं तो संसारिक विषयों में ही फँसा रहता, लेकिन तुने मुझे मोह-निन्द्रा से जागृत किया है अब तू यह बता, कि मैं थोडे ही समय में किस प्रकार आत्म-कल्याण करूं ! क्योंकि मेरी आयु बहुत कम शेष है।

महाबल के कथन के उत्तर में, स्वयंबुद्ध मंत्री कहने लगा, महाराज ! आप घबराइये नहीं, न खेद ही कीजिये। सच्चे हृदय से थोडे समय तक आराधा हुआ धर्म भी, कल्याण के लिए पर्याप्त हो सकता है आप राज-पाट त्याग कर, दीक्षा धारण करलें, तो इस थोडे समय में भी आत्मा का कल्याण कर सकते हैं।

महाराजा महाबल ने, स्वयबुद्ध मंत्री की बात स्वीकार करके राज-पाट त्याग दीक्षा ले ली। महाबल ने, दीक्षा लेने के दिन से ही अनशन कर दिया और बाईस दिन तक अनशन करने

के पश्चात्, शरीर त्याग, द्वितीय कल्प (ईशान्य देवलोक) में ललितांग देव हुआ। ललितांग देव की, स्वयंप्रभा नाम्नी प्रधान देवी थी।

उधर महाबल की मृत्यु का हाल जानकर, स्वयंबुद्ध मंत्री को भी संसार से वैराग्य होगया। उसने, भी गृह-संसार त्याग, दीक्षा ले ली और संयम की निरतिचार आराधना करके, समय पर शरीर त्याग, द्वितीय कल्प में सामानिक देव हुआ। देव होने के पश्चात् भी स्वयंबुद्ध, अपने पूर्व स्वामी महाबल-इस समय के ललितांग देव-का हितचिन्तक ही रहा, और स्वयंप्रभा देवी के विरह से पीड़ित ललितांग देव को, समझा-बुझाकर धर्मपर दृढ़ किया।

इसी जम्बू द्वीप की पुष्पकलावती विजय में स्थित, लोहार्गल नगर के राजा का नाम स्वर्णजंघ था। उसके, लक्ष्मी देवी नाम की रानी थी। ईशान्य देवलोक का आयुष्य समाप्त करके, ललितांग देव ने इस लक्ष्मीदेवी रानी की कुक्षि से जन्म लिया। यहां उसका नाम वज्रजंघ रखा गया। उधर अपने पति ललितांग देव के विरह से, स्वयंप्रभा देवी पीड़ पाने लगी। अन्त में स्वयंप्रभा देवी भी, देवलोक का आयुष्य समाप्त होने पर, इसी पुष्पकलावती विजय स्थित पुंडरीकिणी नगरी केराजा वज्रसेन की पुत्री हुई। यहां स्वयंप्रभादेवी का नाम श्रीमती हुआ

श्रीमती युवती हुई। एक दिन वह अपने महल की छत पर

बैठी थी, इतने में ही उस ओर से देवों के विमान निकले। उन देवविमानों को देखकर श्रीमती को जातिस्मृति ज्ञान (यह, मतिज्ञान का पर्यायवाची भेद है) हुआ। अपने पूर्व भव का वृत्तान्त जानकर, ललितांग देव का स्मरण आने से, श्रीमती ने मौन धारण कर लिया। उसकी सखियों ने उसका मौन तुड़वाने की बहुत चेष्टा की, लेकिन सब चेष्टाएं निष्फल हुई। अन्ततः श्रीमती को एक पण्डिता नाम्नी चतुर सखी ने, एकान्त में श्रीमती से उसके मौन का कारण पूछा। श्रीमती ने, पण्डिता से कहा कि जबतक मुझे अपने पूर्व भव का पति न मिलेगा, मैं किसीसे न बोलूँगी।

श्रीमती की सहायता से, पण्डिता ने एक पट पर, दूसरे देवलोक एवं ललितांग देव के विमान आदि का चित्र बनाया और चित्र में कुछ त्रुटि रहने देकर, चित्रपट को राज-पथ पर टांग दिया! उस चित्रपट के देखने से, कुमार वज्रजंघ को भी जाति स्मति ज्ञान हुआ। उसने, चित्रपट में रही हुई कमी मिटा दी। परिणाम-स्वरूप वज्रजंघ और श्रीमती का आपस में विवाह हो गया।

वज्रजंघ और श्रीमती, बहुत काल तक सांसारिक भोग भोगते रहे। पश्चात, शरीर त्याग कर, सरल परिणामों के कारण, उत्तर कुरुक्षेत्र में युगलिया हुए। वहाँ युगलिक सुख भोग कर, दोनों अपना आयुष्य समाप्त करके, सौधर्म देवलोक में गये।

ले ली। दीक्षा लेकर मुनि वज्रसेन ने, कठिन तप-द्वारा घातक कर्म क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त किया।

एक दिन, महाराजा वज्रनाभ के सन्मुख आकर शस्त्रागार-रक्षक ने, आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न होने की बधाई दी। इतने ही में, दूसरी ओर से, 'वज्रसेन तीर्थंकर को केवलज्ञान हुआ है' यह बधाई आई। इसी समय वज्रनाभ को, अपने यहाँ पुत्र-जन्म होने की भी बधाई मिली। चक्रवर्ती वज्रनाभ ने, सर्व-प्रथम तीर्थंकर के केवलज्ञान की महिमा की अर्थात् वन्दन, वाणी श्रवण, और सम्यक्त्व की प्राप्ति की और पश्चात् चक्ररत्न एवं पुत्र उत्पन्न होने के महोत्सव किये।

चक्रवर्ती वज्रनाभ ने, चौदह रत्न की सम्पत्ति से, छः खण्ड पृथ्वी का विजय किया और राजाओं एवं देवों को वश करके, दीर्घकाल तक चक्रवर्ती पद का उपभोग करते रहे। समय पाकर वज्रनाभ को संसार से वैराग्य हुआ और, वे, वज्रसेन तीर्थंकर के समीप दीक्षा लेकर, अनेक प्रकार के तप करने लगे। अन्ततः तीर्थंकर पद के योग्य बीस बोल की आराधना करके उत्कृष्ट रसद्वारा तीर्थंकर नाम उपार्जन किया और शरीर त्याग कर, सर्वार्थ-सिद्ध महाविमान में, तैंतीस सागर की स्थिति वाले सर्वोत्कृष्ट देव हुए।
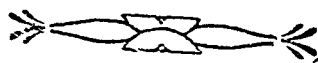
पास आये। छहों मित्र ने मुनि के रुग्ण शरीर में, लक्षपाक तेल का मर्दन करके, रत्न कम्बल द्वारा रोग कृमि निकाल गौशीर्ष चन्दन के लेप से, शरीर को नीरोग बना दिया।

अनुक्रम से छहों मित्र, संसार से विरक्त हो गये। छहों ने संयम स्वीकार कर लिया और अनेक प्रकार का तप करके, आयुष्य पूर्ण होने पर, बारहवें देवलोक में, महर्द्धिक देव हुए।

इसी जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में पुण्डरीकिनी नाम की एक नगरी थी। वहां, वज्रसेन नाम के महाराजा राज्य करते थे, जो तीर्थंकर थे। वज्रसेन महाराजा के धारिणी नाम की रानी थी। जीवानन्द वैद्य का जीव, बारहवें देवलोक का आयुष्य समाप्त करके, धारिणी रानी के गर्भ में आया। धारिणी रानी ने उसी रातमें, चौदह महास्वप्न देखे। महाराजा वज्रसेन ने, धारिणी रानी से महास्वप्न सुनकर, यह फल बताया, कि तुम चक्रवर्ती पुत्र प्रसव करोगी। समय पाकर रानी ने, सर्वलक्षण-सम्पन्न पुत्र प्रसव किया, जिसका नाम वज्रनाभ हुआ। जीवानन्द वैद्य का जीव तो वज्रनाभ हुआ, और जीवानन्द के शेष पाँच मित्र, वज्रनाभ के छोटे भाई हुए।

दीक्षा-काल समीप जानकर, लोकान्तिक देवों ने महाराज वज्रसेन से, तीर्थ प्रवर्ताने के लिए प्रार्थना की महाराजा वज्रसेन ने अपने पुत्र वज्रनाभ को राज्यारूढ किया और स्वयं ने दीक्षा

तपस्वी एवं शरीर की ओर से भी उपेक्षा रखनेवाले जान पड़ते हैं। इनका शरीर रोगी है, अतः ऐसे महात्मा के शरीर का रोग मिटाकर महान लाभ लीजिए। मुनि के शरीर को देखकर जीवानन्द वैद्य ने महिधर से कहा, कि इन महात्मा के शरीर में, कुपथ्य सेवन से रोग हुआ है। इस रोग को मिटाने के लिए लक्ष-पाक तेल तो मेरे पास है, लेकिन गौशीर्ष चन्दन और रत्नकम्बल मेरे पास नहीं है। यदि आप ये दोनों वस्तु ले आवें, तो मुनि की चिकित्सा हो सकती है और इनका शरीर स्वस्थ बन सकता हैं।

जीवानन्द वैद्य का उत्तर सुनकर, पाँचों मित्र, गौशीर्ष चन्दन और रत्न कम्बल लाने के लिए बाजार में गये। बाजार में जिन व्यापारी के यहाँ ये दोनों वस्तुएँ थीं, उसने कहा, कि इन दोनों का मूल्य तो दो लाख स्वर्ण मुद्रा है, लेकिन यह बताइए, कि आप ये दोनों वस्तु, किस कार्य के लिए ले रहे हैं। पाँचों मित्र ने, व्यापारी को उत्तर दिया, कि हमें इन वस्तुओं की, एक महात्मा के शरीर की चिकित्सा के लिए आवस्यकता है। व्यापारी ने, इन मित्रों को धन्यवाद देते हुए, दोनों वस्तुएँ दे दीं, और कहा, कि मैं इनका मूल्य न लूँगा, आप इन्हें लेजाकर मुनि के शरीर की चिकित्सा करिये।

पाँचों मित्र, दोनों वस्तु लेकर, अपने छठे मित्र जीवानन्द के

जंबू द्वीप के महाविदेह क्षेत्रमें, क्षितिप्रतिष्ठित नाम का एक नगर था। उस नगर में सुविधि नाम का एक वैद्य रहता था वज्रजंघ का जीव, सौधर्म देवलोक का आयुष्य पूर्ण करके, इस सुविधि वैद्य के यहां पुत्ररूप में जन्मा, जिसका नाम जीवानन्द रक्खा गया। जीवानन्द, वैद्यक में बहुत निपुण था। उधर श्रीमती का जीव भी, सौधर्म देवलोक का आयुष्य भोगकर, इसी क्षितिप्रतिष्ठित नगर में, ईश्वरदत्त सेठ के यहां पुत्ररूप में जन्मा

जीवानन्द वैद्य की, महिधर राजकुमार, एक प्रधान का पुत्र एक सेठ का पुत्र, और दो अन्य साहूकारों के पुत्रों से बड़ी मैत्री थी। एक दिन जीवानन्द वैद्य के पांचों मित्र, जीवानन्द वैद्य के यहाँ बैठे थे। उसी समय, वहाँ पर एक तपोधन, किन्तु व्याधि-पिड़ित मुनि पधारे। जीवानन्द वैद्य अपने व्यवसाय में लगा हुआ था, इसलिए उसने इन मुनि की ओर देखा भी नहीं। यह देखकर, महिधर राजकुमार ने जीवानन्द वैद्य से कहा मित्र, तुम बड़े स्वार्थी जान पड़ते हो! जहाँ निःस्वार्थ सेवा का अवसर होता है, उस ओर तुम ध्यान भी नहीं देते! योग्यता होते हुए भी परोपकार-रहित जीवन से क्या लाभ! महिधर की बात के उत्तर में, जीवानन्द ने कहा कि आप ठीक कहते हैं, लेकिन यह बताइये कि मेरे योग्य ऐसी कौनसी सेवा है? महिधर ने मुनि की ओर संकेत करते हुवे जीवानन्द से कहा कि ये मुनि,

अन्तिम भव ।

इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तथा द्वितीय आरे बीत चुके थे। तृतीय आरे का भी बहुत भाग व्यतीत हो चुका था, केवल चौरासी लाख पूर्व से कुछ अधिक काल शेष था। जम्बू द्वीप के इस भरत क्षेत्र में, उस समय भी, युगुल्या धर्म कुछ-कुछ मौजूद था। नाभिकुलकर नाम के युगुल्यों के राजा थे, जिनकी रानी का नाम मरुदेवी था। वज्रनाभ का जीव, सर्वार्थसिद्ध महा-विमान का आयुष्य भोगकर, भगवती मरुदेवी के गर्भ में आया। महारानी मरुदेवी ने, स्वप्न में, वृषभ, हाथी, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, महाध्वज, कुंभकलश, पद्मसरोवर क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि और निर्धूम अग्नि को देखा। इन चौदह महास्वप्न को देखकर, महारानी मरुदेवी जाग उठी और बहुत हर्षित हुई। वे शीघ्रही अपने पति महा-राज नाभि के समीप गई और उन्हें देखे हुए महास्वप्न सुनाये। महारानी मरुदेवी के महास्वप्नों को सुनकर, महाराजा नाभि, बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मरुदेवी से कहा—भद्रे, इन महास्वप्न के प्रभाव से तुम एक महा-भाग्यवान पुत्र को जन्म दोगी। पति की इस बात को, महारानी ने सादर शीश चढ़ाया और हर्षित होती हुई, अपने स्थान पर लौट आई। भगवान श्री ऋषभदेव का यह प्रथम कल्याण, आषाढ़ कृष्ण चतुर्थी को

हुआ। इस कल्याण का, इन्द्र और देवताओं ने भी महोत्सव मनाया।

महारानी मरुदेवी, यत्न पूर्वक गर्भ का पोषण करती रहीं। नौ मास साढे सात रात व्यतीत होने पर, वसन्त ऋतु में चैत्र कृष्ण अष्टमी की रात को उत्तराषाढा नक्षत्र में, सर्व उच्चयोग प्राप्त होने पर महारानी मरुदेवी ने, त्रिलोकपूज्य पुत्र को प्रसव किया। उस समय, ऊर्ध्व मध्य और अधः लोक उद्योतमय हुआ और क्षण भर के लिए नारकीय जीव भी आनन्दित हुए।

जिस समय तीर्थंकर भगवान का जन्म होता है, इन्द्रों के आसन, कम्पित होने लगते हैं। वे, अंगस्फूर्णादि से जान जाते हैं, कि तीर्थंकर भगवान का जन्म हो चुका अतः भगवान का जन्मकल्याण महोत्सव करने को, उपस्थित होते हैं। भगवान ऋषभदेव के जन्म समय भी एसा ही हुआ। इसलिए, सर्व प्रथम छप्पन दिक् कुमारियां, माता मरुदेवी की सेवा में उपस्थित हुई, और उन्होंने, जन्म-स्थान व उसके आस पास की भूमि शुद्ध करके प्रसूति कर्म योग्य सब प्रबन्ध किया। भगवान का जन्म होजाने पर, एक-एक करके त्रैसठ इन्द्र एवं असंख्य देव देवी, भगवान का जन्म कल्याण महोत्सव मनाने के लिए, मेरु पर्वत पर एकत्रित हुए। पश्चात् सौधर्मपति शक्रेन्द्र महाराज, महारानी मरुदेवी के भवन में पधार कर, भगवान तथा माता को प्रणाम किया और अवस्वापिनी निद्रा द्वारा महारानी

मरुदेवी को शान्त करके, भगवान को, जन्मकल्याणार्थ मेरु पर्वत पर ले गये। वहां पर क्रमानुसार सभी इन्द्रों ने भगवान को स्नान करा, वस्त्राभूषण पहनाये और उनकी पूजा-प्रार्थना की। एकत्रित देव-देवी ने भी गान-वाद्य द्वारा, भगवान के जन्म कल्याण का मंगल मनाया। यह हो चुकने पर, दक्षिणार्द्ध लोक के स्वामी शक्रेन्द्र महाराज भगवान पर छत्र चामर आदि करके, जयध्वनि से गगन-मण्डल को गुँजाते हुए, भगवान को महारानी मरुदेवी के पास लाये भगवान को उनकी माता के पास पधराकर, माता की अवस्वापिनी निद्रा हरण करली और भगवान एवं माता मरुदेवी को नमस्कार करके शक्रेन्द्र महाराज, सब देव-देवी सहित नन्दीश्वर द्वीप में गये। वहां सबने अष्टान्हिका महोत्सव मनाया। इस प्रकार ऋषभ भगवान का जन्म कल्याण मनाकर, सब इन्द्र एवं देव-देवी अपने-अपने स्थान को चले गये।

भगवान ऋषभदेव, अंगुष्ठामृत का पान करते हुए दिन प्रतिदिन, द्वितीया के चन्द्रवत् बढ़ने लगे। युवावस्था [illegible] होने पर और मान-उन्मान प्रमाण युक्त देह से [illegible]

सुन्दर, कंचन वर्णीय एवं दैदीप्यमान सुशोभित शरीर होजाने पर तत्सामयिक प्रथा के अनुसार, भगवान का देवी सुमंगला के साथ संसार व्यवहार प्रारंभ हुआ।

भोग-भूमि के युगल्या स्त्री-पुरुष समायुषी होते थे और दम्पति साथ ही जन्मते तथा मरते थे। न कोई अकेला जन्मता ही था, न मरता ही था। इस कारण उस समय तक विवाह पद्धति का जन्म ही नहीं हुआ था। पुत्र-कन्या एक ही साथ जन्मा करते थे। और युवावस्था होने पर, वेही दोनों पति-पत्नी बन जाते थे लेकिन अवसर्पिणी काल के प्रभाव से, तीसरे आरे के अन्तिम भाग में यह नियम अस्तव्यस्त हो चला और परिस्थिति में विषमता आने लगी। इस विषय परिस्थिति के कारण, एक पुत्र-कन्या के जोडे में से पुत्र कुमारावस्था में ही शरीर त्याग गया। इस शरीर त्यागनेवाले के साथ जन्मी हुई कुवाँरी कन्या, अकेली एवं असहाय रह गई। इस असहाय कुवाँरी कन्या को, महाराजा नाभि ने शरण दी, और उसका पालन-पोषण करने लगे। जब वह कन्या युवती हुई, तब महाराजा नाभि विचार करने लगे, कि अब इस कन्या की क्या व्यवस्था करनी चाहिए? अन्ततः सबकी यही सम्मति हुई कि यह कन्या रत्न श्री ऋषभकुमार को सौंप दिया जावे। इस प्रकार का निश्चय होजाने पर, देवों एवं इन्द्रों ने विवाह-महोत्सव किया और देवियां तथा

इन्द्रानियों ने मंगल-गान एवं विवाह विधि-पूर्वक, कुमार ऋषभ के साथ उस कन्या का विवाह कर दिया। इस प्रकार इस भरत क्षेत्र में यह सर्वप्रथम विवाह हुआ और इसी विवाह से विवाह पद्धति का जन्म भी हुआ। भगवान की इन विवाहिता किन्तु द्वितीय पत्नी का नाम देवीसुनन्दा था।

दोनों पत्नीयों के साथ भगवान ऋषभदेव, आनन्द सहित समय बिताने लगे। देवीसुमंगला के उदर से, भरत नाम के पुत्र ब्राह्मी नाम की कन्या तथा ४६ युगल पुत्र उत्पन्न हुए और देवी सुनंदा के उदर से, बाहुबल नाम के पुत्र, सुन्दरी नाम की कन्या उत्पन्न हुई। इस प्रकार भगवान ऋषभदेव के एकसौ पुत्र और दो पुत्रीयाँ हुई।

इस समय तक, भोगभूमि की व्यवस्था में बहुत परिवर्तन हो गया था। मानवी व्यवस्था के साथ ही, अन्य प्राकृतिक व्यवस्था भी बदल चली थी। पहले, मनुष्यों की आवश्यकताओं को कल्पवृक्ष पूरी किया करते थे, लेकिन अब वे भी फल रहित होने लगे थे। कल्पवृक्ष के फल रहित होते ही, मनुष्यों में हाहाकार मच गया। वे, अपनी आवश्यकताओं को लेकर, आपस में ही एक दूसरे से लड़ने लगे। नाभि राजा के पास, चारों ओर से फरियाद पर फरियाद आने लगीं। नाभि राजा भी, इस विषमता से घबरा उठे और पुकार करने के लिए आने वाले

लोगों को भगवान ऋषभदेव के पास भेजने लगे।

इस समय तक भगवान ऋषभदेव की आयु, बीस ला पूर्व की हो चुकी थी। इधर तो नाभि महाराज के भेजे हु पीड़ित लोग, भगवान की सेवा में उपस्थित हुए और उध इन्द्रादि देवों ने यह विचार किया कि अब भगवान को रा सिंहासन पर आरूढ़ होकर लोक-नीति प्रवर्तानी चाहिए। य विचार कर, इन्द्रादि देव भी भगवान की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने भगवान को राजसिंहासन पर बैठा कर, हर्ष सहित भगवान का राज्याभिषेक किया। उसी समय इन्द्र की आज्ञा से देवताओं ने, बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी एक नगरी का निर्माण किया, और उस नगरी का नाम विनीता रखकर, उसमें जनताको बसाया।

राजसिंहासनारूढ होते ही, सबसे पहले भगवान ऋषभदेव ने, परिस्थिति की विषमता से पीडित लोगों का दुःख दूर करने का निश्चय किया। तीर्थङ्कर भगवान, माता के गर्भ में ही तीन ज्ञान सहित पधारते हैं। उन मति,श्रुति और अवधि नाम के तीन ज्ञान में से, अवधि, प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, इससे तीर्थङ्कर भगवान, प्रत्येक कार्य की विधि से परिचित होते हैं। भगवान ऋषभदेव भी,तीर्थङ्कर थे और प्रत्येक कार्य की विधि से परिचित थे। इसलिए उन्होंने, जनता को विद्या एवं कला सिखा कर,परावलम्बी से स्वावलम्बी बनाया और लोक नीति

का प्रादुर्भाव करके, अकर्मभूमि को कर्म-भूमि के रूप में परिणत कर दिया। भगवान ने यदि जनता को कला विद्या आदि सिखाकर, उस ओर न लगाया होता, उन्हें भूखों मरने से न बचाया होता, तो मनुष्यों में मनुष्यत्व का ही अभाव हो जाना सम्भव था। 'बुभुक्षितं किं न करोति पापं ?' अर्थात् भूखा क्या नहीं करता ? इसके अनुसार, उस समय के मनुष्य भी, भूख के मारे क्या-क्या न करने लगते ? इस प्रकार जनता का उपकार करते हुए, भगवान ऋषभदेव ने, त्रेसठ लाख पूर्व राज्य किया।

त्र्यासी लाख पूर्व की अवस्था होने पर, भगवान ऋषभदेव ने, विचार किया, कि मैंने लौकिक-नीति का प्रचार तो किया, लेकिन यदि इसी के साथ धर्म-नीति का प्रचार न हुआ, तो मनुष्य संसार में फँसे रहकर, दुर्गति के ही अधिकारी बनेंगे, संसार बन्धन से छुटने के उपाय से अनभिज्ञ रहेंगे। इसलिए लोगों को धर्म से परिचित कराना चाहिए। भगवान ने यह विचार किया, इतने में ही, ब्रह्म नाम के पाँचवें देवलोक में रहनेवाले लोकान्तिक देव, भगवान की सेवा में उपस्थित हुए और भगवान से, धर्म तीर्थ प्रवर्ताने के लिए प्रार्थना की।*

---

* तीर्थङ्करों का दीक्षा-काल आने पर, लोकान्तिक देवों के लिए, इस प्रकार की प्रार्थना करना नियोजित है।

अपने विचार एवं लोकांतिक देवों की प्रार्थना के अनुसार भगवान ऋषभदेव ने वार्षिक-दान देना प्रारम्भ किया। वे, उदारचित्त से, एक पहर दिन चढ़ने तक एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण-मुद्रा (सोनैया) नित्य दान करने लगे और नियमित रूप से एक वर्ष तक इसी प्रकार दान देते रहे। भगवान ऋषभदेव के राज्य-काल में, अनेक नगर बस चुके थे और राजकीय व्यवस्था भी हो चुकी थी। इसलिए वार्षिक-दान दे चुकने के पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को विनीता नगरी का, तथा शेष निन्यान्वे पुत्रों भिन्न-भिन्न नगरों का राज्य देकर, और माता मरुदेवी से आज्ञा प्राप्त करके, भगवान, चार सहस्र राजा युवराज आदि राजकुल एवं क्षत्रिय कुल, के पुरुषों सहित, सुदर्शना पालकी में आरूढ हुए और अनेक प्रकार के वाद्य एवं मनुष्य और देवताओं के जयघोष के मध्य, विनीता नगरी के सिद्धार्थ नामक बाग में पधारे। सिद्धार्थ बाग में चैत्र कृष्ण ८ को उत्तराषाडा नक्षत्र में भगवान ने पंचमुष्टि लोंच * करके दीक्षा धारण

---

* दीक्षा लेते समय, सब तीर्थङ्कर पंचमुष्टि लोंच करते है, लेकिन भगवान ऋषभदेव से इन्द्र ने प्रार्थना की, कि हे प्रभो, शिखा बहुत सुशोभित है, इसलिए शिखा रहने दीजिये। भगवान ने इन्द्र की यह प्रार्थना स्वीकार की। कहा जाता है, कि उसी समय से लोग शिखा रखने लगे।

की। इन्द्रादि देवों ने, भगवान की दीक्षा का दीक्षा कल्याण मनाया। दीक्षा लेते ही भगवान को मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान के साथ निकले हुए चार हजार पुरुषों ने भी उसी समय दीक्षा धारण की।

साथियों सहित दीक्षा धारण करके, भगवान्, वन की ओर पधारे। भगवान जब वन की ओर पधारने लगे, तब माता मरुदेवी ने, भगवान से महल में चलने के लिए कहा, लेकिन भगवान ने कोई उत्तर न दिया। तब भगवान के ज्येष्ठ पुत्र भरत महाराज ने माता मरुदेवी से कहा, कि हे मातेश्वरी, प्रभु अब घर को न पधारेंगे, वे संसार से विरक्त हो गये है! यह बात सुनकर माता मरुदेवी, बड़े असमंजस में पड़ गई। अन्त में, इन्द्र महाराज ने, माता मरुदेवी आदि सब को समझा-बुझा कर घर भेजा और भगवान वन की ओर विहार कर गये।

इस अवसर्पिणी काल में भगवान ऋषभदेव, सर्वप्रथम मुनि थे। इन से पूर्व, संयम में कोई प्रवर्जित नहीं हुआ था। इस कारण जनता, मुनिधर्म एवं दान-विधि से अनभिज्ञ थी। भगवान्,आहार की भिक्षा के लिए जब लोगों के यहाँ पधारते, तब लोग, हर्षित होकर अनेक प्रकार के रत्नाभूषण, हाथी, घोड़ा कन्या आदि लेने के लिए भगवान को आमन्त्रित करते, लेकिन शुद्ध और एषणिक आहार-पानी लेने के लिए, कोई

प्रार्थना तक न करता। आहार पानी न मिलने के कारण भगवान के चार हजार साथी मुनि,व्याकुल होकर भगवान से प्रार्थना करने लगे, लेकिन भगवान मौन रहते थे। इस कारण व्याकुल होकर वे साथी मुनि, अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करने लगे।

भगवान को, निराहार रहते एक वर्ष बीत गया। विचरते विचरते वे, हस्तिनापुर पधारे। हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ के पुत्र श्रेयांश कुमार जो भगवान ऋषभदेव के पौत्रों मे से थे—को तथा हस्तिनापुर के लोगों को, भगवान के पधारने से पूर्व-यह स्वप्न हुआ था, कि 'सूखते हुए कल्पवृक्ष को श्रेयांश ने सींचा'। वहाँ के लोग, इस स्वप्न पर विचार ही कर रहे थे, इतने ही में भगवान हस्तिनापुर में पधारे। श्रेयांश कुमार को, भगवान ऋषभदेवके दर्शन करते ही, जाति-स्मृति ज्ञान हुआ। अपने पूर्वभव को जान कर श्रेयांश कुमार ने, सर्व प्रथम भगवान को आहार के लिए आमंत्रित किया। भगवान को लेकर श्रेयांस कुमार, स्वस्थ-ग्रह में आये, परन्तु वहाँ निर्दोष प्रासुक आहार नहीं था। केवल इक्षुरस के भेंट में आये हुए घड़े रखे थे। श्रेयांस कुमार की प्रार्थना पर, भगवान ने अपने कर पात्र में इक्षु-रस लेकर, वैशाख शुक्ल तृतिया को एक वर्ष के तप का पारणा किया। तभी से वैशाख शुक्ल तृतिया का नाम अक्षय-तृतिया हुआ। श्रेयांश कुमार के इस दान की

महिमा बताने के लिए इन्द्रादिक देव ने, पांच दिव्य प्रकट करके, लोगों को इस प्रकार के दान का माहात्म्य बताया। भगवान का पारणा हुआ जानकर, लोगों को बड़ा हर्ष हुआ। उसी समय से लोग, मुनि को दान देने की विधि भी समझने लगे।

भगवान, हस्तिनापुर नगर से विहार कर गये और जनपद देश-में विचरने लगे। वे एक हजार वर्ष तक, ध्यान मौन और तपादि द्वारा कर्मों का नाश करते हुए, छद्मस्थावस्था में विचरते रहे। भगवान, विचरते-विचरते पुरिमताल नगर के शकटमुख वन में पधारे। उस वन में अष्टमतप करके भगवान, वट वृक्ष के नीचे, कायोत्सर्ग में लीन हुए। शुभ और शुद्ध अध्यवसाय की वृद्धि से, शुक्ल-ध्यान में प्रवेश करके, भगवान् ने, मोहकर्म की कषाय तथा नोकषायी प्रकृतियों का क्षय किया और क्रमशः आठवें, नववें दसवें तथा बारहवें गुणस्थान में पहुँच कर भगवान ने, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय, इन तीनों कर्म को एक साथ युगवत् क्षय करके फाल्गुन कृष्ण एकादशी को जब चन्द्र, उत्तराषाढा नक्षत्र में था उस समय अनन्तपूर्ण, निरबाध और निरावरण केवल ज्ञान तथा केवल दर्शन, प्राप्त किया।

भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है यह जान

कर, इन्द्र और देवताओं ने, केवलज्ञान की महिमा कं
उन्होंने, समवशरण की रचना की, जिसमें देव-देवी, मा
मानवी, और तिर्यक-तिर्यकनी आदि बारह प्रकारकी परिषद्
प्रभू का उपदेशामृत पान करने के लिए एकत्रित हुई।

जब से भगवान दीक्षा लेकर विनीता नगरी से विहार कर
गये, तब से भगवान की कुशल के समाचार माता मरुदेवी
को नहीं मिले। इस कारण माता मरुदेवी, चिन्तातुर हो रही
थीं। जिस समय माता मरुदेवी भगवान के लिए चिन्ता कर
रही थीं, उसी समय उनके पौत्र भरत महाराज, अपनी पिता-
मही के चरण वन्दन को गये। पितामही मरुदेवी को चिन्तित
देख कर, भरत महाराज ने उनसे पूछा-हे माता, आप चिन्तित
क्यों है ? पौत्र के प्रश्न के उत्तर में माता मरुदेवी ने, चिन्ता
का कारण कह सुनाया। भरत महाराज ने प्रार्थना की, हे
माता, पिताश्री कर्मशत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए तपराधन
कर रहे हैं। उन्हें शीघ्र ही केवलज्ञान होगा। उस समय आप
उन की अपूर्व सम्पत्ति का अवलोकन करके, अपनी कोख को
धन्य मानेंगी। भरत महाराज यह प्रार्थना कर ही चुके थे,
कि इतने में एक पुरुष ने भरत महाराज को, भगवान को
केवल ज्ञान उत्पन्न होने की बधाई दी। इस बधाई के साथ ही
भरत महाराज को, दूसरे पुरुष ने आयुधशाला में महातेजस्वी
चक्ररत्न प्रकट होने की बधाई दी और तीसरे पुरुष ने, पुत्र

जन्म की बधाई दी। तीनों बधाइयाँ मिल जाने पर, भरत महाराज ने, सब से पहले भगवान्‌ को वन्दन करने के लिए जाने की तैयारी कराई और माता मरुदेवी से भी पधारने की प्रार्थना की। सपरिवार भरत महाराज ने, भगवान को वन्दन करने के लिए प्रस्थान किया। गजारूढ माता मरुदेवी भी साथ पधारी।

भगवान के समवशरण के समीप पहुँच कर, और देवों का आवागमन एवं केवलज्ञान के साथ प्रकट होने वाले अष्ट प्रतिहार्यादि विभूति देखकर माता मरुदेवी आश्चर्य बहुत प्रसन्न हुई। उन्हें, भगवान के समवशरण के दर्शन से ऐसा हर्ष हुआ कि हाथी पर बैठे ही बैठे उन्होंने, अध्यवसाय की शुद्धि तथा अपूर्व करण एवं शुक्ल ध्यान के योग से घातक कर्म क्षय करके अनन्त चतुष्टय रूप सिद्धि प्राप्त कर ली। इतना ही नहीं, किन्तु आयुष्य का अन्त आ जाने से, हाथी पर ही सब कर्मों को नाश कर सिद्ध गति को प्राप्त हुई।

माता मरुदेवी तो हाथी पर बैठे ही बैठे सिद्ध गति में पधार गई भरत महाराज, भगवान को विनय पूर्वक नमस्कार करके सेवा में बैठे। उस समय तीर्थनाथ भगवान ऋषभ स्वामी ने सर्व भाषाओं का स्पर्श करने वाली, पैंतीस वचनातिशय युक्त अमोघवाणी का प्रकाश किया, जिससे भव्य जीवों को

अपूर्व शान्ति मिली। भगवान की अमोघ-वाणी से बोध पाकर, भरत महाराज के पुत्र ऋषभसेन ने पाँच सौ पुत्रों एवं सात सौ पौत्रों के साथ और सती ब्राह्मी ने अनेक स्त्रियों के साथ, भगवान से मुनि धर्म स्वीकार किया। भरत महाराज के साथ आये हुए लोगों में से शेष ने, श्रावक व्रत लिये और भरत महाराज ने भी, सम्यक्त्व ग्रहण किया।

भगवान ऋषभदेव के ८४ गणधर ८४००० मुनि ३००००० साध्वी, २०५००० श्रावक और ५५४००० श्राविका हुई। केवल ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात वे एक हजार वर्ष न्यून एक लाख पूर्व तक जनपद में विचरते और दुःखी जीवों का उद्धार करते रहे। निर्वाण-काल समीप जानकर, भगवान ऋषभदेव, दस हजार मुनियों के साथ अष्टापद पर्वत पर पधारे। वहाँ सब ने अनशन किया। भगवान और उनके साथी सन्तों का अनशन छः दिन तक चलता रहा। पश्चात माघ कृष्ण १३ को चन्द्र का योग अभीच नक्षत्र में आने पर भगवान् ने पर्यङ्कासन में शुक्ल ध्यान के चतुर्थ पाद का अवलम्बन लिया तथा मन वचन काय के योग को रोक कर, चार अघातिक कर्मों का नाश किया और सिद्ध गति को प्राप्त हुए। यानी मोक्ष पधारे। भगवान मोक्ष पधारे तब इस अवसर्पिणी काल का तीसरा आरा समाप्त होने में, तीन वर्ष साढे सात महीने शेष थे।

जिस समय भगवान ऋषभदेव मोक्ष पधारे, उसी समय में अन्य १०७ पुरुष भी सिद्ध हुए। इस बात की गणना उन्हीं दस आश्चर्य की बातों में है, जो इस अवसर्पिणी काल में हुई हैं। भगवान के साथ अनशन करनेवाले दस हजार मुनि भी, उसी नक्षत्र में मोक्ष पधारे, जिस नक्षत्र में भगवान मोक्ष पधारे थे। इनके शरीर का अन्तिम संस्कार, इन्द्र तथा देवताओं ने किया पश्चात सब देवी देव ने नन्दीश्वर द्वीप में जाकर, भगवान का निर्वाण कल्याण मनाया और अष्टान्हिका महोत्सव करके अपने-अपने स्थान को गये।

इति श्री ऋषभ-चरित्र समाप्त।
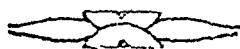
प्रश्न—

१–आप भगवान ऋषभदेव के कितने पूर्व-भव का चरित्र जानते हैं?

२ भगवान ऋषभदेव ने तीर्थङ्कर नाम गोत्र के योग्य पुण्य का सम्पादन किस भवमें और किस कार्य के द्वारा किया था?

३—भोग भूमि का जीवन अच्छा था, या कर्म भूमि का?

४–जीवानन्द वैद्य का भव पाने के पश्चात, भगवान ने और कितने भव किये?

६—इस चरित्र की कौन-कौन सी बात ग्रहण करने योग्य है ?

७—चक्ररत्न और पुत्र उत्पन्न होने का उत्सव पहले न करके, वज्रनाभ ने, वज्रसेन तीर्थङ्कर को केवलज्ञान उत्पन्न होने का उत्सव पहले क्यों किया ? जब कि चक्ररत्न और पुत्र उत्पन्न होने की बधाई पहले मिली थी और केवलज्ञान उत्पन्न होने की बधाई पश्चात मिली थी।

८- भगवान ऋषभदेव को सर्वप्रथम मुनि और तीर्थङ्कर क्यों माना ? जब कि इसी चरित्र में दूसरे मुनियों एवं तीर्थङ्कर का होना आप पढ़ चुके हैं।

२

भगवान श्री अजितनाथ।

पूर्व-भव
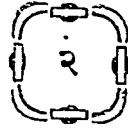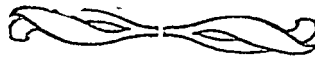
श्लोक—

सद्युक्ति मुक्ति तरुणी निरतं निरस्त,
रामानवस्मर परं जित शत्रु जातम्।
अन्तर्नवेन विजयाङ्ग जमात्त धर्म,
रामा नव स्मर परं जितशत्रु जातम्॥

जम्बू द्वीप के पूर्व महाविदेहक्षेत्र में, 'वत्स्य' नाम का विजय था। उस विजय में, सुसीमा नामकी एक रमणीय नगरी थी। वहां का राजा विमलवाहन, अनेक गुण-संयुक्त और प्रजापालक था।

राजा विमलवाहन को, एक समय बैठे बैठे यह विचार हुआ, कि 'संसार के समस्त पदार्थ क्षणिक और अस्थायी हैं, फिर भी प्राणी, मोह के वश होकर अपने-आपको भूल जाता है और संसार के पदार्थों में ऐसा फँस जाता है, कि उसे अपने हिताहित का ध्यान ही नहीं रहता। जो मनुष्य शरीर, अनन्त पुण्योदय से प्राप्त हुआ है, उसे भोग-विलास और कुटुम्ब परिवार के ममत्व में ही खो देता है, सच्चे हितकारी धर्म की आराधना नहीं करता। अन्त में खाली हाथ परलोक का पथिक बनता हैं,जहां अनेक यन्त्रणा सहता हैं। मुझे उचित हैं, कि अभी शरीर स्वस्थ हैं, इन्द्रियां शिथिल नहीं हुई हैं, इसलिये धर्माराधन द्वारा आत्म कल्याण करलूँ।'

राजा विमलवाहन, इस प्रकार विचार करही रहा था, इतने में ही यह सूचना मिली, कि नगरी के बाहर उद्यान में अरिंदम नाम के सूरि पधारे हैं। यह शुभ समाचार सुनकर, राजा विमलवाहन बहुत हर्षित हुआ और सपरिवार,सूरीजी को वन्दन करने चला। उद्यान के समीप पहुंचकर विमलवाहन

हाथी पर से उतर पड़ा और मुनि की सेवा में उपस्थित होकर उन्हें विधि सहित वन्दना की। वन्दना कर चुकने के पश्चात, राजा मुनि से प्रार्थना करने लगा 'हे प्रभो', संसार रूपी विष-वृक्ष के क्लेश दुःख रूपी फलों का दुष्परिणाम भोगकर भी, संसार के जीव संसार से विरक्त नहीं होते ऐसा मैं देख रहा हूं, इसलिए मैं यह जानने का इच्छुक हूं कि आपको संसार से क्यों और कैसे विरक्ति हुई ?

राजा विमलवाहन के प्रश्न के उत्तर में आचार्य अरिदम कहने लगे राजन, विवेकवानों के लिए संसार की समस्त बातें वैराग्य उत्पन्न करने वाली ही हैं। हाँ, संसार की समस्त बातों में से कोई-कोई बात वैराग्य का हेतु अवश्य बन जाती हैं। यही बात मेरे लिए भी हुई। मैं जब गृहस्थाश्रम में था, तब चतुरंगिनी सेना लेकर दिग्विजय के लिए चला। रास्ते में एक रम्य और आनन्द-दायक बाग मिला। मैंने सेना सहित उस बाग में विश्राम किया और फिर आगे चला गया। जब मैं दिग्विजय कर वापिस लौटा तब फिर उसी बाग के मार्ग से आया। उस समय मैंने देखा, कि जो बाग पथिक को आल्हाद दायक था, वह इस समय सूखा पड़ा है। बाग की यह दशा देखकर, मुझे मनुष्यशरीर के विषय में भी अनेक विचार हुए। मैं सोचने लगा, कि यह सुन्दर मनुष्यशरीर यौवन बीत जाने

पर किस प्रकार क्षीण हो जाता हैं। जो लोग यौवन में उस शरीर से प्रेम करते हैं वही वृद्धावस्था आने पर और शरीर के रोग-ग्रस्त होने पर, किस प्रकार घृणा करने लगते हैं वास्तव में, यह संसार ही अस्थिर हैं। इसका कोई पदार्थ या इसमें का कोई प्राणी, एक ही अवस्था में नही रह सकता।

राजन्, इस प्रकार विचार करते करते मुझे संसार से विरक्ति होगई। मेरे हृदय में, वैराग्य का अंकुर उत्पन्न होगया। परिणामतः मैंने, राज-पाट त्यागकर, चिन्तामणि रत्न समान उज्वल और पवित्र चरित्र को स्वीकार कर लिय।

राजा विमलवाहन के हृदय में, संसार की ओर से पहले ही विरक्ति-सी हो रही थी। आचार्य अरिदम का कथन सुनकर उसे संसार से बिलकुल ही विरक्ति होगई। उसने आचार्य से प्रार्थना की, हे दयासिन्धु, मैं, नगरी में, जाकर राज पाट कुमार को सौंप आपकी सेवा में फिर उपस्थित होऊं वहाँ तक आप यहीं विराजे रहिए। मेरा विचार, आपसे चरित्र स्वीकार करने का हैं। राजा की प्रार्थना के उत्तर में, आचार्य अरिदम ने फर्माया राजन्, भव्य जीवों के कल्याण में सहायक होना ही हमारा काम हैं, इसलिए तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार हैं। तुम जिस कार्य को श्रेयस्कर समझते हो, प्रमाद रहित उसे शीघ्र करो।

राजा विमलवाहन, सुसीमा नगरी में वापस आया। उसने

राजसिंहासन पर बैठ कर, अपने मंत्रियों को बुलवाया और उनसे कहने लगा–हे मंत्रियो, आज तक आप मुझे राजभार वहन करने में सहायता करते रहे, लेकिन अब मेरी इच्छा, राजकुमार को सिंहासनारूढ़ करके दीक्षा लेने की है, अतः आप लोग मुझे इस कार्य में भी सहायता दीजिये। राजा ने, उसी समय राजकुमार को भी बुलवाया। राजकुमार के आ जाने पर राजा विमलवाहन ने, राजकुमार को सिंहासनारूढ कर, राजपाट उसे सौंप दिया और आप आचार्य अरिदम के पास दीक्षा लेने के लिए चला। राजकुमार–जो अब राजा बन चुका था–ने अपने पिता का निष्क्रमणोत्सव किया। राजा विमलवाहन ने, आचार्य अरिदम की सेवा में उपस्थित होकर उनसे संयम स्वीकार किया और समिति गुप्ति आदि का पालन करते हुए, जनपद में विचरने लगे। मुनि विमलवाहन, चौथ, छट्ठ, अष्टम, एकावलि, रत्नावलि, कनकावलि आदि तप करने लगे और भगवान अरिहन्त सिद्ध के ध्यान में तल्लीन रहने लगे। इस प्रकार विशुद्ध भावना से उन्होंने, तीर्थङ्कर नाम कर्म का सम्पादन किया। अन्त में अनशन करके बाईसवें कल्प-विजय विमान में अहमिन्द्र पदधारी देव हुए। वहाँ उन्होंने, बत्तीस सागर तक उत्कृष्ट सुखों का अनुभव किया।

अन्तिम भव ।

इस जम्बू द्वीप के मण्डन रूप भरत क्षेत्र के बीचों बीच में वैताढ्य पर्वत पड़ गया है,इससे दो भाग हो गये हैं। दक्षिण भरतार्द्ध में, अयोध्या नाम की एक नगरी थी। अयोध्या नगरी, पृथ्वी की लक्ष्मी और स्वर्ग-सम्पदा से स्पर्द्धा करने वाली मानी जाती थी। वहाँ, इक्ष्वाकुकुल भूषण भगवान आदिनाथ के वंशज, जितशत्रु नाम के राजा, राज्य करते थे। जितशत्रु का असीम पराक्रमी छोटा भाई, सुमित्रविजय था, जिसे युवराज पद प्राप्त था।

महाराज जितशत्रु की विजयादेवी नाम्नी पटरानी,शीलादि गुणों से युक्त थी। वह, पतिपरायणा भी थी, और स्त्रियोचित गुणों से पूर्ण होने के कारण पति की कृपापात्रा भी थी।

अवसर्पिणीकाल का चौथा आरा, आधे के लगभग व्यतीत हो चुका था। उस समय, वैशाख शुक्ल १३ की रात में जब सब ग्रह उच्च स्थान पर थे—विमलवाहन मुनि का जीव, विजयविमान का आयुष्य समाप्त करके, विजया देवी के गर्भ में आया। महारानी विजया देवी, सो रही थीं। उन्होंने, तीर्थंकर के गर्भ कल्याण सूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्न देख कर,महारानी विजया देवी जाग उठीं। स्वप्नों का विचार

करके, उन्हें बहुत हर्ष हुआ और वे हर्षित-हर्षित महाराजा जितशत्रु के शयनागार में आई। महाराजा जितशत्रु भी, उस समय सो रहे थे। महारानी ने, मधुर शब्दों के आलाप द्वारा, महाराजा को जगाया और अपने स्वप्न सुनाये। स्वप्नों को सुनकर, महाराजा भी प्रसन्न हुए। उन्होंने महारानी से कहा, कि स्वप्नों को देखते हुए, तुम्हारी कोख से महाभाग्यशाली पुत्र उत्पन्न होगा। महाराजा की इस बात को महारानी ने हर्ष एवं आदर सहित सुना और आनन्दित होती हुई, अपने शयनागार को लौट आई।

राजा जितशत्रु के छोटे भाई, युवराज सुमित्रविजय की रानी वैजन्ती ने भी, इसी रात में महारानी विजयादेवी की ही तरह चौदह महास्वप्न देखे। अन्तर केवल इतना ही था, कि विजयादेवी के देखे हुए स्वप्न प्रशस्त थे और वैजन्ती के साधारण। स्वप्न देखकर, वैजन्ती भी जागृत हो उठी। पति के शयनागार में आकर वैजन्ती ने, स्वप्नों का विस्तृत समाचार सुमित्रविजय को सुनाया। स्वप्नों को सुनकर, सुमित्रविजय ने वैजन्ती से कहा, कि इन स्वप्नों के प्रभाव से, तुम उत्तम पुत्ररत्न प्रसव करोगी। पति के कथन को सुनकर, वैजन्ती हर्षित होती हुई, अपने महल में चली गई।

विजयादेवी और वैजन्ती, दोनो ही ने स्वप्न देखने के पश्चात् शेष रात्रि, धर्मध्यान में व्यतीत की। प्रातःकाल महाराजा

जितशत्रु, विजयादेवी के देखे हुए स्वप्नों का विचार कर रहे थे, इतने ही में युवराज सुमित्रविजय आये। बड़े भ्राता को प्रणाम करने के पश्चात्, सुमित्रविजय, महाराजा जितशत्रु से कहने लगे पूज्य भ्राताजी, आज रात के अन्तिम भाग में आपकी अनुजवधू ने, इस प्रकार के चौदह स्वप्न देखे हैं। आप स्वप्नशास्त्र के जानकार हैं, अतः इ स्वप्नों का विचार कीजिये। सुमित्रविजय की बात ने महाराज अजितशत्रु को द्विगुण आनन्दित कर दिया। उन्हों तत्क्षण स्वप्न पाठकों को बुलाकर, उन्हें विजयादेवी प वैजन्ती के देखे हुए स्वप्न सुनाये और स्वप्नों का फल पूछा आपस में मन्त्रणा करके स्वप्नपाठक कहने लगे 'महारा स्वप्न शास्त्रानुसार जब तीर्थङ्कर और चक्रवर्ती गर्भ में आ हैं, तब उनकी माता, इस प्रकार के चौदह महास्वप्न देख हैं। महारानी एवं युवराज्ञी ने, भी वे ही स्वप्न देखे हैं, कि दो तीर्थङ्कर या दो चक्रवर्ती एक साथ जन्में, यह नहीं सकता। इसलिए महारानी और युवराज्ञी में से एक तीर्थ को और दूसरी चक्रवर्ती को जन्म देगी। हमने, आप्त पुरु से सुन रखा है, कि भगवान ऋषभदेव के पश्चात् भगवा अजितनाथ तीर्थंकर होंगे और वे जितशत्रु राजा तथा विजय रानी के यहां जन्मेंगे। इसके अनुसार, महारानी विजया दे तीर्थङ्कर की जन्मदात्री होंगी और युवराज्ञी वैजन्ती दे चक्रवर्ती की माता होंगी।'

स्वप्नपाठकों से स्वप्नों का फल सुनकर राजा युवराज महारानी और युवराज्ञी आदि समस्त परिवार बहुत हर्षित हुआ। महाराजा जितशत्रु ने, स्वप्नपाठकों का खूब सम्मान किया और बहुत द्रव्य देकर, उन्हें बिदा किया।

विजया देवी और वैजन्ती देवी, हर्ष सहित सावधानी से गर्भ का पोषण करने लगीं। उधर इन्द्रादि देवों को यह ज्ञात हुआ, कि तीर्थङ्कर भगवान गर्भ में पधारे हैं, इसलिए वे बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने, भगवान का गर्भ कल्याणोत्सव मनाया। अनेक देव देवी, माता विजयादेवी की सेवा में भी रहने लगे।

नव मास पूर्ण होने पर, माघ शुक्ल ८ की रात को रोहिणी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग मिलने पर, महारानी विजया देवी ने, हाथी के मुख्य लक्षण वाले, सोहनवर्णीय पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही, क्षणभर के लिए तीनों लोक में उद्योत हुआ, और नारकीय जीवों की ताड़ना भी बन्द हो गई। भगवान का जन्म होते ही, इन्द्रादि के आसन कम्पित हुए, जिससे अवधिज्ञान द्वारा उन्होंने भगवान का जन्म होना जान लिया। भगवान का जन्म जानकर, इन्द्रादि देव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी अपनी ऋद्धि सहित नियत स्थान पर उपस्थित होकर, भगवान का जन्म कल्याण मनाया।

भगवान का ज म होने के कुछ ही समय पश्चात् उसी रात में, युवराज्ञी वैजन्ती देवी ने भी, एक भाग्यशाली पुत्र जन्मा। विजयादेवी और वैजन्तीदेवी, दोनों की परिचारिकाओं ने, एक ही समय में महाराजा जित शत्रु को, पुत्र जन्म की बधाइयाँ दीं। महाराजा जितशत्रु ने, दोनों परिचारिकाओं को बहुत द्रव्य देकर, उनका सम्मान बढ़ाया और दोनों पुत्र का जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया।

दोनों भाई जितशत्रु के पुत्र भगवान अजितनाथ, और सुमित्रविजय के पुत्र सगरकुमार पार्वतीय गुफा की लता के समान सुरक्षित रूप में बढ़ने लगे। दोनों ही, बाल्यावस्था से निकलकर, किशोरावस्था में प्रविष्ट हुए। उस समय दोनो ही महान तेजस्वी, और अतुल बलवान थे। दोनों के शरीर भी सुन्दर, सर्वाङ्गपूर्ण, स्वस्थ और ४५० धनुष ऊँचे थे।

कुमार अजितनाथ तो तीर्थङ्कर, थे। तीर्थङ्कर, माता के गर्भ में ही तीन ज्ञान सहित आते हैं, इसलिए कुमार अजितनाथ, सब कलाओं शास्त्रों और विद्याओं के पारगामी थे। इन्हें, किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता न थी। सगरकुमार, शुभ मुहूर्त में कलाचार्य के पास विद्याध्ययन के लिए भेजे गये। इन्होंने थोड़े ही समय में समस्त विद्याएँ सीखलीं और सब कलाओं के भी पारंगत हो गये। इतना ही

नहीं, किन्तु वे विनयादि समस्त गुणों से भी भूषित हो गये।

कुमार अजितनाथ की, समय समय पर अनेक देव देवी सेवा करने के लिए आया करते थे। इन्द्र और देवों की सम्मति से, एक समय, महाराजा जितशत्रु, अजितकुमार से कहने लगे हे वत्स, हम तुम्हारा विवाहोत्सव देखना चाहते हैं, हमारी यह अभिलाषा पूरी करो। यद्यपि कुमार अजितनाथ तीर्थङ्कर थे, और भविष्य में संसार-बंधन को सर्वथा त्यागना था, फिर भी, भोग का फल देने वाले कर्म शेष हैं, यह जानकर कुमार अजितनाथ, पिता की बात पर चुप रहे। महाराजा जितशत्रु ने विवाहोत्सव करके, अजितकुमार और सगरकुमार के साथ अनेक राजकन्याओं का विवाह कर दिया। भोग का फल देने-वाले कर्मों को खपाने के लिए, कुमार अजितनाथ, अपनी रानियों के साथ आनन्द पूर्वक रहने लगे। सगरकुमार भी, अपनी रानियों के मध्य उसी प्रकार जीवन व्यतीत करने लगे जिस प्रकार हथिनियों के मध्य में हाथी। इस तरह अठारह लाख पूर्व बीत गये। महाराजा जितशत्रु और युवराज सुमित्र विजयको संसार से वैराग्य हो गया, इसलिए इन दोनों ने राज्य का भार कुमार अजितनाथ को सौंप दिया, और आप दोनों, भगवान ऋषभदेव के शासन के स्थविर मुनि के पास संयम में दीक्षित हो गए। अन्त में, दोनों भाइयों ने अपने

आपने कर्मक्षय कर दिये और दोनों ही, मोक्ष पधार गये।

महाराजा अजितनाथ ने, सगरकुमार को अपना युवराज बनाया और निर्विघ्न रूप से राज्य चलाने लगे। जहाँ के राजा स्वयं तीर्थंकर हों,वहाँ के सुखों का तो कहना ही क्या ? प्रजा, सुखपूर्वक रहती थी। इस प्रकार राज्य करते हुए, महाराज अजितनाथ को त्रेपन लाख पूर्व बीत गये।

एक दिन महाराजा अजितनाथ, राजकार्य से निवृत्त हो, एकान्त में बैठकर विचार करने लगे। अन्त में उन्होंने यह निश्चय किया, कि मेरे भोग फल के देनेवाले कर्म बहुतांश में खप गये हैं, इसलिए अब मुझे गृहस्थाश्रम में रहना उचित नहीं किन्तु चारित्र लेकर, धर्म का उत्थान एवं भव्य जीवों का कल्याण करना चाहिए। भगवान ने,इस प्रकार निश्चय किया ही था, कि उसी समय ब्रह्मकल्पवासी लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की, कि हे प्रभो, अब धर्म और तीर्थ प्रवर्ताइये। भगवान् स्वयंबुद्ध ही थे, इसलिए देवताओं की प्रार्थना को दृष्टि में रखकर अपने निश्चय के अनुसार, उन्होंने सगरकुमार को बुलवाया और उनसे कहने लगे 'हे बन्धु इस वंशागत राज्य का भार अब तुम स्वीकार करो। क्योंकि, मेरे लिए चारित्र ग्रहण करने का समय आगया है।' ज्येष्ठ भ्राता कि बात सुनकर,सगरकुमार,आँखों से जल बहाते हुए भगवान

से कहने लगे-'हे प्रभो, कहीं मुझ से कोई अपराध तो नहीं हुआ है, जो आप मुझे त्याग रहे हैं? जब आप राजा हैं, तब मैं युवराज के रूप में आपकी सेवा करता हूँ, फिर अब आपके चारित्र लेने पर मैं आपकी सेवा से क्यों विमुख रहूं? आपके चारित्र लेने पर भी, मैं आपका शिष्य बनकर आपकी सेवा करूँगा।' भगवान ने उत्तर दिया, वत्स! तुम्हारे लिए अभी चारित्र ग्रहण करने का समय नहीं आया है, क्योंकि तुम्हारे भोगफल देनेवाले कर्म अभी शेष हैं। भोगफल देनेवाले शुभ कर्मों को निःशेष कर, समय आने पर चारित्र लेना। ज्येष्ठ भ्राता की यह आज्ञा सुनकर, सगरकुमार चुप रहे।

महाराजा अजितनाथ ने, सगरकुमार का, विधिपूर्वक राज्याभिषेक करके, राजभार उन्हें सौंप दिया और आप, वार्षिकदान देने लगे। वार्षिकदान देते एक वर्ष बीत जाने पर, इन्द्रों के आसन कम्पित हुए। उन्होंने अवधिज्ञान द्वारा, भगवान का दीक्षा कल्याण समय जान लिया, और परिवार सहित अयोध्या में आ, भगवान को प्रणाम कर, भगवान के निष्क्रमणोत्सव की तयारी की। इन्द्रादि देव तथा सगरादि नरेन्द्रों ने भगवान का अभिषेक करके उन्हें, दिव्य वस्त्रालंकार पहनाये और सुप्रभा शिबिका में आरूढ किया। शिबिकारूढ भगवान देव तथा मनुष्य वृन्द से घिरे हुए अयोध्या के बाहर

सहस्राम्र बाग में पधारे। बाग में पहुँच कर और शिविका उतर कर, भगवान ने, सब वस्त्राभूषण त्याग दिये पश्चात् अनन्त सिद्धों को नमस्कार करके, माघ शुक्ल ६ के दिन-जबकि चन्द्र रोहिणी नक्षत्र में आया था-भगवान ने, सर्व सावद्य त्याग रूप दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करते ही, भगवान को मनः पर्यय ज्ञान हुआ। इस अवसर पर, नारकीय जीवों को भी प्रसन्नता हुई।

भगवान् के साथ ही, एक सहस्र राजाओं ने भी दीक्षा ली। इन्द्रादि देव और सगर राजा ने, भगवान को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके, सगर राजा तो अपने स्थान को गये और देवों ने नन्दीश्वर द्वीप में जाकर अष्टान्हिका महोत्सव मनाया, पश्चात् अपने अपने स्थान को गये। इस प्रकार भगवान का दीक्षा कल्याण हुआ।

दीक्षा ग्रहण करके, भगवान, अपने साथी मुनियों सहित अन्यत्र विहार कर गये। दूसरे दिन राजा ब्रह्मदत्त के यहाँ, भगवान का, छट्ठ तप (बेला) का पारणा हुआ। भगवान का पारणा होने से, देवता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने, दान की महिमा प्रकट करने के लिए, साढे बारह क्रोड़ स्वर्ण मुद्रा की; एवं पाँच दिव्य प्रकट किये।

भगवान, समिति गुप्ति का पालन एवं अप्रतिबन्ध विहार करते हुए, देह की ओर से भी निर्ममत्व होकर, बारह वर्ष तक

छद्मस्थावस्था में अनेक उपसर्ग सहते हुए विचरते रहे। इतने काल में ये, पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा कर चुके थे। पश्चात् भगवान, विचरते विचरते अयोध्या नगरी के उसी सहस्रा भवन में पधारे। वहाँ सतच्छेद नाम के वट वृक्ष के नीचे, कायोत्सर्ग करके भगवान, ध्यान में निमग्न खड़े रहे। इस ध्यान के द्वारा भगवान, सप्तम अप्रमत्त गुण स्थान से अपूर्व करण करके, आठवें नवयें और फिर दसवें गुण स्थान में पहुंचे और उन्होंने पहले मोह कर्म तथा फिर ज्ञानावरणीय आदि तीन कर्म नष्ट किये। इस प्रकार, पौष शुक्ल एकादशी के दिन जब चन्द्र रोहिणी नक्षत्र में था भगवान अजितनाथ को केवलज्ञान एवं केवल दर्शन प्राप्त हुए।

केवल ज्ञान की महिमा, अगम्य है। जो महापुरुष केवल ज्ञानी होते हैं, वे, तीनों लोक के त्रिकालवर्ती भावों को, हस्त-रेखा के समान देखते एवं जानते हैं।

भगवान अजितनाथ को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है, यह जानकर, अच्युतादि चौंसठ इन्द्र एवं असंख्य देव देवी, भगवान की सेवा में उपस्थित हुए। समवशरण की रचना हुई। भगवान अजितनाथ, अष्ट प्रतिहार चौंतीस अतिशय आदि जिनेश्वर की विभूति से युक्त होकर, समवशरण में विराजे।

उद्यान-रक्षक द्वारा, भगवान को केवल ज्ञान
शुभ समाचार, सगरचक्रवर्ती को प्राप्त हुए। यह

सुन कर सगरचक्रवर्ती बहुत हर्षित हुए। उन्होंने, साढे बारा क्रोड़ स्वर्णमुद्रा, यह समाचार लाने वाले उद्यान-रक्षक को पुरस्कार दी और आप अजितनाथ भगवान के दर्शन करने को चले। सहस्राम्र उद्यान के समीप पहुँच कर सगरचक्रवर्ती ने पाँच अभिगमन किये और भगवान की सेवा में उपस्थित होकर भगवान की वन्दना करके समवशरण में बैठे। भगवान ने, भव भ्रमण रूपी व्याधि का नाश करनेवाली औषधि के समान उपदेश सुनाया, जिससे सहस्रों नर नारी ने बोध पाकर, भगवान से संयम स्वीकार किया। फिर भगवान, सहस्राम्र वन से विहार कर गये।

एक समय, जिनेश्वर अजितनाथ कौशाम्बी नगरी के समीप पधारे। वहाँ एक ब्राह्मण ने भगवान से पूछा:—प्रभो यह ऐसे कैसे? भगवान ने उत्तर दिया, यह सब सम्यक्त्व की महिमा है। उस समय वहाँ उपस्थित भगवान के प्रधान गणधर सिंहसेन मुनि यद्यपि सर्वाक्षर सन्निपाती होने के कारण, ज्ञान द्वारा इस गूढ़ प्रश्नोत्तर को जान गये थे, फिर भी, भव्य जीवों के कल्याणार्थ उन्होंने भगवान से पूछा स्वामिन्, इस ब्राह्मण ने क्या पूछा और आपने क्या उत्तर दिया? स्पष्ट कहने की कृपा करें। भगवान फर्माने लगे, कि—इस नगरी के सन्निकट, एक शालिग्राम नाम का गाँव है। वहाँ, दामोदर नाम का एक ब्राह्मण रहता था। दामोदर की स्त्री का नाम सोमा था। इनके

शुद्धभट्ट नाम का पुत्र था, जिसका विवाह सुलक्षणा नाम की स्त्री के साथ हुआ था। शुद्धभट्ट और सुलक्षणा आनन्द से सांसारिक भोग भोगने लगे। थोडे समय में, दामोदर और उसकी पत्नी सोमा, परलोकवासी हुए। शुद्धभट्ट, माता-पिता विहीन होने के थोडे ही समय पश्चात्, धन वैभव से भी हीन हो गया। पत्नी सहित शुद्धभट्ट, दरिद्रावस्था भोगने लगे। दरिद्रता के कष्ट से दुःखित होकर, लज्जावश शुद्धभट्ट अपनी पत्नी से बिना कुछ कहे ही विदेश चला गया। सुलक्षणा, दरिद्रता के साथ ही पति वियोग के दुःख से दुःखित रहने लगी। उन्हीं दिनों में, वर्षा काल एक स्थान पर व्यतीत करने के अभिप्राय से विपुला नाम की एक आर्यिका, सुलक्षणा के यहाँ आई। सुलक्षणा ने विपुलासाध्वी जी की नियमित रूप में सेवा करने लगी। साध्वी जी का उपदेश सुनकर और धर्म की श्रेष्ठता जानकर सुलक्षणा ने, विपुला साध्वी से सम्यक्त्व ग्रहण करने के साथ ही, श्रावक व्रत भी स्वीकार किये।

वर्षाकाल समाप्त होने पर, साध्वीजी चली गई, परन्तु सुलक्षणा धर्मश्रद्धा पर दृढ रही और श्रावकव्रत का पालन करती रही। धर्म सेवा में लीन रहते हुए उसने, दारिद्र्य एवं पतिवियोग के कष्टों की भी कुछ पर्वा न की।

सुलक्षणा का पति शुद्धभट्ट, विदेश से द्रव्योपार्जन करके अपने घर लौटा। घर लौटकर उसने सुलक्षणा से कहा, कि हे प्रिये, मैं जब यहाँ था. तब तो तुम मेरा किंचित भी वियोग नहीं सह सकती थीं, फिर तुमने मेरे वियोग का इतना लम्बा समय कैसे निकाला? सुलक्षणा ने उत्तर दिया, प्राणनाथ, मैं आपके वियोग से उसी प्रकार व्याकुल थी, जिस प्रकार जल के वियोग से मछली व्याकुल रहती है, लेकिन एक साध्वीजी यहाँ पधारी थीं और उन्होंने अपने ही गृह में चातुर्मास बिताया था। मैंने उनका उपदेश सुना। उनके दिये हुए धर्मोपदेश से मुझे बहुत शान्ति मिली और मैं आपके वियोग का दुःख धैर्यपूर्वक सहन करने में समर्थ हो सकी। मैंने उनसे सम्यक्त्व सहित श्रावक के द्वादश व्रत भी स्वीकार किये। इनके आराधन में ही मैं इतना समय बिताने में समर्थ हो सकी।

शुद्धभट्ट ने पत्नी की बात सुनकर कहा हे अनघे, सम्यक्त्व किसे कहते हैं और उससे क्या लाभ होते हैं? सुलक्षणा कहने लगी, हृदयेश्वर, सुदेव में देवबुद्धि, सद्गुरु में गुरुबुद्धि और शुद्धधर्म में ही धर्मबुद्धि, सम्यक्त्व के अंग हैं। कुदेव में देवबुद्धि, कुगुरु में गुरुबुद्धि और अधर्म में धर्मबुद्धि विपर्यय भाव होने से मिथ्यात्व कहलाता है। सर्वज्ञ, रागादि दोष रहित

त्रैलोक्य पूज्य और यथार्थ अर्थ के प्ररूपक अरिहन्त भगवान ही देव हैं। उनका ध्यान धरना,उनकी उपासना करना और उनकी शरण प्राप्त करना ही कल्याणकारक है। इसीप्रकार महाव्रतों के धारक, भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह करने वाले, निरन्तर सम-भाव में प्रवर्तने वाले और कंचन कामिनी के त्यागी अनगार ही गुरु हैं। दुर्गति में पड़ने से बचावे, वही धर्म है। इस धर्म के दस भेद हैं।

सम्यक्त्व, सम, सम्वेग, निर्वेद अनुकम्पा और आस्तिकता इन लक्षणों के सद्भाव से,और शंका कांक्षा,विचिकित्सा, परपाखण्ड प्रशंसा, और परपाखंड संस्तव (परिचय) इन दूषणों के अभाव से पहचाना जाता है। इसी का नाम सच्ची समकित है।

समकिती पुरुष की बुद्धि यथार्थ होती है। वह, जीवादि तत्वों को जानने लगता है, जिससे इस लोक में भी उसका जीवन शान्ति-पूर्वक बीतता हैं और परलोक भी आनन्द-दायक होता हैं।

अपनी पत्नी से सम्यक्त्व का स्वरूप और उसके लाभ सुन कर, शुद्धभट्ट बहुत प्रसन्न हुआ। सुलक्षणा की ही तरह, उसने भी सम्यक्त्व स्वीकार किया। पतिपत्नी, शुद्ध रीति से श्रावक व्रत पालते हुए आनन्द से रहने लगे।

उस शालिग्राम ग्राम में सच्चे साधुओं के संसर्ग का अभावसा था, इसलिए वहाँ के दूसरे लोग, शुद्धभट्ट एवं उसकी पत्नी के लिए अपवाद बोलने लगे। एक दिन शुद्धभट्ट अपने पुत्र को गोद में लिए, ब्राह्मणों की सभा में गया। सभा के ब्राह्मण, यज्ञवेदी के समीप बैठे हुए थे। वे लोग, शुद्धभट्ट से कहने लगे, कि तू श्रावक है, इसलिए यहाँ तेरा काम नहीं है, तू यहाँ से चला जा। ब्राह्मणों के कटुवचन सुन कर, शुद्धभट्ट बहुत खेद पाया। उसने, यह कहते हुए, कि 'जो जिनोक्त धर्म संसारसमुद्र से तारक न हो, तीर्थङ्कर प्रभु आप्त देव न हों, और संसार से सम्यक्त्व का प्रभाव लुप्त हो गया हो, तो यह मेरा पुत्र अग्नि में भस्म हो जाय और यदि मैंने सत्य धर्म एवं शुध्द सम्यक्त्व ग्रहण किया हो, तो अग्नि शान्त हो जाय !' अपने लड़के को अग्नि में फेंक दिया। उस समय, सन्निकट रही हुई समकित धारिणी देवी ने, बालक को ऊपर ही ऊपर ले लिया और अग्नि शान्त कर दी। समकित का यह प्रभाव देखकर, सभा के सब ब्राह्मण बहुत आश्चर्यान्वित हुए।

शुध्दभट्ट, अपने पुत्र को लेकर घर आया। उसने, अपनी स्त्री से सब वृत्तान्त कहा। उसकी स्त्री सुलक्षणा ने अपने पति से कहा-नाथ, आपने बड़ी भारी त्रुटि की थी। यदि उस समय वहाँ कोई सम्यक्त्व धारी देवी-देव न होता, तो बड़ा अनर्थ

जाता। अग्नि में पुत्र के जल जाने पर, धर्म की निन्दा होती
ौर जो सदा सर्वदा सत्य है, वह कलंकित होता। भविष्य में,
ाप ऐसा अविचार-पूर्ण कार्य कदापि न करें। सुलक्षणा के इस
पदेश से, शुद्धभट्ट धर्म में अधिक दृढ़ बना।

यह वर्णन करके भगवान अजितनाथ ने, गणधर सिंहसेन
नि से कहा, कि इसी विषय में इस ब्राह्मण ने प्रश्न किया
ा। यह कह कर, भगवान वहाँ से विहार कर गये।

भगवान श्री अजितनाथ, केवली पर्याय में बारह वर्ष कम
क लाख पूर्व तक विचरते और भव्य जीवों का कल्याण करते
हे। अजितनाथ भगवान के पंचानवे गणधर, एक लाख मुनि,
ीन लाख तीस हजार साध्वी, दो लाख अठयान्वे हजार श्रावक
ौर पाँच लाख पैतालिस हजार श्राविकाएँ थीं। अपना निर्वाण
ाल समीप जानकर भगवान अजितनाथ, एक हजार मुनियों
हित सम्मेत शिखर पर पधार गये। सम्मेत शिखर पर भगवान
े 'पादोगमन' नाम का संथारा किया, जो एक मास तक चल-
ा रहा। अन्त में चैत्र शुक्ल ५ को-जब चन्द्र, मृगशिर नक्षत्र में
ाया-भगवान ने, अयोगी अवस्था में प्राप्त हो, चार अघातिया
र्मक्षय किये और सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

भगवान अजितनाथ, अठारह लाख पूर्व तक कुमारावस्था
ें रहे। एक सहस्र वर्ष अधिक त्रैपन लाख पूर्व तक राज्य

किया। बारह वर्ष छद्मावस्था में व्यतीत किये और बारह व[र्ष]
न्यून एक लाख पूर्व केवली पर्याय में रहे। इस प्रकार भगवा[न]
अजितनाथ ने सब बहत्तर लाख पूर्व का आयुष्य पाया औ[र]
आदिनाथ भगवान के निर्वाण को पचास लाख क्रोड़ सागर बीत
जाने पर, भगवान श्री अजितनाथ का निर्वाण-कल्याण हुआ।

प्रश्न

१ – भगवान अजितनाथ के माता-पिता और काका काकी का नाम क्या था?

२---भगवान अजितनाथ का पारणा किसके यहाँ हुआ था?

३ –भगवान अजितनाथ, पूर्वभव में कौन थे और किस कार्य से तीर्थङ्कर गोत्र बाँधा था?

४– समकित का क्या महात्म्य है?

भगवान् श्री संभवनाथ।

पूर्व-भव
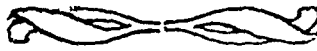
श्लोक—

या दुर्लभा भव भ्रताष्ट भुवल्ल रीव।
मानामित द्रुम हिमाभजितारि जात॥
श्री सम्भवेश! भवभिद भवतोऽस्तू सेश।
ऽभानामित द्रुमहिलाभ जितारिजातम्॥

जम्बू द्वीप के आगे लवण समुद्र है। लवण समुद्र के आगे वलयाकार धातकी खण्ड है। उस धातकी खण्ड द्वीप में क्षेमपुर नाम का एक नगर था। क्षेमपुर का राजा विपुलवाहन न्यायी, दयालु, प्रजा पालक और धर्मात्मा था। एक समय विपुलवाहन के राज्य में दुष्काल पड़ा। अधिकांश प्रजा, अन्न के अभाव से दुख पाने लगी और अन्न के लिए, इधर उधर भटकने लगी। राजा विपुलवाहन से, प्रजा का यह दुख न देखा गया। उसने अपने कर्मचारीयों से कहा, कि कोठार में अन्न भरा है और प्रजा अन्न के लिए कष्ट उठा रही है। यदि इस समय भी कोठार के अन्न का उपयोग न किया गया, तो फिर कोठार किस काम का। इसलिए कोठार का अन्न, क्षुधा पीड़ित प्रजा में बांट दो।

कोठार का अन्न भूखी प्रजा में बँटवाने के साथ ही, राजा विपुलवाहन ने, अपने पाकगृह में से, मुनियों को प्रचुर एवं प्रासुक आहार देने और श्रावकों को भोजन करवाने की भी आज्ञा दी। उसने केवल आज्ञा ही न दी, किन्तु वह मुनि आदि को अपने हाथ से भी आहार देने लगा। इस प्रकार वह दुष्काल भर अन्नदान और उत्कृष्ट भाव से चतुर्विध संघ की सेवा भक्ति करता रहा एवं प्रजा को शान्ति देता रहा। इस कार्य के द्वारा उसने, उत्कृष्ट पुण्य उपार्जन किया।

एक समय राजा विपुलवाहन, अपने महल की छत पर बैठे

थे। उन्होंने वहां बैठे बैठे यह देखा, कि मेघ की घटा, आकाश मण्डल को आच्छादित कर रही है, इतने ही में प्रतिकूल पवन से वह छिन्न भिन्न और थोड़ी ही देर में लुप्त प्रायः हो गई। मेघ घटा की दोनों दशा देखकर, महाराजा विपुलवाहन को बड़ा विचार हुआ। वे सोचने लगे, कि जिस प्रकार यह मेघ-घटा देखते ही देखते बढ़ी और विनष्ट हो गई इसी प्रकार सांसारिक सम्पत्ति भी देखते-ही-देखते बढ़ती और विनष्ट हो जाती है। ऐसा होते हुए भी, मोह के वशीभूत बने हुए प्राणी, संसार के क्षणभंगुर पदार्थों को अविनाशी मानकर, उन्हें पकड़े रहने की चेष्टा करते हैं। उनकी इस चेष्टा के परिणाम स्वरूप उन्हें अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। मुझे उचित है, कि मैं आयुष्यबल के विद्यमान, शरीर स्वस्थ और इन्द्रियों के शक्ति सम्पन्न रहते ही आत्मा का कल्याण कर लूँ। अन्यथा अन्त में पश्चाताप के सिवा कुछ शेष न रहेगा।

इस प्रकार विचार कर राजा विपुलवाहन ने, राज-भार अपने पुत्र को सौंप दिया और आप, स्वयंप्रभ आचार्य के समीप, संयम में प्रव्रजित हो गया। संयम में प्रव्रजित होकर विपुल वाहन ने, अनेक प्रकार के तप परिषह तथा उपसर्गों को सहन और बीस बोल की आराधना करके, तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। अन्त में, सातवीं ग्रैवेयक में २७ सागर की स्थिति वाले अहमिन्द्र देव हुए।

अन्तिम भव ।

इसी जम्बूद्वीप के भरतार्द्ध में, चतुर्थ आरे का एक पंचमांश काल शेष था तब, श्रावस्ती नाम की एक रमणीय नगरी थी, जो अपनी छटा में स्वर्ग की स्पर्धा करती थी। वहाँ जितारि नाम के महाभुज राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सैन्यादेवी था। सैन्या देवी, गुण रूप में अप्रतिम एवं पतिपरायणा थीं।

सातवीं ग्रैवेयक का आयुष्य समाप्त करके विपुलवाहन का जीव, फाल्गुन शुक्ल ८ की रात को-जब चन्द्र मृगशर नक्षत्र के साथ था-महारानी सैन्यादेवी के गर्भ में आया। सैन्यादेवी उस समय अपनी मनोहर शय्या पर शयन किये थीं। निद्रावस्था में सैन्या देवी ने, तीर्थङ्कर के गर्भ कल्याण सूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्नों को देख कर महारानी सैन्या देवी, जाग पड़ीं और स्वप्नों का स्मरण करके बहुत हर्षित हुईं। वे, शय्या से उठ कर, महाराजा जितारि के शयनागार में आईं और महाराजा जितारि को जगाकर, उन्हें अपने स्वप्न सुनाये। सैन्यादेवी के स्वप्नों को सुनकर. महाराजा जितारि भी बहुत हर्षित हुए। उन्होंने, सैन्यादेवी से, स्वप्नों का यह फल बताया, कि तुम्हारी कोंख से महा भाग्यशाली पुत्र होगा। स्वप्नों का फल सुनकर महारानी सैन्यादेवी, हर्ष सहित अपने शयन मन्दिर में लौट आईं।

महाराजा जितारि ने, प्रातःकाल स्वप्न-पण्डितों को बुला, उनसे सैन्यादेवी के देखे हुए स्वप्नों का फल पूछा। स्वप्न पाठकों ने कहा, कि महारानी, त्रिलोक पूज्य पुत्र प्रसव करेंगी यह सुनकर महाराजा जितारि बहुत प्रसन्न हुए और पण्डितों को पारितोषिक देकर बिदा किया।

महारानी सैन्यादेवी यत्न पूर्वक गर्भ का पोषण करने लगीं नौमास साडे सात रात बीतने पर, मार्ग शीर्ष शुक्ल १४ के दिन जब चन्द्र मृगशर नक्षत्र में आया महारानी सैन्यादेवी ने कंचनवर्णी एक सहस्र आठ लक्षणों के धारक और अश्व के चिन्ह वाले पुत्र को जन्म दिया। छप्पन दिककुमारिका, चौंसठ इन्द्र और असंख्य देव-देवी ने सुमेरू गिरि पर भगवान का जन्मकल्याण मनाया। महाराजा जितारि ने भी, बड़ी धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव किया और पुत्र का नाम सम्भव कुमार रखा।

अनेक देवी-देव से सेवित भगवान सम्भवकुमार, द्वितीया के चन्द्र समान वृद्धि पाने लगे। भगवान, जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक थे, इसलिए इन्हें किसी से विद्या कला आदि सीखने की तो आवश्यकता ही न थी।

भगवान सम्भवकुमार, किशोरावस्था में प्राप्त हुए। किशोरावस्था में उनका प्रमाणयुक्त चार सौ धनुष ऊँ[illegible]
[illegible] रूप लावण्य से, स्वर्ण कान्ति को भी परा[illegible]

था। भगवान सम्भवकुमार से महाराजा जितारि और महारानी सैन्या देवी ने कहा हे पुत्र, हम तुम्हारा विवाहोत्सव देखने की इच्छा रखते हैं, हमें तुम्हारा विवाह करने की बड़ी उत्कण्ठा है, इसलिए तुम्हारा विवाह करने की अनुमति दो भगवान, अपने ज्ञानातिशय से जानते थे,कि भोग-फल देनेवाले कर्म खपाना शेष हैं, इसलिए वे, माता-पिता की बात सुनकर मौन रहे। भगवान की अनुमति समझ, महाराजा जितारि ने अनेक समवयस्का और लावण्यवती युवतियों के साथ, संभव-कुमार का विवाह कर दिया। पत्नियों सहित सम्भव कुमार आनन्द से रहने लगे। लगभग १५ लाख पूर्व भगवान को कुमार पद में बीते होंगे उस समय, महाराजा जितारि को संसार से वैराग्य हो गया। वे, राजपाट सम्भव कुमार को सौंप कर संयम में प्रव्रजित हो गये और उनने आत्मकल्याण किया।

महाराजा सम्भवनाथ, न्यायपूर्वक राज्य करने और प्रजा को उन्नत एवं सुखसमृद्ध बनाने लगे। महाराजा सम्भवनाथ को जब इसी प्रकार राज्यावस्था में ४४ लाख पूर्व बीत चुके, तब वे, एकान्त स्थान पर बैठ विचार करने लगे। उन्हें विचार हुआ कि संसार के कार्य न तो कोई समाप्त कर ही सका है न कर ही सकता है, केवल प्रपंचों में ही फँसे रहना है। इस मनुष्य शरीर को सांसारिक प्रपंचों में ही लगाये रहना इसके

द्वारा परमार्थ न करना और अन्त में दुर्गति में पड़ना, बड़ी भारी मूर्खता है। इसलिए मुझे अब, आत्म कल्याण का मार्ग अपना कर, भव्य जीवों को धर्म मार्ग में लगाना चाहिए।

भगवान ने इस प्रकार का निश्चय किया,इतने ही में, ब्रह्म-लोक वासी सारस्वतादिक लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की हे प्रभो, अब धर्म तीर्थ प्रवर्ताइये। देवताओं की प्रार्थना और अपने निश्चय के अनुसार,भगवान ने,राजपाट अपने पुत्रों.को सौंप दिया और आप वार्षिक-दान देने लगे।

भगवान, नित्य प्रति एक क्रोड़ आठ लाख सोनैये, सवा पहर दिन चढ़ने तक दान देते रहे। दान देते जब एक वर्ष समाप्त हो गया, तब इन्द्र तथा देवी देव भगवान की सेवा में उपस्थित हुए। इनने, भगवान का दीक्षा दीक्षाभिषेक, भगवान को वस्त्रालंकार पहनाये। पश्चात भगवान को सिद्धार्थ नाम की पालकी में बैठाया। शिविकारूढ़ भगवान, असंख्य देव और मनुष्यों के वृन्द से घिरे हुए, श्रावस्ती नगरी के मध्य होकर, सहस्राम्र वन में पधारे। सहस्राम्र वन में पधार कर भगवान शिविका से उतर पड़े और सब वस्त्रालङ्कार भी त्याग दिये। फिर, वेला के तप में, मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा के दिन जब चन्द्र मृगशर नक्षत्र के साथ था अनन्त सिद्धों को नमस्कार करके भगवान ने,सर्व सावद्य योग के त्याग रूप संयम स्वीकार किया।

दीक्षा लेते ही, भगवान् को मनः पर्यय ज्ञान हुआ। भगवान के साथ ही, एक सहस्र राज-परिवार के लोगों ने भी दीक्षा ली।

संयम में प्रवर्जित होकर भगवान, अन्यत्र विहार कर गये। दूसरे दिन, सुरेन्द्रदत्त राजा के यहाँ, भगवान का पवित्रान्न से पारणा हुआ। भगवान का पारणा होने से, देवताओं ने, पाँच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की।

जगद्गुरु भगवान संभवनाथ, चौदह वर्ष तक छद्मस्थावस्था में, निग्रन्थ धर्म का पालन करते हुए, अप्रमत्त रूप से अनेक ग्राम नगर में विचरते और भव्यजनों का कल्याण करते रहे। इतने समय में भगवान ने, मनोगुप्ति, तप, और ध्यान के द्वारा, कर्मों की निर्जरा कर दी। शुद्ध भावना बढ़ाकर, और अपूर्व करण करके भगवान, शुक्लध्यान ध्याने लगे। अन्त में कार्तिक कृष्ण ५ को—जब चन्द्र मृगशर नक्षत्र में आया—क्षपक श्रेणी में पहुंचकर भगवान ने, चार घनघातिक कर्म नष्ट कर दिए और केवल ज्ञान प्राप्त किया।

भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है, यह जानकर इन्द्रादि देव केवल ज्ञान की महिमा करने के लिए उपस्थित हुए। उन्होंने, समवशरण की रचना की, जिसमें बैठकर बारह प्रकार की परिषद् ने, भगवान की भवनाशिनी वाणी सुनी। सर्व दुःख भंजनी भगवान की वाणी से, अनेक प्राणियों को संसार

से विरक्ति हो गई और उन्होंने भगवान से संयम स्वीकार किया। बहुत से लोगों ने श्रावक व्रत और सम्यक्त्व ग्रहण किया।

भगवान संभवनाथ के, चारु आदि १०२ गणधर थे। दो लाख साधु थे। तीन लाख छत्तीस हजार साध्वियाँ थीं। दो लाख त्रयान्वे हजार श्रावक थे। और छः लाख छत्तीस हजार श्राविकाएँ थीं।

चार पूर्वांग और चौदह वर्ष कम एक लाख पूर्व तक भगवान, केवली पर्याय में विचरते और दुःखी जीवों का उद्धार करते रहे। अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान, एक हजार मुनियों सहित, सम्मेत शिखरपर पधार गये और वहाँ, पादोपगमन नाम का अनशन किया। चैत्र शुक्ल ५ के दिन, जब चन्द्र मृगशर नक्षत्र के साथ था, भगवान एक मास के अनशन में, मन वचन और काय के योग को रूँधकर, शैलेशी अवस्था में प्राप्त हुए और चार अघातिक कर्मों को नष्ट कर सिद्ध गति में पधार गये।

भगवान संभवनाथ, पन्द्रह लाख पूर्व कुमारावस्था में रहे और चार पूर्वांग चवाँलिस लाख पूर्व, राज्य किया। चौदह वर्ष संयम लेकर छद्मस्थावस्था में रहे और चार पूर्वांग तथा चौदह वर्ष कम एक लक्ष पूर्व केवली पर्याय में रहे। इस

प्रकार भगवान ने सब साठ लाख पूर्व का आयुष्य पाया भगवान अजितनाथ के निर्वाण को तीस लाख कोड़ साग व्यतीत हुए थे, तब भगवान सम्भवनाथ निर्वाण पद को प्रा हुए।

भगवान सम्भवनाथ निर्वाण पद को प्राप्त हुए, यह जानव इन्द्र तथा देवता, निर्वाणोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए और निर्वाणोत्सव करके नन्दीश्वर द्वीप में जा, अष्टान्हिका महोत्सव मना अपने-अपने स्थान को गये।

प्रश्न—

१—राजा विपुलवाहन ने किस कार्य द्वारा तीर्थंकर नाम गोत्र का सम्पादन किया था?

२—राजा विपुलवाहन को, कौन सी घटना देखकर वैराग्य हुआ था?

३—राजा विपुल वाहन, किस गति में, किस स्थान पर और कितनी स्थिति लेकर गये थे?

४—भगवान सभवनाथ के माता-पिता कौन थे और वे कहाँ रहते थे?

५—भगवान सम्भवनाथ की जन्मतिथि कौनसी है?

६—भगवान सम्भवनाथ, राज्यासन पर किस अवस्था में विराजे थे और किस अवस्था तक राज्य करते रहे?

७—भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, तब उनकी अवस्था कितनी थी और केवली पर्याय में कितने काल तक रहे ?

८—भगवान सम्भवनाथ द्वारा स्थापित चारों तीर्थ की भिन्न भिन्न संख्या क्या थी ? और गणधर की गणना किस में होगी ?

९—भगवान का निर्वाण किस तिथि को हुआ था ?

१०—भगवान ने निर्वाण के पूर्व कौन-सा अनशन किया था और वह कितने दिन चलता रहा ?

३
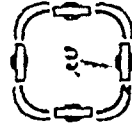
भगवान श्री अभिनन्दनजी

पूर्व-भव
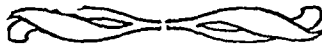
श्लोक—

नि:शेष सत्व परिपालन सत्य सन्धो,
भूपाल संवर कुलाम्बर पद्मबन्धो ।
कूर्व्वन कृपा भवभिदे जिन मे विनम्र,
भूपाल संबर कुलाम्बर पद्मबन्धो ।।
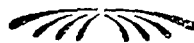
इस जम्बूद्वीप के अन्तर्गत-जहाँ सदाकाल प्रारम्भिक चौथे आरे के भाव बर्तते हैं उस पूर्व महा विदेह में,मंगलावती नाम की विजय है। मंगलावती विजय में, रत्नसंचया नाम की अति रमणीय नगरी थी। वहाँ महाबल नाम का राजा राज्य करता था,जो न्याय नीति में निष्णात,अर्हन्त धर्म का उपासक और दान शील तप एवं भाव से धर्म का सेवक था।

कालान्तर में, महाबल राजा को संसार से वैराग्य हो गया। उसने, विमलसूरि नाम के आचार्य के पास दीक्षा ले ली और समिति गुप्ति सहित चारित्र की आराधना करने लगा। तप और अनेक परिषह को सहन करके, तथा तीर्थंकर नाम कर्म योग्य बीस बोल में से कितने ही बोल की उत्कृष्ट आराधना करके, महाबल ने, तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया अन्त में संलेखणा संथारा करके शरीर त्याग, जयन्त नाम के विमान में, बत्तीस सागर की आयु वाला, महर्द्दिक देव हुवा।

अन्तिम भव।

तिर्छालोक के मध्य भाग में, असंख्य द्वीप समुद्रों से घिरा हुआ, जम्बू द्वीप है। जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में, अयोध्या नाम्नी नगरी थी,जिसे भगवान् ऋषभदेव के समय में देवताओं ने 'विनीता नगरी' नाम देकर बसाया था। बदलते बदलते

विनीता का नाम अयोध्या हो गया। अयोध्या में, संवर नाम के ईक्ष्वाकु वंशीय राजा, राज्य करते थे। संवर राजा के सिद्धार्थ नाम की सुखदायिनी रानी थी।

महाबल का जीव, जयन्त विमान का आयुष्य भोगकर वैशाख शुक्ला ४ की रात में, जब चन्द्र, अभिजित नक्षत्र में आया हुआ था-महारानी सिद्धार्था के उदर में आया। उस समय महारानी सिद्धार्था, सुन्दर और स्वच्छ शय्या पर शयन किये थीं। उन्होंने तीर्थंकर के जन्मसूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्नों को देखकर, वे जाग उठीं। स्वप्नों का स्मरण करके वे बहुत हर्षित हुई और अपने पति के शयनागार में जा, पति को जगाकर, उन्हें सब स्वप्न सुनाये। महाराजा संवर, स्वप्नों को सुनकर आनन्दित हुए। स्वप्नों पर विचार करके, उन्होंने, महारानी से कहा, कि स्वप्नों का विचार करते हुए तुम्हारे उदर से त्रिलोकपूज्य पुत्र होगा। उसी समय देवता तथा इन्द्र उपस्थित हुए और उन्होंने कहा, कि महारानीजी के गर्भ से, चौथे तीर्थंकर पुत्र में उत्पन्न होंगे। यह सुनकर महारानी सिद्धार्था बहुत प्रसन्न हुई। वे,यत्नपूर्वक गर्भ का पोषण करने लगीं।

अपनी इच्छाओं को गर्भ की इच्छा जानकर, महारानी सिद्धार्था पूर्ण करती रहीं। इस प्रकार नौ मास साढे सात रात पूर्ण होने पर, माघ शुक्ल २ के दिन जब चन्द्र अभिजित

नक्षत्र में आया और दूसरे अनेक शुभ योग का संयोग हुआ तब-महारानी सिद्धार्था ने स्वर्ण वर्णी कपि के लांछनवाले त्रिलोक पूज्य पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही तीनों लोक में प्रकाश हो गया और नारकीय जीवों को भी क्षण भर के लिए शान्ति मिली।

तीर्थंकर का जन्म हुआ जानकर, चौंसठ इन्द्र एवं असंख्य देवों ने उपस्थित होकर, सुमेरुगिरि पर भगवान का जन्म कल्याण मनाया। दिक कुमारियों ने भी, अपना सब प्रसूतिक कार्य किया। पश्चात् सब देव, नन्दीश्वर द्वीप में जाकर और अष्टान्हिका महोत्सव मना कर, अपने-अपने स्थान को गये।

महाराजा संवर ने, पुत्र जन्मोत्सव मनाकर, पुत्र का नाम अभिनन्दन कुमार रखा। परिजन दास दासी एवं देवीदेव से सेवित अभिनन्दनकुमार वृद्धि पाने लगे। कुमारावस्था व्यतीत कर, भगवान अभिनन्दन, किशोरावस्था में प्राप्त हुए। उनका सर्वांग सुन्दर देदीप्यमान और कान्तियुक्त शरीर साढे तीनसौ धनुष ऊँचा था। महाराजा संवर ने अनेक राजकन्याओं का कुमार अभिनन्दन के साथ विवाह कर दिया। अभिनन्दन कुमार अपनी पत्नियों के साथ आनन्द से दिन व्यतीत करने लगे।

भगवान अभिनन्दन की अवस्था जब साढे बारह लाख

पूर्व की हो गई, उस समय महाराजा संवर को संसार से वैराग्य हो गया। उन्होंने, राजपाट अभिनन्दनकुमार को सौंप दिया और आप आत्म-कल्याण के लिए भव्-वारिधि से पार करनेवाले संयम में प्रव्रजित हो गये।

भोग फल देनेवाले कर्मों की निर्जरा करने के लिए भगवान अभिनन्दन, न्यायनीतिपूर्वक राज्य करने लगे। इस प्रकार भगवान को साढे छत्तीस लाख पूर्व और आठ पूर्वांग बीत गये। एक दिन भगवान ने यह विचार किया, कि अब मुझे संसार व्यवहार से निकल कर, मोक्षाभिलाषी जीवों को मार्ग दर्शानेवाले धर्म एवं तीर्थ की प्रवृत्ति करनी चाहिए। भगवान के यह विचारने के साथ ही, लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की, कि हे प्रभो, अब भव्य जीवों के कल्याणार्थ तीर्थ प्रवर्ताइये। अपने विचार और देवताओं की प्रार्थना के अनुसार, स्वयंबुद्ध भगवान अभिनन्दन ने, वार्षिकदान देना प्रारम्भ कर दिया। वार्षिकदान समाप्त होने पर, इन्द्र और देवों ने उपस्थित होकर, भगवान का अभिषेक किया और भगवान को दिव्य वस्त्रालंकार धारण कराकर, अर्थसिद्धा शिबिका में आरूढ किया। वाद्य गीत एवं जयध्वनि के साथ भगवान, देव और मनुष्यों के वृन्द से घिरे हुए, अयोध्या के मध्य होकर, सहस्राम्र उद्यान में पधारे। सहस्राम्र उद्यान में,

पालकी से उतर कर भगवान ने, वस्त्राभूषण त्याग दिये और माघ शुक्ल १२ को दिन के अन्तिम भाग में जब अभीच नक्षत्र था—छट्ट के तप में,एक सहस्र राज परिवार के लोगों के साथ, सर्व विरति चारित्र स्वीकार किया।

चारित्र स्वीकार करते ही भगवान को मनःपर्यय नाम का चौथा ज्ञान प्राप्त हुआ। तीनों लोक में उद्योत हुआ और क्षणभर के लिये नारकीय जीवों को भी शान्ति मिली। भगवान को वन्दना नमस्कार करके, सब देव मनुष्य अपने-अपने स्थान को गये।

दूसरे दिन,अयोध्या के ही राजा इन्द्रदत्त के यहाँ,भगवान का छट्टतप का पारणा हुआ। देवताओं ने, पाँच दिव्य प्रकट करके, दान की महिमा बताई। पारणा करके भगवान, अन्यत्र विहार कर गये।

भगवान ने, अठारह वर्ष तक अनेक तप अभिग्रह और मौनादि करके, अपने, कर्मों को निर्जर दिये। पश्चात्, विहार करते हुए भगवान, अयोध्या के उसी सहस्राम्र वन में पधारे। वहाँ, छट्टतप पूर्वक रायण (खिरनी) के वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग किया। क्षपकश्रेणी में चढ़कर भगवान ने मोह कर्म नष्ट किया। फिर शुक्लध्यान के द्वितीय चरण के अन्त में, सर्वघातिक कर्म क्षय करके भगवान ने केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया।

भगवान को केवलज्ञान होते ही, तीनों लोक में उद्योत

हुआ। चौंसठ इन्द्र और असंख्य देवी देव ने,भगवान की सेवा में उपस्थित होकर केवलज्ञान की महिमा की। वहां पर, समवशरण की रचना हुई, और बारह प्रकार की परिषद् एकत्रित हुई। भगवान अभिनन्दन ने, कल्याण कारिणी देशना दी,जिसे सुनकर बहुत लोग बोध पाये और भगवान के समीप संयम में प्रवर्जित हुए।

भगवान अभिनन्दन के एक सौ सोलह गणधर, तीन लाख मुनि, छः लाख तीस हजार आर्यिका, दो लाख अठ्यासी हजार श्रावक, और पांच लाख सत्ताइस हजार श्राविका थीं वे, आठ पूर्वाङ्ग और अठारह वर्ष कम एक लाख पूर्व तक केवली पर्याय में रहे,जिससे अनेक भव्य प्राणियों को कल्याण मार्ग बताया। अपना निर्वाणकाल समीप जानकार,एक सहस्र मुनि सहित भगवान, सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहां अनशन किया, जो एक मास तक चलता रहा। अन्त समय में भगवान, सयोगी अवस्था त्याग, अयोगी अवस्था में प्राप्त हुए और चार अघातिक कर्म नष्ट करके, मोक्ष पधार गये।

भगवान अभिनन्दन, साढे बारह लाख पूर्व, कुमारावस्था में रहे। साढे छत्तीस लाख पूर्व तथा आठपूर्वाङ्ग राज्य किया अठारह वर्ष तक संयम लेकर छद्मास्थावस्था में रहे ८ पूर्वांग और १८ वर्ष कम १ लाख पूर्व तक केवल पर्या में रहे।

भगवान इस प्रकार अभिनन्दन ने, सब पचास लाख पूर्व का आयुष्य भोगा और भगवान सम्भनाथ के निर्वाण को दस लाख क्रोड़ सागर व्यतीत होने पर निर्वाण पधारे।

प्रश्न

१—भगवान अभिनन्दननाथ पूर्व भव में कौन थे? और क्या करके तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन किया?

२—भगवान अभिनन्दन के माता-पिता का नाम क्या था?

३—भगवान अभिनन्दन का जन्मस्थान कौनसा और ज म तिथि कौनसी है?

४ भगवान ने कुल कितनी आयु भोगी और किस-किस पद पर कितने-कितने काल तक रहे?

५ भगवान अभिनन्दन के साधु साध्वी और श्रावक श्राविका कितनी थीं?

भगवान श्री सुमतिनाथ।

पूर्व-भव
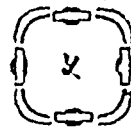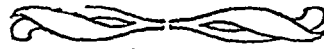
श्लोक—

भक्तिर्त्रजेन विहिता तप पाद पद्म,
संत्कामिता सुमन सां सुमते न तेन।
लब्धा सुखेन जिन सिद्धि समृद्धि वृद्धिः
सत्कामिता सुमनसां सुमतेन तेन॥
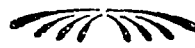
इसी जम्बू द्वीप में, पूर्व महाविदेह का मंडन रूप पुष्प कलावती विजय है। उस विजय में, शंखपुर नामका एक नगर था। शंखपुर में, विजयसेन नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सुदर्शना था।

एक समय वसन्त ऋतु में, नगर के सब लोग, वन क्रीड़ा के अभिप्राय से उद्यान में गये। रानी सुदर्शना भी, हस्तिनी पर बैठकर, उद्यान में गई। वहाँ उन्होंने देखा, कि वस्त्राभूषण पहने हुई एक वृद्धा बैठी है और दिक्‌ कुमारियों की समानता करने वाली आठ रमणियाँ उस वृद्धा की सेवा कर रही हैं। पता लगाने पर रानी को मालूम हुआ, कि यह वृद्धा, यहाँ के प्रतिष्ठित सेठ की पत्नी है और ये सेवा करने वाली आठों युवतियाँ, इस वृद्धा की पुत्रवधू हैं। इस वृद्धा के दो पुत्र हैं, और प्रत्येक के चार-चार स्त्रियाँ हैं। वे ही, अपनी सास की सेवा आराध्य देवी के समान कर रही हैं।

वृद्धा और उसकी पुत्र वधू का इस प्रकार परिचय पाकर रानी विचारने लगीं—अहा! इस वृद्धा को धन्य है, जो पुत्र एवं पुत्रवधुओं का सुख भोग रही है। मैं, राज-रानी हूं तो क्या पुत्रहीन होने के कारण हतभागिनी ही हूँ। इस प्रकार के विचारों से, रानी चिन्तित हुईं और वनक्रीड़ा का विचार त्याग, वे अपने महल को लौट आईं। महल में आकर रानी

खान-पान और वस्त्रालङ्कार त्याग, रुग्ण की तरह शय्या पर पड़ रहीं। दासियों द्वारा रानी की उक्त दशा सुनकर, महाराजा विजय सेन, रनवास में आये। वे, रानी को देखकर कहने लगे—प्रिये, आज तुम इस प्रकार दुःखी एवं चिन्तित क्यों हो? राजा के अनेक बार पूछने पर रानी ने अपनी चिंता का कारण कह सुनाया। राजा ने कहा-देवी, यद्यपि तुम्हारी अभिलाषा अनुचित नहीं है, परन्तु पुत्र प्राप्त करना मनुष्य के हाथ की बात नहीं है। मैं तुम्हारी इस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए, कुलदेवी की आराधना करूँगा इसलिए तुम चिन्ता को त्यागो।

रानी को समझा बुझाकर और आश्वासन देकर, राजा स्नान से निवृत्त हो कुल देवी के मन्दिर में आये। कुल देवी की पूजा करके राजा ने यह प्रतिज्ञा की, कि—हे देवी, जब तक मेरा मनोर्थ पूर्ण न होगा, मैं अन्नजल ग्रहण न करूँगा। यह प्रतिज्ञा करके राजा, देवी के सामने उसीका ध्यान करके बैठ गये। राजा को बिना अन्नजल ग्रहण किये, देवी का ध्यान धरे छः दिन बीत गये, तब राजा की कुलदेवी ने प्रकट होकर राजा से कहा राजा, मैं तेरे से प्रसन्न हूं तू वरदान माँग। राजा ने, देवी को नमस्कार करके प्रार्थना की कि हे माता, मैं पुरुषोत्तम पुत्र चाहता हूं। देवी ने उत्तर दिया-राजा, धैर्य रख तेरे यहाँ ऐसा ही पुत्र होगा।

राजा अपने घर आये। थोड़े ही समय में रानी सुदर्शना उत्तम स्वप्न देखकर गर्भवती हुई। गर्भवती रानी की यह इच्छा हुई, कि मैं सब जीवों को अभय दान दूँ। रानी ने अपनी यह इच्छा राजा को सुनाई। राजा ने कहा—हे सद्भागिनी, यह उत्तम इच्छा इस बात की द्योतक है कि तुम्हारे गर्भ में पुण्यवान जीव है। यह कह कर राजा ने, अमरपड़ह द्वारा रानी की इच्छा पूर्ण की।

समय पाकर रानी ने, भाग्यशाली पुत्र प्रसव किया। राजा विजयसेन ने, पुत्रजन्मोत्सव मनाकर, बालक का पुरुषसिंह नाम रखा। पुरुषसिंह जब युवक हुआ तब राजा विजयसेन ने, देव कन्या सी आठ राजकन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया। पुरुषसिंह, अपनी पत्नियों सहित आनन्द से रहने लगा।

एक समय पुरुषसिंह, मनोविनोद के लिए वन में गया। वहाँ उसे विजयानन्दसूरि नाम के महात्मा के दर्शन हो गये। कुमार पुरुषसिंह ने महात्मा का उपदेश श्रवण किया, जिससे उसे संसार से वैराग्य हो गया। माता पिता की आज्ञा लेकर*

---

* अनेक प्रयत्नों से प्राप्त पुत्र को दीक्षा के लिए आज्ञा दे देना यद्यपि माता-पिता के लिए एक कठिन सी बात है, लेकिन राजा विजयसेन और रानी सुदर्शना, धर्मज्ञ थे। उन्होंने पुत्र को समझाने में कसर न रखी। परन्तु आज की तरह दण्ड नीति से काम लेकर, जबरदस्ती पुत्र को रखना, वे अनुचित समझते थे। इसलिए जब किसी तरह पुत्र को संसार में रहता न देखा, तब दीक्षा के लिए आज्ञा दे दी।

पुरुषसिंह ने दीक्षा लेली। बहुत काल तक संयम पालकर और बीसबोल में से कितने ही बोलों की आराधना से तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन कर, पुरुषसिंह, आत्मशुद्धि पूर्वक अनशन करके शरीर त्याग,जयन्त नाम के अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र देव हुआ।

अन्तिम भव।

जिस समय, इस जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में चतुर्थ आरा वर्तता था—और चतुर्थ आरे का, केवल एक लाख कोड़ सागर काल शेष था—उस समय, आदेश्वर भगवान के लिए देवों द्वारा बसाई गई विनीता नगरी का नाम बदलते-बदलते कौशलपुरी हो गया था। उस समय,कौशलपुरी में,ईक्ष्वाकुवंशी राजा मेघरथ राज्य करते थे। मेघरथ के, मंगला नाम की पटरानी थी।

जयन्त विमान का आयुष्य बिता कर पुरुषसिंह का जीव, श्रावण शुक्ल २ की रात में—जब चन्द्र मघा नक्षत्र के साथ विद्यमान था—महारानी मंगला के गर्भ में आया। उस समय महारानी मंगला, सो रही थीं। उन्होंने, तीर्थङ्कर के गर्भ में आने की सूचना देनेवाले चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्न देखकर, वे जाग उठीं और पति के पास जा, स्वप्न देखने का वृत्तान्त सुनाया। स्वप्नों को सुनकर महाराज मेघरथ ने कहा महारानी

जी, स्वप्नों के प्रभाव से, तुम्हारे गर्भ से जगत पूज्य पुत्र उत्पन्न होगा। यह सुनकर महारानी हर्षित होती हुई लौट गई। वे, यत्नपूर्वक गर्भ की रक्षा करने लगीं।

उन्हीं दिनों में, एक धनाढय व्यापारी अपनी समवयस्का दो पत्नियों सहित, व्यापार के लिए विदेश गया था। मार्ग में उसकी एक स्त्री के पुत्र हुआ। उस पुत्र को दोनों स्त्रियों ने प्रेमपूर्वक पाला पोसा। कुछ दिनों बाद द्रव्योपार्जन करके सेठ अपनी पत्नियों एवं अपने पुत्र सहित स्वदेश के लिए लौटा। रास्ते में सेठ की मृत्यु हो गई। दोनों पत्नियों ने, व्यापारी के शव का अग्नि संस्कार किया और धन पुत्र लेकर कौशलपुरी की ओर चलीं। मार्ग में, जिस स्त्री ने पुत्र को नहीं जन्मा था उसने, धन और पुत्र की अधिकारिणी बनने के लिए, पुत्र को अपना बताकर झगड़ा किया। पुत्र को लिए हुए दोनों स्त्रियाँ, कौशलपुरी में आई। कौशलपुरी में उन्होंने कुटुम्ब जाति और न्यायालय में फरियाद की, लेकिन दोनों ही स्त्रियों के प्रमाण समान थे, इसलिए कोई निर्णय न हो सका। अन्ततः दोनों का झगड़ा महाराजा मेघरथ के सामने आया। महाराजा मेघरथ ने भी झगड़े पर बहुत विचार किया, फिर भी मध्यान्ह तक कोई निर्णय न दे सके। सभासदों ने मेघरथ से कहा कि-महाराजा, यह झगड़ा न मालूम कब समाप्त हो,

इसके पीछे इस प्रकार भूखे कब तक रहेंगे? इसलिए आप पधार कर नित्यकृत्य करिये, इस झगड़े पर फिर विचार करेंगे।

सभासदों की प्रार्थना मान राजा मेघरथ, सभा विसर्जन करके अन्तःपुर में आये। महारानी ने उनसे देरी का कारण पूछा। राजा ने, दोनों स्त्रियों का झगडा रानी को सुनाकर कहा, कि इसी झगडे पर विचार करते रहने से देर हुई, फिर भी झगडे का फैसला न हो सका। गर्भ प्रभाव से निर्मल बुद्धिवाली रानी ने कहा—महाराज, स्त्रियों का न्याय तो स्त्री ही सरलतापूर्वक कर सकती हैं इस झगडे के निर्णय का भार, आप मुझे सौंपिये राजा ने, रानी की बात स्वीकार करली।

दूसरे दिन राजा, महारानी को साथ लेकर राज-सभा गये। वादिनी प्रतिवादिनी के मुँह से, राजा ने सारा वाद-विवाद रानी को सुनवाया। रानी ने, उन दोनों स्त्रियों से कहा कि—'मेरे गर्भ में तीन ज्ञान के धारक तीर्थङ्कर हैं। वे जन्म लेकर, अशोक वृक्ष के नीचे बैठ तुम्हें न्याय देंगे। तब तक तुम लोग धैर्य रखो।' रानी की बात, वणिक पुत्र की अपर माता ने तो स्वीकार करली, लेकिन जन्म देने वाली माता ने स्वीकार नहीं की। उसने रानी से कहा, कि मैं तो थोडे भी समय तक धैर्य नहीं रख सकती, न अपने इस पुत्र को, इसे सौंप ही सकती हूं। आप तीर्थङ्कर की माता हैं, इसलिए कृपया आज ही न्याय दे दीजिये। यह सुनकर, रानी ने अपनी

वुद्धि से जान लिया कि वास्तव में पुत्र इसी का है, वह दूसरी तो विमाता है, उसका पुत्र नहीं है। रानी ने, तत्क्षण जिसका पुत्र उसे दिलवा दिया और इस प्रकार झगडे का फैसला कर दिया। रानी का न्याय देखकर सभा के लोग दंग रह गये, और रानी, तथा गर्भस्थ बालक की प्रशंसा करने लगे।

नव मास समाप्त होने पर, महारानी मंगला ने, वैशाख शुक्ल ८ को—जब चन्द्र, मघा नक्षत्र में आया—क्रौंच पक्षी के चिन्ह वाले स्वर्ण वर्णी पुत्र को जन्म दिया। चौसठ इन्द्र और असंख्य देवी-देव ने, भगवान का जन्मकल्याण मनाया। महाराजा मेघरथ ने, पुत्र जन्मोत्सव करके, पुत्र का नाम गर्भवती रानी की वुद्धि निर्मल हो गई थी, इस बात को दृष्टि में रखकर सुमतिकुमार रखा।

भगवान, सुखपूर्वक बढ़ने लगे। थोडे ही दिनों में वे, तीन सौ धनुष ऊँचे, पुष्ट शरीर वाले युवक हुए। भोग फल खपाने के लिए, माता-पिता, के आग्रह से भगवान ने, अनेक सुन्दर राज कन्याओं के साथ अपना विवाह किया और सुख पूर्वक रहने लगे। इस प्रकार भगवान को दस लाख पूर्व व्यतीत हुए पश्चात्, पिता के बहुत आग्रह करने पर भगवान ने राज भार ग्रहण किया। बारह पूर्वाङ्ग और उन्तीस लाख पूर्व तक भगवान राज्य करते रहे।

भोग फल कर्म को खपे जान स्वयंबुद्ध भगवान ने, राज्य त्याग किया और चारित्र स्वीकार करने के लिए वार्षिक दान देने लगे। वर्ष की समाप्ति पर वैशाख शुक्ल ६ के दिन, भगवान अभयंकरा शिविका में आरूढ हो, दीक्षा लेने के लिए उद्यान पधार गये और विधि पूर्वक एक सहस्र राज परिवार मनुष्यों सहित दीक्षा लेली। दीक्षा लेते ही भगवान को मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान, कोशलपुरी से विहार कर गये। वे बीस वर्ष तक छद्मस्थावस्था में विचरते रहे। ध्यानादि कृत्य द्वारा कर्म खपा कर भगवान, कौशलपुरी के सहस्राम्र बाग में पधारे। वहां प्रियंगु वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके भगवान ने, क्षपक श्रेणी द्वारा घातिक कर्म नष्ट किये और चैत्र शुक्ल ११ को जब चन्द्र मघा नक्षत्र में आया अनन्त केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी प्राप्त की।

भगवान को केवलज्ञान हुआ, यह जानकर इन्द्र तथा देवता केवलज्ञान की महिमा करने को उपस्थित हुए। समवशरण की रचना हुई, जिसमें बैठ कर बारह प्रकार की परिषद् ने भगवान सुमतिनाथ की चौंतीस अतिशय युक्त वाणी श्रवण की। भगवान की वाणी सुनकर, बहुत से लोग बोध पाये।

भगवान सुमतिनाथ के एक सौ गणधर, तीन लाख बीस हजार साधु, काश्यपी आदि पांच लाख तीस हजार आर्यिका, दो लाख इक्यासी हजार श्रावक, और पांच लाख सोलह हजार श्राविका थीं। वे बीस वर्ष और बारह पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व तक, केवली पर्याय में विचरते रहे और असंख्य प्राणियों को धर्म का मार्ग बताते रहे।

अपना निर्वाणकाल समीप जान, एक हजार मुनियों सहित भगवान, सम्मेतशिखर पर पधार गये। सम्मेतशिखर पर, भगवान ने अनशन कर लिया, जो एक मास तक चलता रहा। अन्त में शैलेशी अवस्था प्राप्त करके चैत्र शुक्ल ६ के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में, भगवान सिद्ध गति में पधार गये।

भगवान सुमतिनाथ, दस लाख पूर्व तक कुमार पद पर रहे। उन्तीस लाख पूर्व से कुछ अधिक काल तक राज्य किया। बीस वर्ष तक छद्मस्थ रहकर संयम पालते रहे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। भगवान ने सब चालीस लाख पूर्व का आयुष्य पाया। श्री अभिनन्दन स्वामी के निर्वाण को नव लाख क्रोड़ सागर बीत जाने पर, भगवान सुमतिनाथ, सिद्ध गति में प्राप्त हुये।

भोग फल कर्म को खपे जान स्वयंबुद्ध भगवान ने, राजपाट त्याग किया और चारित्र स्वीकार करने के लिए वार्षिक दान देने लगे। वर्ष की समाप्ति पर वैशाख शुक्ल ६ के दिन, भगवान अभयंकरा शिविका में आरूढ हो, दीक्षा लेने के लिए उद्यान में पधारे गये और विधि पूर्वक एक सहस्र राज परिवार के मनुष्यों सहित दीक्षा लेली। दीक्षा लेते ही भगवान को मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान, कोशलपुरी से विहार कर गये। वे बीस वर्ष तक छद्मस्थावस्था में विचरते रहे। ध्यानादि कृत्य द्वारा कर्म खपा कर भगवान, कौशलपुरी के सहस्राम्र बाग में पधारे। वहां प्रियंग वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके भगवान ने, क्षपक श्रेणी द्वारा घातिक कर्म नष्ट किये और चैत्र शुक्ल ११ को जब चन्द्र मघा नक्षत्र में आया अनन्त केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी प्राप्त की।

भगवान को केवलज्ञान हुआ, यह जानकर इन्द्र तथा देवता केवलज्ञान की महिमा करने को उपस्थित हुए। समवशरण की रचना हुई, जिसमें बैठ कर बारह प्रकार की परिषद् ने भगवान सुमतिनाथ की चौंतीस अतिशय युक्त वाणी श्रवण की। भगवान की वाणी सुनकर, बहुत से लोग बोध पाये।

भगवान सुमतिनाथ के एक सौ गणधर, तीन लाख तीस हजार साधु, काश्यपी आदि पांच लाख तीस हजार आर्यिका, दो लाख इक्यासी हजार श्रावक,और पांच लाख सोलह हजार श्राविका थीं। वे बीस वर्ष और बारह पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व तक, केवली पर्याय में विचरते रहे और असंख्य प्राणियों को धर्म का मार्ग बताते रहे।

अपना निर्वाणकाल समीप जान,एक हजार मुनियों सहित भगवान, सम्मेतशिखर पर पधार गये। सम्मेतशिखर पर, भगवान ने अनशन कर लिया,जो एक मास तक चलता रहा। अन्त में शैलेशी अवस्था प्राप्त करके चैत्र शुक्ल ६ के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में, भगवान सिद्ध गति में पधार गये।

भगवान सुमतिनाथ,दसलाख पूर्व तक कुमार पद पर रहे। उन्तीस लाख पूर्व से कुछ अधिक काल तक राज्य किया। बीस वर्ष तक छद्मस्थ रहकर संयम पालते रहे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। भगवान ने सब चालीस लाख पूर्व का आयुष्य पाया। श्री अभिनन्दन स्वामी के निर्वाण को नव लाख क्रोड़ सागर बीत जाने पर,भगवान सुमतिनाथ सिद्ध गति में प्राप्त हुये।

प्रश्नः—

१—भगवान सुमति नाथ के माता पिता कौन थे ?

२—भगवान सुमतिनाथ,पूर्व भव में कौन थे और कौनसा कार्य करने से तीर्थङ्कर हुए ?

पूर्व भव संक्षिप्त चरित्र क्या है ?

३—भगवान सुमतिनाथ का नाम, 'सुमति कुमार' किस कारण दिया गया था ?

४—भगवान सुमतिनाथ की जन्म तिथि और निर्वाण तिथि कौनसी है ?

५—भगवान ने अपनी आयु किस किस कार्य में बिताई ?

६—भगवान सुमतिनाथ के पूर्व भव की उत्पत्ति का कारण बताओ ?
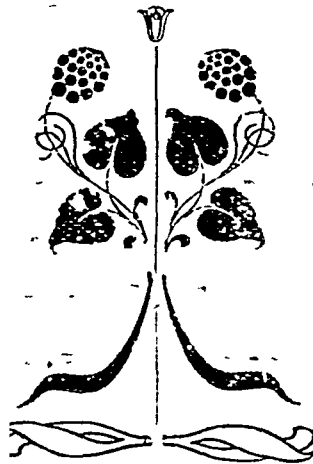
भगवान श्री पद्मप्रभु।

पूर्व-भव

श्लोक—
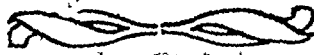
भव्याब्जि वारिज विबोध रविर्नवीन
पद्म प्रभेश करणोर्जित मुक्तिकान्तः।
त्वंदेहि निर्वृति सुखंतपसा विमज्जन्
पद्म प्रभेश करणोर्जित मुक्तिकान्तः॥

इस जम्बू द्वीप के चारों तरफ लवण समुद्र है। उस आगे, चार लाख योजन के घेरे वाला धातकीखण्ड नाम का वलयाकार द्वीप है। उसके पूर्व विभाग में,महाविदेह क्षेत्र की। मण्डन रूप वत्स विजय है। उस विजय का सुशीला नाम्नी नगरी में, शत्रुओं से पराजित न हो सकने वाला अपराजित नामका राजा रहता था। वह अपराजित, न्याय और नीति-पूर्वक, सुशीला नगरी की प्रजा का पालन करता था।

एक बार अपराजित राजा ने, अर्हन्त प्रवचन के प्ररूपक श्री पिहिताश्रव आचार्य से धर्म देसना सुनी। आचार्य का उपदेश सुनकर, वह विचारने लगा, कि संसारासक्त प्राणी, धन सम्पत्ति और स्त्री-पुत्र आदि का त्यागना कठिन मानते हैं, लेकिन अशुभ कर्मों के उदय से, कभी-कभी वे ही प्राणी दुर्दशा को प्राप्त हो जाते हैं अथवा आयुष्य समाप्त हो जाने से परलोक के पथिक बन जाते हैं और इन दोनों ही दशा में, यह सांसारिक भोग-सामग्री छुट जाती है। अन्त में उन प्राणियों के हाथ पश्चाताप और दुःख के सिवा कुछ शेष नहीं रहता। इससे तो अच्छा यही है,कि स्वेच्छा से इन्हें त्याग दे, जिससे इनके वियोग का भी दुःख न हो और परलोक में पश्चाताप भी न करना पड़े।

इस प्रकार विचारों से, अपराजित राजा को संसार से विरक्ति हो गई। उसने राज-पाट त्यागकर, सर्व विरति

चारित्र स्वीकार कर लिया। चारित्र एवं सुमति गुप्ति का पालन और बीस बोल में से कितने ही बोलों की उत्कृष्ट भावों से आराधना करके, अपराजित ने, तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन किया। अन्त में, आराधिक पद के अधिकारी बन, नववीं ग्रैवेयक में, इकतीस सागरोपम की स्थितिवाले अहमिन्द्र देव हुए।

अंतिम भव

अवसर्पिणी काल के चौथे आरे का अधिकांश भाग बीत चुका था—केवल एक लाख हजार सागरोपम काल शेष था, तब की बात है। इसी जम्बू द्वीप के मध्य के दक्षिण विभाग में भरत क्षेत्र के अन्दर, कौशम्बी नामकी एक नगरी थी। कौशम्बी में, श्रीधर नाम का बलवान राजा राज्य करता था। श्रीधर राजा की रानी, देवकन्या जैसी सुन्दरी, शीलादि गुणों से विभूषित और पतिपरायण थी। उसका नाम सुसीमा था।

नववीं ग्रैवेयक का आयुष्य भोगकर, अपराजित राजा का जीव माघ कृष्णा ६ की रात को—जब चन्द्र चित्रा नक्षत्र में था-महारानी सुसीमा के गर्भ में आया। सोई हुई महारानी सुसीमा, तीर्थङ्कर के गर्भ सूचक चौदह महास्वप्न देखकर जाग

उठीं। पति द्वारा स्वप्नों का फल सुनकर महारानी सुसीमा को बहुत हर्ष हुआ। वह सावधानी पूर्वक गर्भ की रक्षा करने लगीं।

गर्भवती महारानी सुसीमा को एक दिन पद्म-शय्या पर शयन करने की इच्छा हुई। देवताओं ने महारानी की यह इच्छा पूर्ण की।

नवमास समाप्त होने पर, कार्तिक कृष्ण १२ को जब चन्द्र चित्रा नक्षत्र में आया—महारानी सुसीमा ने, पद्म के रंग और निकलते हुए सूर्य की ललिमा को लज्जित करनेवाले टेसू के फूल एवं लाल माणिक वर्णी, पद्म के लक्षण से युक्त, तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म हुआ जान, दिककुमारियाँ प्रसूतिगृह में आईं और इन्द्र तथा देवों ने, सुमेरु पर्वत की शिखास्थित पंडगवन की शिला पर जाकर, भगवान का जन्म-कल्याण मनाया। पश्चात् भगवान की पूजा प्रार्थना कर अपने-अपने स्थान को गये। श्रीधर राजा ने भी पुत्र जन्मोत्सव मनाया और बालक का नाम पद्मकुमार रखा।

अनेक धात्रियों एवं देव देवियों से सेवित पद्मकुमार, युवावस्था को प्राप्त हुए। उनका ढाई सौ धनुष ऊँचा शरीर, लम्बी भुजाएँ, विशाल वक्षस्थल, उर्ध्वस्कन्ध और पद्म सा रंग, बहुत शोभायमान लगने लगा। पुण्य प्रकृति को क्षय करने के लिए पद्मकुमार ने, माता के आग्रह से, अनेक राज्यकन्याओं से

पाणि ग्रहण किया और सुखपूर्वक रहने लगे। इस प्रकार कुमारावस्था में, साढे सातलाख पूर्व व्यतीत हो गये।

साढे सात लाख पूर्व की आयु होने पर महाराजा श्रीधर के अधिक आग्रह करने से, भगवान पद्मप्रभू ने राज-भार स्वीकार किया। राज्यासन पर आरूढ होकर,भगवान ने साढे इक्कीस लाख पूर्व तथा सोलह पूर्वांग तक राज्य शासन किया। एक दिन उन्होंने धर्म तीर्थ प्रवर्ताने का विचार किया, इतने ही में लोकान्तिक देवों ने भी आकर, यही प्रार्थना की। भगवान तो स्वयं बुद्ध ही थे। उन्होंने, तत्काल राजपाट त्याग दिया और जम्भृक देवताओं द्वारा लाये हुए द्रव्य को दान करना प्रारम्भ कर दिया। वार्षिक दान करना प्रारम्भ कर दिया। वार्षिक दान समाप्त होने पर,भगवान देवों तथा मनुष्यों द्वारा सजाई हुई सुखकारिणी पालकी में विराजे। इन्द्र, देवताओं एवं मनुष्यों के वृन्द से घिरे हुए पालकी रूढ भगवान,कौशम्बी के मध्य होकर सहस्राम्र बाग में पधारे। पालकी से उतर कर, भगवान ने सब वस्त्रालंकार त्याग दिये और कार्तिक कृष्णा १३ को जब चित्रा नक्षत्र था छठ (बेले) की तपस्या में, एक सहस्र राजपरिवार के पुरुषों सहित, सर्व सावद्य योग त्याग रूप संयम को अपना लिया। उसी समय भगवान को, मनः पर्यय नाम का चौथा ज्ञान हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान, कौशाम्बी से विहार कर गये। दूसरे दिन ब्रह्मस्थल नगर में सोमदेव राजा के यहां भगवान का पारणा हुआ। दान की महिमा बताने के लिए, देवों ने पांच दिव्य प्रकट किये और दान की महिमा गाई।

अनेक प्रकार के तप और ध्यान मौनादि में तल्लीन विचरते हुए, भगवान, कौशाम्बी के उसी सहस्राम्रवन में पधारे। छट्ट के तप मे, भगवान वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके खड़े हुए और घनघातिक कर्म क्षय करके, चैत्र शुक्ल पूर्णिमा को चित्रा नक्षत्र में, भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया।

आसनकाम्प से भगवान को केवलज्ञान हुआ जान, चौंसठ इन्द्र तथा असंख्य देवों ने आकर, केवलज्ञान महोत्सव किया समवशरण की रचना हुई. जिसमें बारह प्रकार की परिषद् एकत्रित हुई। भगवान ने, कल्याणकारी उपदेश दिया. जिसे सुनकर अनेक भव्य जीव प्रतिबोध पाये।

पद्मप्रभु के सुव्रत आदि एक सौ सात गणधर थे। तीन लाख तीस हजार साधु थे। चार लाख बीस हजार साध्वी थीं। दो लाख छहत्तर हजार श्रावक थे और पांच लाख पांच हजार श्राविका थीं। सोलह पूर्वांग कम लाख पूर्व तक केवली पर्याय में रह कर, भगवान ने अनेक भव्य जीवों का उद्धार किया।

अपना निर्वाण काल समीप जान, भगवान पद्मप्रभु, तीन सौ आठ मुनियों सहित संमेत शिखर पर पधार गये। वहाँ,

एक मास का अनशन करके, शुद्ध ध्यान द्वारा अघातिक कर्मों को नष्ट किया और मार्गशीर्ष कृष्णा ११ के दिन निर्वाण पधारे।

भगवान ने, साढे सात लाख पूर्व कुमारावस्था में विताये। साढे इक्कीस लाख पूर्व और सोलह पूर्वांग राज्य किया। छः मास संयम लेने के पश्चात्—छद्मस्थावस्था में रहे और शेष आयु केवली पर्याय में रह कर विताई। इस प्रकार भगवान पद्मप्रभू ने, तीस लाख पूर्व का आयुष्य भोगा और सुमतिनाथ भगवान के निर्माण को नव्वे सहस्र सागरोपम वीतने पर निर्वाण पधारे।

प्रश्न—

१—पद्मप्रभु, पूर्वभव में कौन थे और पूर्व भव का संक्षिप्त चरित्र क्या है ?

२—माता के गर्भ में, प्रभू का जीव कहां से आया ?

३—पद्मप्रभू के माता पिता और जन्मस्थान का नाम क्या था ?

४—भगवान की जन्म तिथि और निर्वाण तिथी कौनसी है?

५ –भगवान का नाम पद्मप्रभू क्यों पड़ा ?

६ –भगवान पद्मप्रभू की शारीरिक रचना कैसी थी ?

७—भगवान के साधु साध्वी और श्रावक-श्राविका की भिन्न-भिन्न संख्या वताओ ?

८—भगवान आदिनाथ के निर्वाण के कितने काल पश्च भगवान पद्मप्रभ् निर्वाण पधारे ?
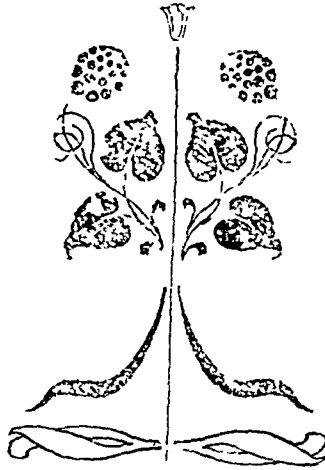
भगवान श्री सुपार्श्वनाथ।

पूर्व-भव
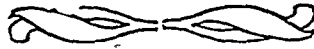
श्लोक—

यं प्रास्तवीदति शयानऽमृताशनानां
कान्ता रसा रस पदं परमानऽवन्तम्।
विज्ञः श्रियं भजनि कां न नतः सुपार्श्वं
कान्ता रसा रस पदं परमानवन्तम्॥

धातकी खण्ड के पूर्व महा-विदेह की रमणीय विजय में, क्षेमपुर नामक एक नगर था, जहाँ नन्दिषेण राजा राज्य करता था। राज काज करते हुए भी, उसे धर्म बहुत प्रिय था। वह आश्रितों का दुःख मिटाने के लिए सदैव तत्पर रहा करता था

कुछ काल पश्चात् नन्दिषेण राजा को संसार से वैराग्य हो गया। उसने अरिदमन आचार्य के पास से दीक्षा ले ली। उग्र तप तथा क्रियानुष्ठान द्वारा नन्दिषेण ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में आराधिक पद को प्राप्त कर, अनशन द्वारा शरीर त्याग, छट्ठे ग्रैवेयक में अट्ठाइस सागर की स्थितिवाला उत्कृष्ट देव हुआ।
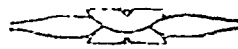
अंन्तिम भव।

इसी जम्बू द्वीप के भरतार्द्ध क्षेत्रान्तर्गत काशी देश में वाणारसी नामकी एक स्वर्गपुरी,सी नगरीथी वहाँ, प्रतिष्ठसेन राजा राज्य करता था। प्रतिष्ठसेन की रानी का नाम पृथ्वी था, जो पृथ्वी की ही तरह सुखदायिनी थी।

छट्ठी ग्रैवेयक का आयुष्य पूर्ण करके, नन्दिषेण का जीव भाद्रपद कृष्णा ८ की रात के अन्तिम भाग में, महारानी पृथ्वी के उदर में आया। महारानी पृथ्वी, उस समय सो रही थीं।

उन्हों ने, गज वृषभादि तीर्थंकर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्नों का फल सुनकर महारानी पृथ्वी बहुत आनन्दित हुई और गर्भ का पोषण करने लगीं।

गर्भ काल समाप्त होने पर, ज्येष्ठ शुक्ल १२ को-जब चन्द्र विशाखा नक्षत्र के साथ था-महारानी पृथ्वी ने, स्वस्तिक के चिन्ह वाले स्वर्ण वर्णी अनुपम पुत्र को जन्म दिया। तत्काल दिककुमारियां उपस्थित हुई और इन्द्र तथा देवों ने,सुमेरुगिरि पर जाकर जन्मकल्याण-महोत्सव किया।

प्रतिष्ठसेन राजा ने, पुत्र जन्मोत्सव मना कर, बालक का श्री सुपार्श्वकुमार नाम रखा। अनेक दास दासी से सेवित भगवान, युवावस्था को प्राप्त हुए। उनका दो सौ धनुष ऊँचा और सब लक्षण व्यंजन युक्त सर्वाङ्गपूर्ण शरीर बहुत शोभायमान दीखने लगा। माता पिता ने,आग्रह-पूर्वक सुपार्श्वकुमार का अनेक राज कन्याओं के साथ विवाह कर दिया। अपनी पत्नियों के साथ सुपार्श्वकुमार, आनन्द से रहने लगे।

पांच लाख पूर्व की आयु होने पर, भगवान सुपार्श्व ने, पिता का दिया हुआ राज्य संभाला। वे, चौदह लाख पूर्व से कुछ अधिक काल तक राज्य करते रहे। भगवान सुपार्श्व को जब संसार से वैराग्य हुआ, तब लोकान्तिक देवों ने उपस्थित होकर,धर्म और तीर्थ प्रवर्तने की प्रार्थना की। भगवान सु

ने तत्काल ही राजपाट छोड़कर वार्षिकदान देना प्रारम्भ कर दिया। वे प्रतिदिन एक क्रोड आठ लाख सोनैया दान में देने लगे। वर्ष समाप्त होने पर, इन्द्र तथा असंख्य देव, दीक्षा कल्याण बनाने के लिए उपस्थित हुए। उन्होंने, भगवान के अभिषेक सहित वस्त्राभूषण से अलंकृत करके, मनोहरा नाम की शिविका में बैठाया। शिविकारूढ भगवान, वाणारसी नगरी के मध्य होकर, सहस्राम्र बाग में पधारे। बाग में पहुँच कर भगवान, शिविका से उतर पडे और शरीर पर के वस्त्रालंकार त्याग, ज्येष्ठ शुक्ल १३ को, दिन के पिछले भाग में एक सहस्र राजाओं सहित संयम में प्रवर्जित हो गये। तत्क्षण भगवान को मनः पर्यय ज्ञान हुआ और क्षणभर के लिए नारकीय जीवों को भी शान्ति हुई।

दूसरे दिन पाटलीखण्ड नगर में, भगवान का वेले का पारणा हुआ। देवों ने, पाँच दिव्य प्रकट करके, दान की महिमा की। पारणा करके भगवान, अन्यत्र विहार कर गये।

अनेक परिषह सहन करते हुए और शरीर की ओर से भी निरपेक्ष रहते हुए, भगवान, नव मास तक छद्मस्थावस्था में विचरे। अन्त में, शिरीश वृक्ष के नीचे, प्रतिमा धारण किये हुए भगवान ने, घन घातिक कर्म क्षय कर दिये और फाल्गुण कृष्ण ६ को निरावरण एवं बाधारहित केवल ज्ञान प्राप्त किया। इन्द्र

एवं देवताओंने आकर केवल ज्ञानकी महिमा की। समव शरण की रचना हुई। भगवान ने बारह प्रकार की परिषद् को धर्मोपदेश दिया, जिसे सुनकर अनेक भव्य प्राणी बोध पाये।

भगवान सुपार्श्व प्रभुके विदर्भ आदि पच्यान्वे गणधर थे। तीन लाख मुनि थे। चार लाख तीस हजार साध्वियाँ थीं। दो लाख सत्तावन हजार श्रावक थे और चार लाख त्रयान्वे हजार श्राविकाएँ थीं।

एक लाख पूर्व तक केवली पर्याय में रह कर, भगवान ने असंख्य जीवों का उद्धार किया। अपना निर्वाणकाल समीप जान कर, पाँच सौ मुनियों सहित भगवान, सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहां, एक मास का अनशन करके भगवान, अघातिक कर्म क्षय कर, शाश्वत गति को प्राप्त हुए।

भगवान सुपार्श्व नाथ, पाँच लाख पूर्व कुमारावस्था में रहे। चौदह लाख पूर्व और बीस पूर्वांग राज्य किया। नव मास छद्मस्थ अवस्था में विचरे और शेष काल केवली पर्याय में रहे, इस प्रकार भगवान सुपार्श्व नाथ ने सब बीस लाख पूर्व का आयुष्य भोगा और पद्मप्रभू के निर्वाण के नव सहस्र सागरोपम पश्चात निर्वाण पधारे।

प्रश्नः—

१—भगवान सुपार्श्वनाथ पूर्वकाल में कौन थे? पूर्वभ का संक्षिप्त परिचय क्या है? क्या करके तीर्थङ्कर गोत्र बांधा

२—भगवान के माता-पिता का क्या नाम था और कहाँ रहते थे?

३—भगवान ने अपनी कितनी-कितनी आयु किस-कि कार्य में बिताई?

४—भगवान का पारणा किस नगर में हुआ था?

५—भगवानके चतुर्विध तीर्थकी भिन्न-भिन्न संख्या बता

६—सुपार्श्वनाथ भगवान की जन्म तिथि और निर्वा तिथि कौन-सी है?

७—भगवान का निर्वाण कहां हुआ था?

८—भगवान सुमतिनाथ के निर्वाण के कितने काल पश्चा भगवान सुपार्श्व का निर्वाण हुआ?

॥ ८ ॥

भगवान श्री चन्द्रप्रभु ।

पूर्व-भव
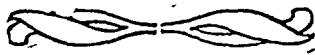
श्लोक—

पूज्यार्चितश्चतुर चित्त चकोर चक्र
चन्द्र प्रभाव भवनंदित मोहसारः ।
संसार सागर जले पुरुषं पसन्तं
चन्द्र प्रभाऽव भवनंदित मोह तारः ॥

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व महाविदेह की मंगलावती विजय में, रत्नसञ्चया नामकी नगरी थी। वहाँ उग्र-पराक्रमधारी, पद्म नामका राजा राज्य करता था। पद्म राजा, सांसारिक सुख भोगने के साथ ही, धर्म-सेवा में भी तत्पर रहता था और तत्त्ववेत्ता भी था।

युगन्धर मुनि के उपदेश से, पद्म राजा को संसार से विरक्ति हो गई। उसने संयम ले लिया और जप-तप, ध्यान, मौन अभिग्रह आदि द्वारा, संयम की आराधना करने लगा। तीर्थङ्कर नाम कर्म योग्य बीस बोलों में से भी कई बोल की उत्कृष्ठ आराधना करके, महान् दुर्लभ ऐसे तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। दीर्घकाल तक चारित्र पालकर, समाधि-पूर्वक शरीर त्याग, विजयन्त विमान में, बत्तीस सागरोपम की स्थितिवाला महर्द्धिक देव हुआ।
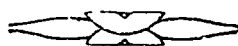
अन्तिम भव।

इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र के मध्य खण्ड में, चन्द्रानन (चन्द्रपुरी) नाम की रमणीय नगरी थी। वहां पर, महासेन नामका राजा राज्य करता था। महासेन की रानी का नाम, लक्ष्मणा था, जो बहुत रूपवती थी।

विजयन्त विमान का आयुष्य भोग कर, पद्मराजा का जीव, चैत्र कृष्ण ५ की रात को—जब चन्द्र, अनुराधा नक्षत्र में था—महारानी लक्ष्मणा के गर्भ में आया। महारानी लक्ष्मणा, अपनी शय्या पर सोई हुई थीं। तीर्थंकर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखकर महारानी लक्ष्मणा जाग उठीं। उन्होंने अपने देखे हुए स्वप्न, महाराजा महासेन को सुनाये। महाराजा महासेन ने स्वप्नों का विचार करके कहा, कि तुम्हारे गर्भ से, त्रिलोक पूज्य उत्कृष्ट पुत्र जन्म लेगा। महारानी लक्ष्मणा, यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। वे, यत्नपूर्वक गर्भ का पोषण करने लगीं।

गर्भकाल समाप्त होने पर पौष कृष्ण १२ के रोज, जब सब ग्रह नक्षत्र उच्चस्थान में थे, महारानी लक्ष्मणा ने, मोती की प्रभा और चाँदी की कान्ति को लज्जित करनेवाले, चन्द्र की कान्ति से भी उज्ज्वल, चन्द्र के लक्षणयुक्त श्वेतवर्णी पुत्र को जन्म दिया। तीनों लोक में प्रकाश हो गया और क्षणभर के लिए नारकीय जीवों को भी शान्ति मिली। आसनकम्पादि से, तीर्थङ्कर का जन्म हुआ जान, दिक्कुमारियां, इन्द्र और देवगण उपस्थित हुए तथा भगवान का जन्मकल्याणोत्सव मनाकर, अपने-अपने स्थान को गये।

दूसरे दिन महाराजा महासेन ने, पुत्रजन्मोत्सव मनाया। गर्भवती लक्ष्मणा को चन्द्रपान करने की इच्छा हुई थी, तथा

बालक की कान्ति चन्द्र से भी अधिक है, इन बातों को दृष्टि में रख कर, बालक का नाम चन्द्रप्रभ रखा गया। अनेक धाइयों के संरक्षण में, चन्द्रप्रभ का पालन पोषण होने लगा।

बाल अवस्था का उल्लंघन करके चन्द्रप्रभु, युवाअवस्था में प्रविष्ट हुए। युवावस्था में, उनका डेढ़सौ धनुष ऊँचा शरीर, रजत-गिरि के समान शोभा देने लगा। माता-पिता के आग्रह से, अपने भोगफल वाले कर्म शेष जान चन्द्रप्रभ ने अनेक राज-कन्याओं का पाणिग्रहण किया। पत्नियों के साथ भगवान, आनन्द से रहने लगे।

जब चन्द्रप्रभु ढाई लाख पूर्व की अवस्था के हुए, तब महाराजा महासेन ने, राजपाट चन्द्रप्रभ को सौंप दिया और स्वयं आत्मकल्याण के लिए संयम में प्रवर्जित हो गये। भगवान चंद्रप्रभ, साढे छः लाख पूर्व और चौवीस पूर्व तक आसक्ति रहित राज्य करते रहे। इतने काल तक राज्य करने के पश्चात् भगवान ने विचार किया, कि अब मेरे भोग-फल कर्म शेष नहीं हैं, इसलिए मुझे धर्म तीर्थ प्रवर्ताना चाहिए। इतने ही में, लोकांतिक देवों ने उपस्थित होकर प्रार्थना की, कि—हे प्रभो, अब चार तीर्थ की प्रवृत्ति करने का समय आ गया है। चन्द्र-प्रभ ने, उसी समय राज-पाट अपने पुत्रों को सौंप दिया और आप वार्षिकदान देने लगे। वर्ष की समाप्ति पर, इन्द्र तथा

देवता, निष्क्रमणोत्सव मनाने के लिए उपस्थित हुए। चन्द्रप्रभु, मनोरमा शिविका में विराज कर, चन्द्रानना नगरी के मध्य हो सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ, भगवान ने वस्त्रालंकार त्याग, एक सहस्र राजाओं सहित, पौष कृष्ण १३ के दिन मध्यान्ह के पश्चात् छट्ठ के तप में, संयम स्वीकार किया। संयम स्वीकार करते ही भगवान को मनःपर्यय नाम का चौथा ज्ञान हुआ।

संयम लेकर भगवान, चन्द्रानना नगरी के उद्यान से विहार कर गये। दूसरे दिन, पद्मखण्ड नगर के सोमदत्त राजा के यहाँ भगवान का पारणा हुआ। देवताओं ने पाँच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की।

चारित्र की पूर्णतया आराधना एवं कर्मों की निर्जरा करते हुए भगवान चन्द्रप्रभु, तीन महीने तक छद्मस्थ अवस्था में विचरे। विचरते हुए, भगवान्, चन्द्रानना नगरी के उसी सहस्राम्र बाग में पधारे। भगवान ने, वहाँ पुन्नागवृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण करके चार घनघातिक कर्म क्षय कर दिये और फाल्गुण कृष्णा ७ को जब चन्द्र अनुराधा नक्षत्र में आया केवल-ज्ञान एवं केवल दर्शन प्राप्त किया।

भगवान को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ है, यह जानकर, चौंसठ इन्द्र और असंख्य देवों ने आकर केवलज्ञान महोत्सव किया। समवशरण की रचना हुई। द्वादश प्रकार की परिषद् को,

भगवान ने धर्मोपदेश दिया। भगवान का दिया हुआ धर्मोपदेश सुन कर, अनेक भव्य प्राणी बोध पाये।

भगवान के दत्त आदि त्रयान्वे गणधर थे। ढाई लाख मुनि थे। तीन लाख अस्सी हजार साध्वियां थीं। ढाई लाख श्रावक थे और चार लाख इक्यान्वे हजार श्राविकाएँ थीं।

भगवान ने, चौवीस पूर्वाङ्ग और तीन माह कम एक लाख पूर्व केवली पर्याय में रह कर, अनेक जीवों का उद्धार किया। अन्त में अपना निर्वाणकाल समीप जान कर, भगवान, एक सहस्र मुनियों सहित, सम्मेत शिखर पर पधारे। सम्मेत शिखर पर अनशन करके, तीव्रध्यान द्वारा भगवान ने, चार अघातिक कर्म क्षय कर दिये और भाद्रपद कृष्ण ७ को सिद्ध गति में प्राप्त हुए।

भगवान चन्द्रप्रभ ढाई लाख पूर्व तक कुमार पद पर रहे। साढे छः लाख पूर्व, और चौवीस पूर्व राज्य किया। तीन महीने छद्मस्थ अवस्था में विचरे। और चौबीस कम एक लाख पूर्व, केवल पर्याय में रह कर, सुपार्श्वनाथ स्वामी के निर्वाण के नव सौ क्रोड़ी सागरोपम पश्चात् निर्वाण पधारे।

प्रश्नः—

१—भगवान चन्द्रप्रभ, पूर्व भव में कौन थे, और फिर केस गति में गये ?

२—भगवान चन्द्रप्रभ के माता पिता और जन्मस्थान का नाम क्या है ?

३—भगवान का नाम चन्द्रप्रभ क्यों रखा गया था ?

४—भगवान चन्द्रप्रभ का शरीर कीतना ऊँचा और कैसे वर्ण का था ?

५—भगवान ने कितनी अवस्था तक राज्य किया ?

६—भगवान का पारणा किसके यहां हुआ था ?

७—छद्मस्थअवस्था में भगवान कितने दिन विचरे ?

८—भगवान ने सब कितना आयुष्य भोगा और अजितनाथ स्वामी के निर्वाण को कितना काल वीतने पर निर्वाण पधारे ?

९
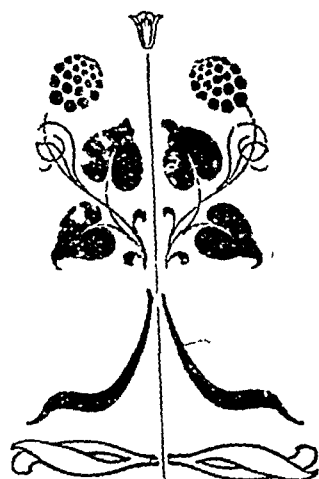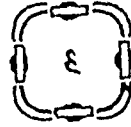
भगवान श्री सुविधिनाथ (पुष्पदंत)

पूर्व-भव
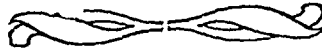
श्लोक—

निर्वाण मिन्दु यशसांव पुसा निरस्त
रामाङ्गजोरु जगतः सुविधे निधोहि ।
विस्तार यत् सपदिशं परमे पदेमां
रामाङ्गजोरु जगतः सुविधे निधेहि ।

धातकी खण्ड द्वीप के आगे कालोदधि समुद्र है। उसके आगे पुष्करवर द्वीप है। वहाँ, पूर्व महाविदेह की पुष्पकलावती विजय में, पुण्डरीकिणी नगरी थी। वहाँ का राजा महापद्म, श्रावक धर्म का पालन करने वाला था। समय पाकर उसने जगन्नन्द मुनि से संयम स्वीकार कर लिया। प्रमाद रहित चारित्र का पालन करके, तीर्थंकर नाम करने के योग्य बिस बोलों में से कई एक बोलों की आराधना करके तीर्थ नाम कर्म उपार्जन किया समाधि पूर्वक शरीर त्याग, महापद्म, नववें आनत कल्प में १६ सागर की स्थिति का महर्द्धिक देव हुआ।

अंन्तिम भव।

इसी जम्बू द्वीप के भरतार्द्ध के मध्य खण्ड में, मरु देशान्तर्गत काकन्दी नाम की एक नगरी थी। वहां, सुग्रीव नाम का राजा राज्य करता था। सुग्रीव की रानी का नाम, रामा था, जो सौन्दर्य की मूर्त्ति और पतिभक्ति की प्रतिमा थी।

(महापद्म का जीव, आनत कल्प का आयुष्य पूर्ण करके फाल्गुन कृष्णा ८ की रात को,) महारानी रामा के उदर में आया, महारानी रामा, उस समय शयन कर रही थीं। तीर्थङ्कर के गर्भ-सूचक चौदह महास्वप्न देखकर, वे जाग उठीं। पति से स्वप्न फल सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं और गर्भ की रक्षा करने लगीं।

नव मास समाप्त होने पर, मार्गशीर्ष कृष्ण ५ की रात्रि को, महारानी रामा ने, मगर मत्स्य के चिन्ह से युक्त, श्वेत वर्णी पुत्र को जन्म दिया। भगवान के जन्मते ही, क्षणभर के लिए त्रिलोक में प्रकाश हो गया और नारकीय जीवों को भी शान्ति मिली।

आसन कम्प से, भगवान का जन्म हुआ जान छप्पन दिक्कुमारियाँ प्रसूतिगृह में आईं। भगवान और माता को नमस्कार कर, वे, प्रसूतिगृह के कार्यों से निवृत हो, मंगल गाने लगी। इधर चैसठ इन्द्र एव असंख्य देवीदेव, सुमेरु पर्वत पर एकत्रित हुए और सौधर्मपति शक्रेन्द्र महाराज भगवान के जन्मस्थान को आये। उन्होंने, माता रामा महारानी को अवश्वापिनी निद्रा से निद्रित कर दिया तथा वे, पाँच रूप बनाकर, जयजयकार करते हुए भगवान को सुमेरु पर्वत पर लाये। इन्द्र और देवताओं ने, भगवान का जन्मोत्सव किया। पश्चात् भगवान को लाकर माता के पास लिटा दिया और माता की अवस्वापिनी निद्रा हरण करली।

महाराजा सुग्रीव ने भी प्रातःकाल पुत्र जन्मोत्सव मनाया। भगवान के सुविधिकुमार एवं पुष्पदन्त ये दो नाम रखे गये। अनेक दाइयों के संरक्षण में भगवान सुविधिकुमार, गिरि-कन्दरा की वेल के समान निर्बाध बढ़ने लगे।

बालअवस्था बिताकर, भगवान ने युवावस्था मे प्रवेश किया। उनका सौ धनुष ऊँचा शरीर, क्षीर समुद्र के समान उज्ज्वल वर्ण का था। पिता सुग्रीव महाराजा एवं माता रामा महारानी ने,आग्रह पूर्वक भगवान के साथ अनेक राज्य कन्याएँ विवाह दीं। पुण्य कर्मों को खपाने के लिए, भगवान सुविधि कुमार, पत्नियों के साथ आनन्द से रहने लगे।

जब भगवान सुविधिकुमार की आयु पचास हजार पूर्व की हो गई तब सुग्रीव महाराज ने राज-पाट पाट उन्हें सौंप दिया। भगवान, पचास हजार पूर्व और अट्ठाइस पूर्वाङ्ग तक राज्य करते रहे और प्रजा को सुख देते रहे।

एक समय भगवान ने संसार त्याग की इच्छा की। उसी समय लोकान्तिक देवों ने उपस्थित होकर, भगवान से धर्म एवं तीर्थ प्रवर्तने की प्रार्थना की। भगवान सुविधिनाथ ने राजपाट त्याग कर, वार्षिक दान देना प्रारम्भ कर दिया। एक वर्ष तक भगवान, १ क्रोड़ आठ लाख सोनैये नित्यप्रति दान करते रहे। वर्ष की समाप्ति पर, इन्द्र और देवों ने भगवान का निष्क्रमणोत्सव किया। भगवान सूर्यप्रभा शिविका में विराज कर काकन्दी नगरी के मध्य होते हुए, उद्यान में पधारे। वहाँ छट्ट के तप में, मार्गशीर्ष कृष्ण ६ को, भगवान ने,

एक हजार राजाओं के साथ संयम स्वीकार लिया। संयम स्वीकार करते ही, भगवान को मनःपर्यय नाम का चौथा ज्ञान हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान, काकन्दी के उद्यान से विहार कर गये। दूसरे दिन, श्वेतपुर नगर में,पुष्प राजा के यहाँ, प्रभु का पारणा हुआ। देवों ने पाँच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की।

संग रहित एवं ममत्व रहित भगवान अनेक परिषह सहन करते हुए चार मास तक छद्मस्थ अवस्था में विचरे। वे विचरते हुए, काकन्दी के उसी उद्यान में पधारे। वहाँ भगवान ने, मालूर वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग किया। शुक्ल ध्यान में आरूढ़ हो, क्षपक श्रेणी द्वारा, प्रथम मोह कर्म की प्रकृतियों को और पश्चात् ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंको नष्टकर भगवान सुविधिनाथ ने, कार्तिक शुक्ल २ को जब चन्द्रमा का योग मूल नक्षत्र में प्राप्त हुआ परम विशुद्ध केवलज्ञान प्राप्त किया। भगवान को केवलज्ञान होते ही त्रिलोक में प्रकाश हुआ। देवों तथा इन्द्रों ने, केवलज्ञान महोत्सव मनाया। समवशरण की रचना हुई। भगवान की अमोघ वाणी सुनकर, बारह प्रकार की परिषद् में से अनेक भव्यजीव बोध पाये, और बहुतों ने संयम तथा बहुतों ने श्रावक-व्रत एवं सम्यक्त्व स्वीकार किया। अट्ठाइस पूर्वांग और चार मास कम एक लक्ष पूर्व तक केवली पर्याय में रह कर, भगवान ने बहुत से जीवों का कल्याण किया।

भगवान सुविधिनाथ के वाराह आदि अठ्यासी गणधर थे। दो लाख मुनि थे। एक लाख वीस हजार साध्वियाँ थीं। दो लाख उन्तीस हजार श्रावक थे। और चार लाख बहत्तर हजार श्राविकाएं थीं।

अपना निर्वाण काल समीप जान कर भगवान एक सहस्र मुनियों सहित सम्मेत शिखर पर पधारें गये। वहाँ अनशन करके, शैलेशी अवस्था धारण कर भाद्रपद सुदी ९ को, एक मास के अनशन में भगवान सुविधिनाथ, शाश्वत गति को प्राप्त हुए। इन्द्र तथा देवों ने,शरीरसंस्कार क्रिया सम्पन्न की।

भगवान सुविधिनाथ, पचास हजार पूर्व कुमार पद पर रहे पचास हजार पूर्व और अट्ठाइस पूर्वाङ्ग राज्य किया। चार मास, छद्मस्थ अवस्था में विचरे और शेष आयु में केवली पर्याय पाली इस प्रकार भगवान सुविधिनाथ ने सब दो लाख पूर्व का आयुष्य भोगा और भगवान चन्द्रप्रभु के निर्वाण को नब्बे कोटि सागरोपम वीत जाने पर, निर्वाण प्राप्त किया।

नववें जिनेश्वर सुविधिनाथ के निर्वाण के कुछ काल पश्चात् हुँडक अवसर्पिणी काल के प्रभाव से, साधु तीर्थ का विच्छेद हो गया था। भोले और भव्य जीव, मार्ग भ्रष्ट मुसाफिरों की तरह हो गये। वे स्थविर श्रावकों से धर्म का मार्ग पूछने लगे और स्थविर श्रावक, अपनी मति एवं इच्छा के अनुसार धर्म

कहने लगे। धर्म का मार्ग पूछनेवाले श्रावक,ऐसे स्थविर श्रावकं को-धर्म वताने के वदले में-द्रव्य भेंट करने लगे। होते-होते धर्म का मार्ग वतानेवाले श्रावक लोग,लोभी वन गये उन्होंने, कई नये और कृत्रिम शास्त्रों की रचना द्वारा, दान क महाफल वता कर, कन्यादान. गौदान. पृथ्वीदान, धातुदान अश्वदान, गजदान, स्वर्णदान, रजतदान आदि की प्रवृत्ति प्रचलित कर दी और 'इन दान के पात्र केवल हम ही हैं, दूसरे नहीं' यह उपदेश देकर, लोगों को ठगने लगे। इस प्रकार की प्रवृत्ति, भगवान शीतलनाथ ने तीर्थ प्रवर्ताया तव तक चलती रही। सोहलवें तीर्थङ्कर भगवान शान्तिनाथ के शाशनकाल तक भी, वीच-वीच में तीर्थ का विच्छेद होता रहा और इन मिथ्यात्वियों की जड़ जम गई,जो आज तक मौजूद है आज के ब्राह्मण, उन्हीं लोभी श्रावकों के वंशज हैं। जैन शास्त्र में श्रावक को माहण कहा है-और माहण ब्राह्मण को भी कहा है, अतः ब्राह्मण इन श्रावकों से ही प्रचलित हुए हों ऐसा सम्भव है।

प्रश्नः—

१—भगवान सुविधिनाथ, पूर्व भव में कौन थे? संक्षिप्त परिचय दो।

२—भगवान का जन्म किस देश के किस नगर में औ किन के यहां हुआ था?

३—भगवान का शरीर कैसा था ?

४—भगवान ने किस दिन दीक्षा ली थी और कितने दिन क छद्मस्थ रहे ?

५—भगवान ने कुल कितनी आयु भोगी और उसमें कितने ितने काल तक कौन-कौन सा कार्य किया ?

६—वर्तमान ब्राह्मण किस की सन्तान हैं ? क्या पहले सरे ब्राह्मण भी थे ? यदि थे, तो उनकी सन्तान कहाँ गई और हीं थे, तो 'ब्राह्मण' जातिवाचक शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई ?

भगवान श्री शीतलनाथ

पूर्व-भव
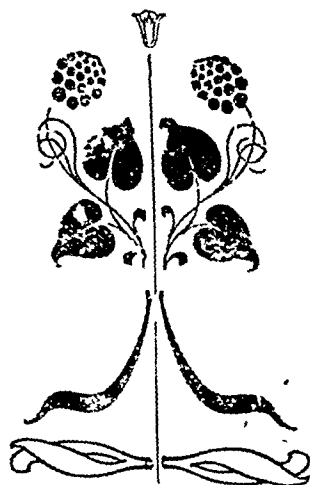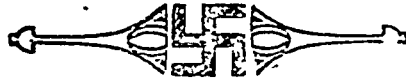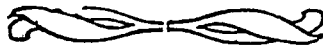
श्लोक—

पीडा गमोन परिजेतरिदत्त मर्त्या—
नन्दाऽतनुद्भव. भया यशसां प्रसिद्धे।
चित्ते विपर्ति निविशां भवंतित्वयीश
नन्दा तनुद्भव भया यशसां पसिद्धे॥

इस मनुष्यलोक की सीमा पर पुष्करवर द्वीप है। बीच में मानुष्योत्तर नाम का एक कुण्डलाकार पर्वत आजाने से पुष्कर-वर द्वीप के दो भाग हो गये हैं। बाहर के भाग में, केवल तिर्यञ्च ही रहते हैं। और भीतर के भाग में मनुष्य भी रहते हैं। यह अर्द्ध पुष्करवर द्वीप भी आठ लाख योजन के विष्कम्भ से घिरा हुआ है। दक्षिण और उत्तर दिशा में, कालोदधि समुद्र के किनारे से, मानुष्योत्तर पर्वत के किनारे तक पर्वत आ जाने से, अर्द्ध पुष्कर वर द्वीप के भी, पूर्व और पश्चिम ऐसे दो विभाग हो गये हैं।

अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के, पूर्व विभाग में महाविदेह क्षेत्र की वज्र विजय में, सुसीमा नामकी एक नगरी थी। वहाँ, पद्मोत्तर नामका प्रतापी और धर्म में श्रद्धा रखनेवाला राजा राज्य करता था। राज-काज करते हुए भी, उसका चित्त, विरक्त-सा रहता था। समय पाकर पद्मोत्तर ने, संसार को तृणवत् त्याग दिया और त्रिस्साघ मुनि से, संयम स्वीकार लिया। संयम का निरतिचार पालन और शास्त्रोक्त २० बोल में से कतिपय बोल की आराधना करके पद्मोत्तर ने, तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। पश्चात् अनशन पूर्वक शरीर-त्याग, प्राणत नाम के दसवें कल्प में, वीस सागरोपम की आयुवाला महर्द्धिक देव हुआ।

अंन्तिम भव ।

इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में, भद्दिलपुर नाम का एक रमणीय नगर था। वहाँ के पराक्रमी राजा का नाम दृढ़रथ था। दृढ़रथ की रानी का नाम नन्दा था, जो पति को सुख देनेवाली एवं स्त्रियोचित गुणों से युक्त थी।

प्राणत देवलोक की स्थिति भोगकर पद्मोत्तर का जीव, वैशाख कृष्ण ६ की रात को,-पूर्वा-भाद्रपद नक्षत्र में-महारानी नन्दा की कुक्षिकन्दरा में आया। सोई हुई महारानी ने चौदह महास्वप्न देखे, जिनका फल सुनकर वे बहुत प्रसन्न हुईं और हर्ष सहित गर्भ का पालन करने लगीं।

गर्भ काल समाप्त होने पर, माघ कृष्ण १२ की रात को महारानी नन्दा ने, वत्स तथा स्वस्तिका के चिन्ह एवं सर्व लक्षण वाले स्वर्ण वर्णी पुत्र को जन्म दिया। इन्द्र और देवताओं ने जन्मकल्याण मनाया। प्रातःकाल जन्मोत्सव मनाकर, महाराजा दृढरथ ने, बालक का नाम शीतलनाथ रखा। भगवान शीतलनाथ जब गर्भ में थे,तब रानी के कर स्पर्श मात्र से, राजा का तप्त अंग शीतल हो गया था, और राजा को अपार शान्ति अनुभव हुई थी। इसी बात को दृष्टि में रख कर, भगवान का नाम, शीतलनाथ रखा गया।

भाइयों के संरक्षण में,भगवान शीतलनाथ का पालन-पोषण होने लगा। समय पर भगवान, बाल-अवस्था को त्याग, युवावस्था में प्रविष्ट हुए। उनका नव्वे धनुष ऊँचा और सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर दर्शक को अपनी ओर आकर्षित करता था। माता-पिता के अनुरोध से भगवान ने, अनेक राजकन्याओं का पाणिग्रहण किया और पत्नियों के साथ आनन्द पूर्वक रहने लगे।

भगवान शीतलनाथ ने, पच्चीस सहस्र पूर्व की आयु में, पिता का सौंपा हुआ राज-भार स्वीकार किया। वे, पचास सहस्र पूर्व तक राज्य करते हुए, प्रजा को नीतिमय जीवन की शिक्षा देते रहे। पचहत्तर सहस्र पूर्व की अवस्था में भगवान ने, ससार व्यवहार त्यागने का विचार किया उसी समय,ब्रह्मलोक वासी लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की, कि–प्रभो, संसार में तीर्थ का अभाव हो रहा है;अतः तीर्थ स्थापन कर, धर्म प्रवर्ताइये। भगवान शीतलनाथ ने,उसी क्षण राजपाट त्याग दिया, राज पाट त्यागकर वे वार्षिक दान देने लगे। वर्ष की समाप्ति पर, इन्द्र और देवताओं ने आकर भगवान का निष्क्रमणोत्सव किया। चन्द्रप्रभा शिविका में विराजकर,भगवान भद्दिलपुर के उद्यान में पधारे। वहाँ, माघ कृष्ण १२ को–जब चन्द्र पूर्वाषाढा नक्षत्र में था–भगवान ने छठ के तप में एक सहस्र राजाओं के साथ संयम स्वीकार किया। संयम स्वीकार

करते ही,भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ। भगवान,भद्दिल से अन्यत्र विहार कर गये।

दूसरे दिन, रिष्टनगर में,पुनर्वसु राजा के यहां भगवान शीतलनाथ का पारणा हुआ। देवों ने, पंच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की। भगवान,तीन मास तक विविध अभिग्रह धारण करते हुए और शरीर में भी निस्पृह रहते हुए, छद्मस्थ अवस्था में विचरे। विचरते हुए, भगवान, भद्दिलपुर के उसी उद्यान में पधारे। वहाँ, पीपलवृक्ष के नीचे, प्रतिमाधारी कायोत्सर्ग में निश्चल खड़े रहकर,भगवान ने,चारों घातिक-कर्म नष्ट कर दिये। घातिक कर्म नष्ट होते ही भगवान को केवल-ज्ञान हुआ। तत्काल इन्द्र और देवों ने, केवलज्ञान महोत्सव किया। समवशरण की रचना हुई, जिसमें बैठ कर बार प्रकार की परिषद ने, भगवान की जग-तारिणी वाणी सुनी। भगवान की वाणी सुन, अनेक जीव बोध पाये।

भगवान शीतलनाथ के, आनन्दादि इक्यासी गणधर थे। एक लाख साधु थे। एक लाख दो सौ साध्वी थीं। दो लाख नव्यासी हजार श्रावक थे। और चार लाख अट्ठावन हजार श्राविका थीं। भगवान ने, तीन मास कम पच्चीस सहस्र पूर्व तक केवली पर्याय में विचर कर, अनेक भव्य प्राणियों का कल्याण किया।

अपना निर्वाणकाल समीप जान कर, एक सहस्र मुनियों सहित भगवान शीतल नाथ, सम्मेत शिखर पर पधार गये। सम्मेत शिखर पर भगवान ने अनशन कर लिया। अन्त में,शुक्ल ध्यान के तीसरे और चौथे पाये में पहुँच कर, भगवान ने, शेष कर्म क्षय कर डाले और वैशाख कृष्ण २ को, पूर्वाषाढा नक्षत्र से चन्द्र का योग आने पर, निर्वाण पद प्राप्त किया।

भगवान शीतलनाथ, २५ हजार पूर्व कुमारपद पर रहे। पचास हजार पूर्व, राजा रहे। तीन महीने छद्मस्थ अवस्था में रहे और शेष आयु में,केवली पर्याय का पालन किया। भगवान ने,सब एक लाख पूर्व का आयुष्य भोगा और पुष्पदन्त स्वामी के निर्वाण को नव क्रोड़ सागर बीत जाने पर निर्वाण पद प्राप्त किया।

प्रश्नः—

१—भगवान शीतलनाथ, पूर्व भव में, कौन थे, कहाँ रहते थे और क्या करके तीर्थङ्कर गोत्र बाँधा था?

२—महारानी नन्दा के गर्भ में, भगवान का जीव कहाँ से तथा कितनी स्थिति पूर्ण करके आया था?

३—भगवान का नाम शीतलनाथ क्यों रखा?

४—भगवान की शारीरिक रचना क्या थी?

५—भगवान ने, कितनी-कितनी आयु किस-किस कार्य में बिताई?

६—भगवान का पारणा किस नगर में और किसके घर हुआ था ?

७—भगवान के साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका कि थीं ?

८— अर्द्ध पुष्करवर द्वीप किस कारण से कहा गया ?

९—इस द्वीप के भीतरी इस किनारे पर-व-उस किनारे क्या २ पर्वत समुद्र आदि हैं ?
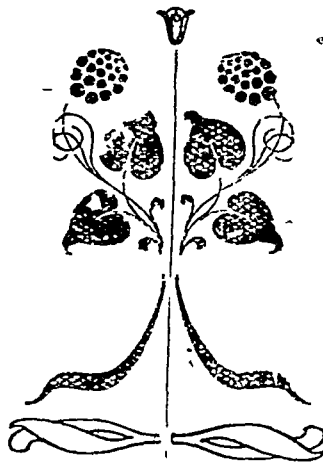
भगवान श्री श्रेयांशनाथ

पूर्व-भव
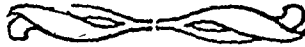
श्लोक—

श्रेयांस सर्व विदमङ्गिगण त्रियामा ।
कान्ताननं त महिमानम मानवाते ॥
यं भेजुषो भवतियस्व गुणान्नं यातं ।
कान्ताननंत महिमान मऽमानवाते ॥

पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व महाविदेह की कच्छ विजय में, क्षेमा नाम की एक उत्तम नगरी थी। वहाँ, नलिनिगुल्म नाम का राजा था। वह राजा, जैसा गुणवान था, वैसा ही पराक्रमी एवं प्रतापी भी था। राजकार्य करता हुआ भी, राजा नलिनि-गुल्म, धन-सम्पत्ति तो क्या, शरीर तक में भी आसक्ति नहीं रखता था। समय पाकर उसने वज्रदत्त मुनि के पास चारित्र स्वीकार कर लिया और तीव्र तप के साथ ही, अर्हद्भक्ति आदि बोलों की उत्कृष्ट आराधना करके, तीर्थङ्कर नामकर्म का उपार्जन किया। अन्त समय में, शुद्ध ध्यान द्वारा शरीर त्याग, अच्युत कल्प में, बाईस सागरोपम की स्थितिवाला महर्द्धिक देव हुआ।

अन्तिम भव।

मध्य जम्बू द्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में, । सिंहपुर नाम का नगर था। वहाँ, विष्णुसेन राजा राज्य करता था। विष्णुसेन की रानी का नाम विष्णुदेवी था, जो सौन्दर्य और गुणों की साक्षात् प्रतिमा थी।

अच्युत देवलोक का आयुष्य पूर्ण करके नलिनिगुल्म का जीव, ज्येष्ठ कृष्णा ६ की रात को-जब चन्द्र, श्रवण नक्षत्र के साथ था, महारानी विष्णुदेवी के गर्भ में आया। तीर्थङ्कर के

गर्भ सूचक महास्वप्न देखकर, विष्णुदेवी जाग उठीं। पति से स्वप्नों का फल सुनकर, वे हर्षित हुईं और गर्भ का पोषण करने लगीं।

गर्भकाल समाप्त होनेपर, फाल्गुन कृष्ण १२ को, जब चन्द्र, श्रवण नक्षत्र में था महारानी विष्णुदेवी ने, गैंडा के लक्षणवाले स्वर्णवर्णी पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म कल्याण मनाने के लिए इन्द्र एवं देव उपस्थित हुए और जन्म कल्याण मनाकर अपने अपने स्थान को गये।

प्रातःकाल महाराज विष्णुसेन ने, पुत्र जन्मोत्सव मना कर, बालक का नाम श्रेयांशकुमार रखा। शैशवावस्था समाप्त करके भगवान, युवावस्था में प्राप्त हुए। उनका अस्सी धनुप ऊँचा शरीर बहुत ही सुन्दर था। माता-पिता के आग्रह को मानकर भगवान श्रेयांशकुमार ने, अनेक राजकन्याओं का पाणि ग्रहण किया और पत्नियों के साथ आनन्द से रहने लगे।

जब भगवान की आयु इक्कीस लाख वर्ष की हुई, तब महाराजा विष्णुसेन ने, राज-पाट श्रेयांशकुमार को सौंप दिया। भगवान, बयालीस लाख वर्ष तक राज्य करते रहे। एक दिन भगवान ने, धर्म तीर्थ प्रवर्ताने का विचार किया, इतने ही में, लोकान्तिक देवों ने भी उपस्थित होकर धर्मतीर्थ प्रवर्ताने की प्रार्थना की। स्वयंबुद्ध भगवान श्रेयान्शनाथ, राजपाट त्याग कर, वार्षिक दान देने लगे। वार्षिक दान पूर्ण होने पर, देव तथा इन्द्र

भगवान का निष्क्रमणोत्सव मनाने के लिए आये। भगवान श्रेयांशनाथ, विमलप्रभा नाम की शिविका में विराज कर, जय ध्वनि के साथ सहस्राम्र बाग में पधारे। वहाँ,फाल्गुन कृष्ण १३ को प्रातःकाल, भगवान ने, छट्ठ के तप में, पंचमुष्टि लोच करके, एक सहस्र राजाओं सहित प्रवज्या स्वीकार की। उसी क्षण भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ।

भगवान सिंहपुर से विहार कर गये। दूसरे दिन, सिद्धार्थ नगर में नन्द राजा के यहां, भगवान ने छट्ठ तप का पारणा किया। देवों ने, पांच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की।

संयम का पालन करते हुए निर्ममत्व भाव से भगवान, दो मास पर्यन्त छद्मस्थ अवस्था में विचरे। पश्चात् भगवान,सिंहपुर के उसी सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहाँ, अशोक वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग किया। क्षपक श्रेणी में पहुँच कर भगवान ने, शुक्ल ध्यान द्वारा घातिक कर्मों को-जिस प्रकार अग्नि, तृण को जला देती है, उसी प्रकार नष्ट कर दिये और माघ कृष्ण अमावस्या को, परमनिर्मल केवल ज्ञान प्राप्त हुआ।

आसन कम्पादि से,इन्द्र और देवोंने,भगवान को केवलज्ञान हुआ है, यह जाना। उन्होंने, उपस्थित होकर केवलज्ञान महोत्सव किया। समवशरण की रचना हुई। भुवनपति,वाणव्यन्तर ज्योतिषिक और वैमानिक, ये चार प्रकार के देव एवं चार ही

प्रकार की देवियाँ, तथा मानव मानवी और तिर्यंच तिर्यंचिनी ऐसी बारह प्रकार की परिषद् ने भगवान की दिव्य वाणी श्रवण की। अनेक भव्य प्राणी. बोध पाये।

जिस समय श्रेयांशप्रभु, त्रिलोक की सम्पदा-(केवल ज्ञान) के स्वामी थे, उसी समय, नारायण में से प्रथम, त्रिपृष्ठ नाम के वासुदेव और अचल नाम के बलदेव हुए। ये दोनों महा-पुरुष, अर्द्ध भरत के स्वामी थे। अर्थात्, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में समुद्र तक और उत्तर में, वैताढ्य पर्वत तक इनकी अखण्ड आज्ञा वर्तती थी। वासुदेव और बलदेव की ऋद्धि, चक्रवर्ती की ऋद्धि से आधी होती है।

जनपद में विचरते और भव्य प्राणियों को तारते हुए, श्रेयांशस्वामी, पोतनपुर नाम के नगर, त्रिपृष्ठ वासुदेव की राज-धानी में पधारे। वहाँ, उद्यान-रक्षक की आज्ञा लेकर भगवान उद्यान में विराजे। उद्यान-रक्षक ने, त्रिपृष्ठ वासुदेव को, त्रिलोकी नाथ के पधारने की बधाई दी। भगवान का पधारना सुन, वासुदेव हर्षित हो उठे। सिंहासन से उठकर, उन्होंने वहीं से भगवान को वन्दना नमस्कार किया, और बधाई देने वाले उद्यान रक्षक को, साढे बारह क्रोड़ रुपये पुरस्कार में दिये।

त्रिपृष्ठ वासुदेव, अपनी ऋद्धि समृद्धि सहित, भगवान को वन्दन करने के लिए आये। भगवान की दिव्य-वाणी श्रवण

करके, त्रिपृष्ट वासुदेव, बहुत हर्षित हुए और भगवान से सम्यक्त्व ग्रहण किया। कई और प्राणियों ने भी मुनि धर्म एवं श्रावक धर्म स्वीकार किया।

यद्यपि त्रिपृष्ट वासुदेव ने भगवान श्रेयांशनाथ से सम्यक्त्व स्वीकार किया था, लेकिन काम भोग में लिप्त होकर वे, सम्यक्त्व को भी भूल बैठे। परिणामतः सातवीं भूमि तमतमाप्रभा में उत्पन्न हुए। आगे चल कर ये ही महापुरुष, चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान महावीर हुए। त्रिपृष्ट वासुदेव के भाई अचल बलदेव ने, भ्रातृ वियोग से वैराग्य पाकर संयम ले लिया था। संयम की आराधना द्वारा कर्म नष्ट करके, सिद्ध पद को प्राप्त हुए।

भगवान श्रेयांश कुमार, इक्कीस लाख वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते रहे। इनके, गौस्थूभ आदि छहत्तर गणधर थे चौरासी हजार साधु थे, एक लाख तीस हजार साध्वियाँ थे और दो लाख उन्नीस हजार श्रावक एवं चार लाख अड़तीस हजार श्राविकाएँ थीं।

अपना निर्वाण काल समीप जान कर, भगवान, एक हजा मुनियों के साथ सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहाँ, अनश करके भगवान ने, चार अघातिककर्म नष्ट कर दिये और श्रावण कृष्ण तृतिया को धनिष्ठा नक्षत्र में शाश्वत गति प्राप्त की।

भगवान श्रेयांशनाथ, इक्कीस लाख वर्ष, कुमार पद पर रहे।

बयाँलीस लाख वर्ष राज्य किया। दो मास,छद्मस्थ अवस्था में विचरे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार भगवान श्रेयांश कुमार ने, सब चौरासी लाख वर्ष का आयुष्य भोगा और भगवान श्री शीतल नाथ के निर्वाण को-एक सौ सागर और छांसठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम-एक क्रोड सागर बीत जाने पर, निर्वाण पधारे।

प्रश्न:—

१-भगवान श्रेयांशनाथ, पूर्वभव कोनसीगति को कितने काल के लिए पधारे थे?

२-भगवान का जन्मस्थल और उनके माता पिता का नाम क्या था?

३-माता के गर्भ में, भगवान का जीव किस गति से और किस दिन आया।

४-भगवान का पारणा किसके यहां हुआ था?

५ बारह प्रकार की परिषद कौन-कौन सी है?

६-भगवान के समकालीन वासुदेव और बलदेव का नाम क्या था? उनका शासन कहाँ था?

७-भगवान श्रेयांशकुमार के चारों तीर्थ की भिन्न भिन्न संख्या क्या थी?

८—भगवान श्रेयांशकुमार ने कितनी-कितनी आयु किस २ कार्य में व्यतीत की ?

९—भगवान श्री चन्द्रप्रभ स्वामी के निर्वाण में, और भगवान श्री श्रेयांशकुमार के निर्वाण में, कितने काल का अन्तर है ?

१०—भगवान श्रेयांशकुमार की जन्म तिथि और निर्वाण तिथि कौन सी है ?

भगवान श्री वासुपूज्य ।

पूर्व-भव
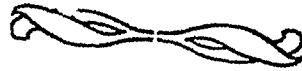
श्लोक—

एनां सियानि जगति भ्रमणार्जितानि
पर्ज्जन्या दान वसुपूज्य सुतानवानि ।
त्वन्नामतानि जनयंति जनाजपन्ति
पर्ज्जन्य दान वसुपूज्य सुताऽनवानि ॥

पुष्करवर द्वीपार्द्ध के महाविदेह क्षेत्र में, मंगलावती विजय के अन्तर्गत रत्न-संचया नाम की एक नगरी थी। वहाँ पद्मोत्तर नाम का अति पराक्रमी राजा राज्य करता था। पद्मोत्तर जिन-भक्त था। उसका हृदय, संसार से विरक्ति की ओर अधिक रहता था।

समय पाकर राजा पद्मोत्तर ने, वज्रनाभ मुनि से संयम स्वीकार लिया। संयम का पालन करते हुए पद्मोत्तर ने, अर्हद्भक्ति एवं तीर्थङ्कर नाम कर्म योग्य २० बोलों के सेवन द्वारा, तीर्थंकर नाम-कर्म उपार्जन किया। बहुत काल तक निर्मल चरित्र का पालन करके, समाधि मरण द्वारा, प्राणतकल्प नामके दसवें देवलोक में, बीस सागर के आयुष्य वाला महार्द्धिक देव हुआ।

अन्तिम भव।

इस मध्य जम्बूद्वीप के इसी भरत क्षेत्र में, अंग देश के अन्तर्गत चम्पा नामकी एक सुहावनी एवं सुन्दर नगरी थी। वहाँ, वसुपूज्य नाम का राजा था। वसुपूज्य के जया नाम की रानी थी, जो गुणरूप में, देव-कन्याओं की स्पर्द्धा करनेवाली एवं पति को सुख देनेवाली थी।

पद्मोत्तर राजा का जीव, प्राणत देवलोक का आयुष्य समाप्त

करके, ज्येष्ठ शुक्ला ६ की रात को-जब चन्द्र का योग शत-भिषा नक्षत्र के साथ था-जयादेवी के उदरागार में आया। सुखनिद्रा में सोई हुई महारानी जयादेवी, तीर्थंकर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखकर जाग उठीं। पति को स्वप्न सुनाने पर, पति ने स्वप्न का जो फल बताया, वह सुनकर जयादेवी बहुत हर्षित हुई। वे यत्नपूर्वक गर्भ का पोषण करने लगी।

गर्भकाल समाप्त होने पर, फाल्गुन कृष्ण १४ की रात को वरुण नक्षत्र के योग में महारानी जयादेवी ने, महिष के चिन्ह से युक्त माणिक्य जैसे लालवर्ण वाले अनुपम पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही, त्रिलोक में उद्योत हुआ। छप्पन दिक कुमारियाँ* भगवान के जन्मभवन में आईं। उन्होंने, भगवान और माता को भक्तिपूर्वक वन्दन करके, नियमानुसार मंगलगान किया और वहाँ की भूमि को इन्द्र-महाराज के आने योग्य विशुद्ध बनाई। पश्चात् शक्रेन्द्र महाराज परिवार सहित आये। उन्होंने, पहले भगवान के जन्म-भवन की प्रदक्षिणा की और फिर माता एवं प्रभु को वन्दन कर, माता

---

*दिककुमारियाँ, भगवान पति जाति की देवी हैं, जो महर्द्धिक एवं स्वतन्त्र स्वामित्व भोगती हैं। ये, आठ पूर्व में, आठ पश्चिम में, आठ दक्षिण में, आठ उत्तर में, चार-चार चारों विदिशा में और चार ऊर्ध्व लोक एवं चार अधः-लोक में रहती हैं।

को अवस्वापिनी निद्रा दे, वे, भगवान को सुमेरु गिरि पर ले गये। वहाँ इन्द्र और देवों ने, विधिपूर्वक भगवान का जन्म-कल्याण मनाया, और फिर भगवान को उनकी माता के पास रखकर अपने-अपने स्थान को गये।

प्रातःकाल राजा वसुपूज्य ने पुत्र जन्मोत्सव मनाकर, बालक का नाम वासुपूज्यकुमार रखा। भगवान वासुपूज्य, वृद्धि पाने लगे। युवावस्था प्राप्त होने पर भगवान का सत्तर धनुष ऊँचा, सर्वांग सम्पूर्ण लालवर्ण का शरीर, उदयाचल पर्वत पर निकले हुए सूर्य के समान शोभायमान लगता था। भगवान का रूप सौन्दर्य देखकर अनेक राजा लोग अपनी अपनी कन्यां भगवान को देना चाहते थे, लेकिन भगवान के माता-पिता भगवान से जब भी उनके विवाह की स्वीकृति चाहते, भगवान टालाटूली किया करते, स्वीकार न करते। एक दिन, भगवान वासुपूज्य के माता पिता, भगवान से आग्रहपूर्वक कहने लगे, कि—हे वत्स, वैसे तो आप जब से गर्भ में पधारे, तभी से हमारे यहां आनन्दोत्सव होते रहे हैं, लेकिन हमारे हृदय में आपका विवाहोत्सव देखने की उत्कृष्ट अभिलाषा है। अतः आप हमें विवाहोत्सव देखने का सुअवसर भी प्रदान करें, जिसमें हम, आपके साथ अपनी कन्याओं का विवाह करने की इच्छा रखनेवाले राजाओं की प्रार्थना स्वीकार कर सकें। इसके सिवा, अब हम

वृद्ध भी हो चले हैं, सो वंश की परम्परा के अनुसार राजभार भी आप ही को उठाना होगा, इसलिए भी विवाह करना आवश्यक है। माता पिता की बात के उत्तर में, निर्विकार प्रभु मुस्कराकर कहने लगे—हे माता-पिता, आपके वचन पुत्र-प्रेम के उपयुक्त ही हैं, लेकिन मैं इस संसार रूपी अरण्य में, जन्म-मरण करते-करते थक गया हूं। ऐसा कोई देश, नगर, ग्राम, उद्यान, नदी, पर्वत और समुद्र बाकी नहीं है, जहाँ मैंने जन्म-मरण न किया हो। अब मैं, इस जन्म मरण के कारण रूप काम-भोग को काट डालना चाहता हूँ, इसलिए विवाह-बंधन में पड़ने और राज भार स्वीकार करने की मेरी इच्छा नहीं है। आपको ऊत्सव महोत्सव ही देखना है न? आप अपनी यह अभिलाषा, मेरा दीक्षामहोत्सव, केवलज्ञान-महोत्सव और निर्वाण-महोत्सव देखकर पूरी कर सकते हैं। भगवान का उत्तर सुनकर, माता पिता के नेत्रों में आंसू भर आये। वे, नेत्रों में जल भरकर कहने लगे—हे पुत्र, आप गर्भ में आये, उस समय आपके जन्म-सूचक जो महास्वप्न देखने को मिले थे, उन पर से ही हमने यह तो समझ लिया था, कि आप जन्म-मरण का अन्त करने के लिए ही जन्म ले रहे हैं, लेकिन आप जन्म-मरण का अन्त तो तीर्थं-कर नाम-कर्म का उपार्जन करने के साथ ही कर चुके हैं। आपका दीक्षा और केवल महोत्सव तो होगा ही, लेकिन [illegible]

महोत्सव के पहले, आप हमें विवाहोत्सव करने की स्वीकृति दें, जिसमें हम, यह उत्सव भी देख सकें। यह बात आप तीर्थङ्कर के लिये नई न होगी. किन्तु इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न आदिनाथ भगवान जो प्रथम तीर्थङ्कर थे—ने भी विवाह किये थे, और सृष्टि-व्यवहार करने के साथ ही राज-भार भी उठाया था। पश्चात् समय पर दीक्षा लेकर मोक्ष पधारे थे*। आदिनाथ भगवान के पश्चात् होने वाले भगवान अजितनाथ से श्रेयांशनाथ तक के तीर्थङ्करों ने भी, ऐसा ही किया था। इसलिए आप भी, उन्हीं की तरह पहले विवाह करिये, राज्य करिये और फिर दीक्षा लेकर मोक्ष पधारिये प्रत्युत्तर में भगवान, नम्रता भरे शब्दों में कहने लगे हे पिता, इन पूर्वमहानुभावों के चारित्र से मैं परिचित हूं, लेकिन उन्होंने विवाह और राज्य, भोग फल देने वाले, पूर्व संचित पुण्य कर्म खपाने के लिए किया था तीर्थङ्कर के लिए, विवाह एवं राज्य करना आवश्यक नहीं है। जिनके पुण्य के दलिये अधिक होते हैं, उन्हें उन पुण्य-दलियों को भोगने के लिए

---

* उक्त चारित्र से स्पष्ट है, कि माता पिता संतान का विवाह करने में जबरदस्ती से काम नही ले सकते, किन्तु संतान की इच्छा पर, विवाह के साधन जुटाया करते है। आज देश और समाज के दुर्भाग्य से, इसके विपरीत प्रवृत्ति हो रही है। यानी, संतान, विवाह की इच्छा करे, इसके पूर्व ही माता-पिता उसका विवाह कर देते हैं, तथा, सन्तान की इच्छा के विरुद्ध जबरदस्ती भी विवाह कर दिया जाता है।

विवाह तथा राज्य करना पड़ता है। क्योंकि जब तक शुभ एवं अशुभ कर्मों को-विपाक या प्रदेश से-भोग न लिया जावे, मुक्ति नहीं हो सकती। मेरे,भोग फल देने वाले कर्म, शेष नहीं हैं, इसलिए मुझसे आप विवाह या राज्य करने का अनुरोध न करिये, किन्तु मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान करिये। भविष्य में, उन्नीसवें तीर्थङ्कर श्री मल्लिनाथ और बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भी मेरी ही तरह, बिना विवाह किये दीक्षा लेंगे और पार्श्वनाथ महावीर आदि भी बिना राज्य किये ही दीक्षा लेंगे। कर्मों की भिन्नता के कारण, सब तीर्थंकरों का एक ही मार्ग नहीं हो सकता। इसलिए आप चिन्ता-रहित होकर मुझे दीक्षा लेने की अनुमति दें।

माता पिता को समझा बुझाकर एवं शान्ति देकर,अठारह लाख वर्ष की अवस्था में भगवान वासुपूज्य,दीक्षा लेने लिए होकर तैयार हुए। उसी समय, लोकान्तिक देवों ने भी, उपस्थित धर्म तथा तीर्थ प्रवर्ताने की,भगवान से प्रार्थना की। भगवान ने, वार्षिकदान देना प्रारंभ कर दिया।

वार्षिकदान समाप्त होने पर,इन्द्र और देवताओं ने आकर भगवान का दीक्षाभिषेक किया। भगवान, पृथ्वी नाम की शिविका में आरूढ़ हो, मनुष्य तथा देवताओं से घिरे हुए, वादित्र एवं जय ध्वनि के मध्य,चम्पानगरी के विहारगृह बाग में पधारे। वहाँ, बेले के तप से, फाल्गुन कृष्ण अमावस्या को,

दिन के पिछले पहर में भगवान ने पंचमुष्टि लोंच करके,छः सौ राजाओं के साथ दीक्षा धारण की। तुरन्त ही, भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान, चम्पानगरी से विहार कर गये। दूसरे दिन, महापुर में, सुनन्द राजा के यहाँ भगवान का पारणा हुआ। देवों ने दान की महिमा की।

भगवान वासुपूज्य, अप्रतिबन्ध विहार करते हुए, चम्पानगरी के उसी विहारगृह उद्यान में पधारे। वहाँ,पाटलवृक्ष के नीचे भगवान ने कायोत्सर्ग किया। घातिक कर्म क्षय होने से माघ शुक्ल २ * को भगवान को केवलज्ञान हुआ। भगवान को केवलज्ञान होते ही; त्रिलोक में क्षणिक प्रकाश हुआ। इन्द्र एवं देवों ने उपस्थित होकर,केवलज्ञान की महिमा की। समवशरण की रचना हुई। द्वादश प्रकार की परिषद् ने, भगवान का कल्याणकारी उपदेश सुना। अनेक भव्य प्राणी, भगवान के उपदेश से बोध पाकर, संयम में दीक्षित हुए।

भगवान के, सौधर्म आदि साठ गणधर थे। बहत्तर हजार साधु थे। एक लाख साध्वियाँ थीं। दो लाख पन्द्रह हजार श्रावक थे और चार लाख छत्तीस हजार श्राविकाएँ थीं।

* यदि भगवान वासुपुज्य, एक मास छद्मस्थ रहे, तो केवलज्ञान की तिथि ठीक नहीं ठहरती। अतः यदि किन्हीं की कोई दूसरी धारणा हो, तो सुधार लें।

वासुपूज्य, एक मास कम चौपन लाख वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते और अनेक जीवों का कल्याण करते रहे

केवलज्ञान होने के पश्चात्, भगवान चम्पापुरी से विहार करके, अनेक जनपद को पावन बनाते हुए, द्वारकापुरी पधारे। वहाँ भगवान, उद्यान में विराजे। बाग-रक्षक ने, द्विपृष्ठ वासुदेव और विजय बलदेव को, भगवान के पधारने की बधाई दी। द्विपृष्ठ, दूसरे वासुदेव और विजय, दूसरे बलदेव थे। इन्होंने, बधाई लानेवाले बाग-रक्षक को, साढ़े बारह कोड़ रुपये पुरस्कार में दिये और आप अपनी ऋद्धि सहित, भगवान वासुपूज्य को वन्दन करने गये। भक्ति-पूर्वक भगवानको वन्दन करके, भगवान की अमोघवाणी सुनी। भगवान की वाणी सुनकर, श्रोताओं में से अनेकों ने संयम और अनेकों ने श्रावक व्रत स्वीकार किये। द्विपृष्ठ वासुदेव ने भी, सम्यक्त्व स्वीकार किया।

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान, छः सौ साधुओं सहित पुनः चम्पानगरी पधारे। चम्पानगरी में, भगवान वासुपूज्य ने अनशन करके सब कर्मों को क्षय कर डाला और आषाढ़ शुक्ला १४ को मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान वासुपूज्य अठारह लाख वर्ष तक घर में कुमार पद पर रहे। एक मास छद्मस्थ अवस्था में विचरे और शेष आयु केवली पर्यायमें व्यतीत की। भगवान वासुपूज्य ने सब बहत्तर

लाख वर्ष का आयुष्य भोगा और भगवान श्रेयांसनाथ के निर्वाण को चव्वन सागर बीतने पर, मोक्ष पधारे।

प्रश्न—

१—भगवान वासुपूज्य पूर्वभव में कौन थे? कौन-सी करणी की थी? और फिर किस गति में, कितने काल का आयुष्य लेकर पधारे थे?

२—भगवान के माता-पिता का नाम क्या था और वे किस द्वीप के, किस क्षेत्र के एवं किस देश के किस नगर में रहते थे?

३—भगवान वासुपूज्य ने, विवाह क्यों नहीं किया और राज्य भार क्यों नहीं स्वीकारा?

४—भगवान की आयु दीक्षा लेने के समय कितनी थी?

५—भगवान का पारणा कहां और किसके यहाँ हुआ था?

६—भगवान के समकालीन वासुदेव, बलदेव का नाम क्या था और वे कहाँ रहते थे?

७—भगवान के तीर्थों की भिन्न-भिन्न संख्या क्या थी?

८—भगवान वासुपूज्य की जन्म तिथि, दीक्षा तिथि, केवलज्ञान तिथि और निर्वाण तिथि बताओ

९—भगवान का निर्वाण किस स्थान पर हुआ था

१०—भगवान वासुपूज्य के निर्वाण में और भगवान शीतल नाथ के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा था?

सम्पादक की ओर से प्रकाशित साहित्यः—

(१)	वैधव्य दिक्षा	मूल्य =)
(२)	भक्तामर स्तोत्र (हिन्दी भावार्थयुक्त)	„ |)
(३)	परमात्म प्रार्थना (भाववाहिकविता)	„ -)
(४)	भारतिय बाल्य जीवन एवं विवाहादि संस्कार	„ |=)
(५)	मानुषीया देवी आख्यादिका	„ |=)
(६)	स्त्री जीवन की आदर्श शिक्षा	„ |)
(७)	वास्तविक शिक्षा	„ |)
(८)	आत्म शुद्धि मार्ग	„ ||)
(९)	श्रावक धर्म प्रतिपादक नियम	„ =)
(१०)	आदर्श भ्राता	„ |=)

प्राप्ति स्थानः—

श्री जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल

रतलाम.

श्री जवेरी प्रि० प्रेस, चांदनीचौक रतलाम.

श्री तीर्थङ्कर-चरित्र

(द्वितीय-भाग)
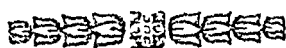
लेखक—

बालचन्द्रजी श्रीश्रीमाल
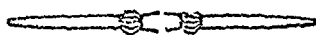
प्रकाशक—

श्री साधुमार्गी जैन पूज्यश्री हुक्मीचन्द्जी महाराज
की सम्प्रदाय का हितेच्छु श्रावक-मण्डल
रतलाम [मध्य-भारत]

तृतियावृत्ति १०००] मूल्य ।।।=) चवदह आने [सम्वत् २००८

दो शब्द

पाठक ! आपके कर कमलों में यह तीर्थंकर चरित्र का द्वितीय भाग है। मैं प्रथम भाग की भूमिका में लिख चुका हूँ कि तीर्थंकर चरित्र लिखने का मैं अधिकारी नहीं हूँ। भगवान तीर्थंकर का सम्पूर्ण जीवनचरित्र लिखने का कार्य बड़े-बड़े योगियों के लिए भी कठिन है। मैंने तो केवल छात्रों के लिए पाठ्य पुस्तक लिखी है, और इसमें भगवान तीर्थंकर के चरित्र की प्रधान-प्रधान घटनाओं को संक्षेप में वर्णन करने की चेष्टा की है। चरित्र को बहुत संक्षेप में लिखा है, इसलिए यदि पुस्तक रोचक एवं आकर्षक न बनी हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। एक-एक तीर्थंकर के, पांच-पांच और सात–सात सौ पृष्ठ की बड़े साइज की पुस्तक में वर्णित चरित्र को थोड़े में लाना–और इतने थोड़े में कि क्राउन साइज की साढ़े तीनसौ चार सौ पृष्ठ की पुस्तक में चौबीसों तीर्थंकर का चरित्र लिख देना-कितना कठिन है, इसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं। इसलिये शाब्दिक सौन्दर्य, रोचकता और आकर्षण पुस्तक में न होना स्वाभाविक है। फिर भी प्रसङ्गोपात 'यथास्थितवाद का

स्वरूप, पुण्य-पाप के फल का दिग्दर्शन, संसार की अनित्यता का वर्णन करने के साथ ही सत्य-धर्म के उपदेश का समावेश, पुस्तक में किया ही गया है।

प्रमाण से विपरीत होने आदि—जो त्रुटि दृष्टि गोचर हो, पाठकगण उस त्रुटि से मुझे सूचित करने की कृपा करें, जिसमें आगामी आवृत्ति में, मैं उन त्रुटियों को निकाल सकूँ। किमधिकम्।

रतलाम
जेष्ठ शुक्ला पूर्णिमा २००८

भवदीय—
बालचन्द श्रीश्रीमाल
वा. प्रेसीडेन्ट हितेच्छु श्रावक मंडल

तृतीयावृत्ति के लिये

प्रथमावृत्ति की भूमिका स्वरूप 'दो शब्द' के अन्दर मैंने अपनी स्थिति का वर्णन करते हुए यह बताया था कि "मैंने छात्रों के लिये पाठ्य पुस्तक लिखी है और इसमें भगवान तीर्थंकर के चरित्र की प्रधान २ घटनाओं का संक्षेप में वर्णन करने की चेष्टा की है। चरित्र को बहुत संक्षेप में लिखा है इसलिये यदि पुस्तक रोचक एवं आकर्षक न बनी हो तो कोई आश्चर्य नहीं" इत्यादि किन्तु यह देखकर मुझे बहुत ही सन्तोष हुआ कि मेरे इस परिश्रम को जनता ने बहुत ही प्रेम के साथ अपनाया है और धार्मिक परीक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रम के सिवाय अन्य भी कई संस्थाओं ने इसे अपने यहां पाठ्यक्रम में स्थान दिया है। जिसके फल स्वरूप ही स्वल्प समय में मंडल को इस चरित्र के दोनों भागों की तृतियावृत्ति निकालनी पड़ी है। प्रत्येक चरित्र के प्रारम्भ में 'प्रार्थना रूप श्लोक के साथ उसका भावार्थ हिन्दी में दे दिया गया है और भी उचित परिवर्तन करके पुस्तक को विशेष रोचक बनाने की यथा साध्य चेष्टा की है। फिर भी

सम्भव है दृष्टि दोष से कोई भूल हुई हो तो वाचक सुधार लें तथा मुझे सूचित करें कि आगामी संस्करण में सुधारने की चेष्टा की जाय । इत्यलम् ।

रतलाम
ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा २००८

बालचन्द श्रीश्रीमाल

विषय-सूची

२४८

श्री साधुमार्गी जैन श्रावक संघ
गंगाशहर - भीनासर

भगवान श्री विमलनाथ

प्रार्थना

श्लोकः—

सिंहासने गतप्रुपान्त समेत देव
देवे हितं सकमलं त्रिमलं विभासि ।
आनर्च यो जिनवरं लभते जनौघो
देवेहितं स कमलं विमलं त्रिभासि. ॥

भावार्थ—जिसके निकट ही देवगण विद्यमान हैं, ऐसे उत्तम देदि‌प्यमान सिंहासन पर विराजित हे विमलनाथ ! जो आपकी सेवा करते हैं वे देव प्रार्थनीय निर्मल और प्रकाशमान सुख को प्राप्त करते हैं ।

पूर्व भव

धातकीखण्ड द्वीप के पूर्व विदेह में, भरतक्षेत्र के अन्तर्गत महापुरी नाम की एक नगरी थी । वहां पद्मसेन नाम का प्रतापी और धर्मपरायण राजा राज्य करता था । समय पाकर, पद्मसेन संसार से विरक्त हो सर्वगुप्त आचार्य के समीप संयम में प्रवर्जित हो गया । जिस प्रकार, निर्धन पुरुष धन, और निःसन्तान पुरुष पुत्र पाकर उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करता है, उसी प्रकार पद्मसेन ने भी संयम का निरतिचार पालन किया । संयम पालन के साथ ही, अर्हद्भक्ति आदि बीसबोलों में से कतिपय बोलों का उत्कृष्ट रूपेण आराधन करने के द्वारा तीर्थंकर का नाम कर्म उपार्जन किया और अन्त में शरीर त्याग सहस्रार कल्प में अठारह सागरोपम आयु वाला देव हुआ ।

अन्तिम भव

मध्य जम्बूद्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध में, पंजाब देश के अन्तर्गत 'कांपिलपुर' नाम का एक रमणीय नगर था । वहां, कर्तृवर्म नाम का समृद्ध राजा राज्य करता था । उसके अन्तःपुर में, श्यामा नाम की पटरानी थी, जो स्त्रियोचित समस्त गुणों से सम्पन्न थी ।

भगवान का लालन-पालन करने लगीं। भगवान विमलकुमार, गिरिकन्दरा की लता के समान सुखपूर्वक वृद्धि पाने लगे। अनुक्रम से बाल-अवस्था समाप्त करके भगवान, युवावस्था में प्रविष्ट हुए। भगवान का साठ धनुष ऊँचा, और एक सहस्र अष्ट लक्षणों से युक्त सुन्दर कञ्चनवर्णी शरीर बहुत ही अधिक शोभायमान दिखने लगा। भगवान की स्वीकृति से, माता-पिता ने, भगवान के साथ अनेक राजकन्याओं का विवाह कर दिया। भगवान आनन्द से गृहस्थी के सुख भोगने लगे।

जब भगवान विमलकुमार की आयु पन्द्रह लाख वर्ष की हुई, पिता ने, भगवान को राजपाट सौंप दिया। भगवान कौशल-पूर्वक राज-काज करने और प्रजा को पालने लगे। भगवान ने तीस लाख वर्ष तक सुचारु रूप से राज्य किया।

एक बार भगवान ने, संसार त्याग कर संयम स्वीकार करने का विचार किया। उसी समय लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से विन्ती की, कि—हे प्रभो, अब समय आगया है, धर्म-तीर्थ प्रवर्ताइये। अपने विचार और देवताओं की प्रार्थना के अनुसार भगवान, राज-पाट से निवृत हो, वार्षिकदान देने लगे। वर्ष के अन्त में, भगवान का निष्क्रमणोत्सव सुर-असुर एवं मनुष्यों ने मनाया। भगवान त्रिजगत्पति शिविका में आरूढ़ हो, कम्पिलपुर के मध्य होकर सहस्राम बाग में पधारे। वहां,

सर्व वस्त्रालंकार त्याग, भगवान ने पंचमुष्टि लोच किया । इन्द्र ने, भगवान के सुकोमल केश, क्षीर-सागर में क्षेपण किये और जब जन-समूह का कोलाहल शान्त हुआ, तब भगवान विमलनाथ ने, सिद्ध भगवान को नमस्कार करके, छट्ठ के तप में, माघ शुक्ला ४ के दिन, एक हजार राजाओं के साथ संयम स्वीकार किया। संयम स्वीकारते ही, भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ ।

चरित्र स्वीकार करके भगवान,कम्पिलपुर से अन्यत्र विहार कर गये। दूसरे दिन धान्यकूट नगर में, जय राजा के यहां पत्रि-त्रान्न से भगवान का पारणा हुआ, जहां पांच दिव्य प्रकट हुये।

संयम पालन करते हुए और अनेक अभिग्रह धारण करते हुए, भगवान, निस्पृह होकर जन-पद में विचरने लगे । दो मास तक, भगवान, छद्मस्थ अवस्था में विचरते रहे और फिर कम्पिलपुर के उसी उद्यान में पधारे । वहां, भगवान ने जम्बू वृक्ष के नीचे क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हो, क्रमशः मोहकर्म की प्रकृतियों को खपया और फिर शेष घातिक कर्म नष्ट कर केवल ज्ञान प्राप्त किया ।

भगवान विमलनाथ को केवलज्ञान हुआ है, यह जान इन्द्र और देवता, सपरिवार, केवलज्ञानमहोत्सव करने के लिए उप-स्थित हुए। उन्होंने केवलज्ञानमहोत्सव किया । समवशरण की रचना हुई । द्वादश प्रकार की परिषद् एकत्रित हुई । भगवान

ने दिव्य वाणी का प्रकाश किया, जिससे अनेक जीव प्रतिबोध पाये। वहां से भगवान, जनपद में विहार कर गये।

भगवान विमलनाथ, विचरते-विचरते द्वारका नगरी पधारे। वहां, भरत क्षेत्र के तीसरे वासुदेव स्वयम्भू और बलदेव भद्र अर्द्धचक्री की ऋद्धि युक्त राज्य करते थे। उद्यान-रक्षक ने, स्वयम्भू वासुदेव को भगवान के पधारने की बधाई दी। स्वयम्भू वासुदेव, सर्व ऋद्धि सहित, भगवान को वन्दना करने पधारे। भगवान की वन्दना-स्तुति करके, स्वयम्भू वासुदेव ने, भगवान का उपदेशामृत श्रवण किया। अनेक भव्यों ने बोध पाकर आत्म कल्याण किया।

भगवान दो मास कम पन्द्रह लाख वर्ष तक केवली पर्याय में विचरे। भगवान के मन्दिर आदि सत्तावन गणधर थे। अरसठ सहस्र मुनि थे। एक लाख छः सौ आर्यिकाएं थीं। दो लाख आठ हजार श्रावक थे और चार लाख चौंतीस हजार श्राविका थीं। भगवान के उपदेश से, अनेक भव्य प्राणियोंने आत्म कल्याण किया।

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर, भगवान विमलनाथ, छः सौ साधु सहित सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहां भगवान ने, अनशन किया और वेदनीयादि अघातिक कर्म क्षय करके, अन्त में कार्तिक कृष्णा ७ को निर्वाण पद प्राप्त किया।

भगवान विमलनाथ, पन्द्रह लाख वर्ष तक कुमार पद पर

रहे। तीस लाख वर्ष तक राज्यासन को सुशोभित किया। दो मास, छद्मस्थ अवस्था में विचरे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। भगवान ने कुल साठ लाख वर्ष का आयुष्य भोगा और भगवान वासुपूज्य के निर्वाण के तीस सागरोपम पश्चात निर्वाण पधारे।

प्रश्न—

१—भगवान विमलनाथ स्वामी के पूर्वभव का संक्षिप्त चरित्र क्या है?

२—भगवान के जन्मस्थान का और माता-पिता का नाम क्या था?

३—माता के गर्भ में भगवान, किस गति से कितने काल का आयुष्य भोगकर पधारे थे?

४—भगवान, घर में कितनी अवस्था तक रहे और किस किस पद पर कितने-कितने वर्ष?

५—भगवान का पारणा कहां और किसके यहां हुआ था?

६—भगवान के समकालीन वासुदेव, बलदेव कौन थे और कहां रहते थे?

७—भगवान विमलनाथ, किस तिथि को जन्मे और किस तिथि को मोक्ष पधारे थे?

८—भगवान विमलनाथ के निर्वाण से कितने पहले, भगवान चन्द्रप्रभु निर्वाण पधारे थे?

१४

भगवान श्री अनन्तनाथ

प्रार्थना

श्लोकः—
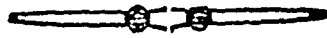
मज्ञावतां तनु तम स्तनुता मनन्त
मायाऽसमेत परमोहमलोभवन्तम् ।
स्याद्वादिनामधिपते ! महतामनन्त ?
मायाऽसमेत ! परमोहमलोभवन्तम् ॥

भावार्थ—हे स्याद्वादवादियों के अधिपति अनन्तजिन ! आप अन्तरहित एवं पाप मोह और वैरी से रहित हैं। लोभवर्जित दम्भ रहित तथा प्रशस्त तर्क वाले भी हैं, आपकी सेवा करने से आप विद्वानों के भी पापों को दूर करके शुद्ध सच्चरित्री बना देते हैं।

पूर्व भव

धातकी खण्ड द्वीप के पूर्वीय भाग के ऐरावत क्षेत्र* में, अरिष्टा नाम की एक नगरी थी। वहां पद्मरथ नाम का राजा राज्य करता था, जिसने अपने पराक्रम से, अनेक राजाओं को जीत कर अपने वश कर रक्खा था। राज्य-सम्पदा से समृद्ध होने पर भी, पद्मरथ, उसमें फँसा हुआ ही नहीं रहा, किंतु मुक्ति—लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए उसने, समस्त ऋद्धि तृण के समान त्याग दी और चितरक्ष नाम के गुरु के समीप संयम में प्रव्रजित हो गया। प्रमाद रहित संयम की आराधना करने के साथ ही, अर्हन्त सिद्ध की भक्ति द्वारा उत्कृष्ट विशुद्ध भावों से तीर्थङ्कर नाम का बन्ध किया। अन्त में, आराधिक हो, प्राणत कल्प के पुष्पोत्तर विमान में, बीस सागर की स्थिति वाला उत्कृष्ट देव हुआ।

अन्तिम भव

जम्बू द्वीप के भरतार्द्ध में, सरयू नदी के किनारे, अयोध्या+ नाम की प्रसिद्ध एवं पवित्र नगरी है। अयोध्या में, इक्ष्वाकुवंश के राजा सिंहसेन, राज्य करते थे। सिंहसेन की रानी का नाम

---

* जंबू द्वीप में तो एक ही ऐरावत क्षेत्र है किन्तु धातकीखंड द्वीप एवं पुष्करार्द्ध में दो २ हैं, इससे पूर्वीय भाग का विशेषण दिया गया है। + यह शाकेतपुर कोशलपुर आदि अनेक नामों से सम्बोधित की गई है।

सुयशा था, जो श्वसुर एवं पिता के वंश के लिए यश की मूर्ति के समान ही थी।

प्राणत देवलोक के सुख भोगकर और वहां का आयुष्य पूर्ण कर, पद्मरथ राजा का जीव, श्रावण कृष्णा ७ की रात को—जब चन्द्र, रेवती नक्षत्र में आया हुआ था—महारानी सुयशा के उदर में आया। महारानी सुयशा, उस समय सुख निद्रा में निमग्न थीं। उन्होंने, तीर्थङ्कर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्नों का फल सुनकर, वे प्रसन्न हुईं और सुख-पूर्वक गर्भ की रक्षा करने लगीं।

गर्भकाल समाप्त होने पर, वैशाख कृष्णा १३ की रात को—पुष्य नक्षत्र में—महारानी सुयशा ने सिंचान पक्षी के लक्षण वाले स्वर्ण वर्णी पुत्र को सुखपूर्वक जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही त्रिलोक मे प्रकाश हुआ। आसनकम्प से, अवधि-ज्ञान द्वारा चौदहवें तीर्थंकर का जन्म हुआ जान, अच्युतादि विमानिक के नौ इन्द्र, ज्योतिषियों के दो इन्द्र, व्यन्तर देवों के बत्तीस इन्द्र, और भुवनपति के बीस इन्द्र—सब ६३ इन्द्र—भगवान का जन्म कल्याण मनाने के लिए, मेरु पर्वत के शिखरस्थ पांडुकवन में उपस्थित हुए।

यह मेरु पर्वत, जम्बू द्वीप के मध्य में है और वैसे, सारे तिर्छे लोक के मध्य मे है। इसके सोलह नामों में से एक नाम, लोक-नाभि भी है; क्योंकि यह तिर्छा लोक के ठीक मध्य मे है।

यह मेरु पर्वत एक लक्ष योजन ऊँचा है।*इसकी चौड़ाई सम भूमि पर, दस हजार योजन है और क्रमशः चौड़ाई कम होते २ मस्तक पर केवल एक सहस्र योजन चौड़ा रह गया है। यह पर्वत चार वन से सुशोभित है, जिसमें के चौथे वन का नाम पाण्डुक-वन है। पाण्डुकवन की चारों ओर स्वर्णमयी और अर्द्धचन्द्राकार एक-एक शिला है, जिस पर रत्नमय सिंहासन बने हुए हैं। इन्हीं सिंहासन पर, भगवान तीर्थङ्कर का जन्मकल्याण होता है।

सुयशानन्दन को भी, शक्रेन्द्र, विधिपूर्वक, पाण्डुक वन के दक्षिणस्थ रत्नमय सिंहासन पर ले गये। वहां, क्रमशः सब इन्द्रों ने, भगवान को स्नान कराके, वस्त्रालंकार धारण कराये और भगवान की स्तुति की। पश्चात् भगवान को महारानी सुयशा के समीप रखकर, इन्द्र और देव अपने-अपने स्थान को गये।

प्रातःकाल पुत्र जन्म की बधाई पाकर, महाराजा सिंहसेन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने, पुत्र-जन्मोत्सव मनाया और पुत्र का नाम, अनन्तकुमार रक्खा। देवों तथा मनुष्यों द्वारा भगवान अनन्तकुमार का लालन-पालन होने लगा। भगवान, वृद्धि पाने लगे और समय पाकर वे युवक हुए। युवावस्था के साथ भगवान का पचास धनुष ऊँचा और सर्व लक्षण-सम्पन्न शरीर, बहुत

---

*अन्य चार मेरु पर्वत जो धातकीखण्ड व पुष्करार्द्ध हैं, पचासी-पचासी हजार योजन के ही ऊँचे हैं।

सुन्दर मालूम होता था। माता-पिता ने, आग्रह-पूर्वक भगवा अनन्तकुमार का अनेक राजकन्याओं के साथ विवाह कर दिया भगवान अनन्तकुमार, पत्नियों के साथ सुखपूर्वक गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने लगे।

भगवान अनन्तकुमार जब साढ़े सात लाख वर्ष के हुए, तब पिता ने अपना राज-पाट उन्हें सौंप दिया। पन्द्रह लाख वर्ष तक भगवान, पिता का दिया हुआ राज्य-भार वहन करते रहे। जब भगवान की अवस्था साढ़े बाईस लाख वर्ष की हुई, तब वे, सर्वविरतिचारित्र लेने को उद्यत हुए। उसी समय लोकान्तिक देवों ने आकर, भगवान अनन्तकुमार से तीर्थ प्रवर्ताने की प्रार्थना की। भगवान ने उसी समय राज्यादि को त्याग दिया, और वार्षिकदान देने लगे। वार्षिकदान की समाप्ति पर, इन्द्र तथा देवता, भगवान का दीक्षा महोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए। दीक्षाभिषेक के पश्चात भगवान अनन्तनाथ, सागरदत्ता नामकी शिविका में आरूढ़ हुए और नगर से बाहर सहस्राम्र उद्यान में पधारे। उद्यान में शिविका से उतर कर भगवान अनन्तनाथ ने, वैशाख कृष्णा १४ को अपराह्न * समय छट्ठ के तप में राज-परिवार के एक सहस्र मनुष्यों के साथ संयम स्वीकार किया। दीक्षा लेते ही, भगवान को मनःपर्यय नाम का चौथा ज्ञान हुआ।

---

* दुपहर का समय।

दीक्षा लेकर भगवान, अयोध्या से विहार कर गये। दूसरे दिन वर्द्धमान नगर में विजय राजा के यहां, भगवान का परमान्न से पारणा हुआ। देवताओं ने, पांच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की। वर्द्धमान नगर से भगवान, जन-पद में विहार कर गये।

तीन वर्ष तक अनेक ग्राम नगर में अप्रमत्त अवस्था में विचरते रहने के पश्चात भगवान, अयोध्या नगरी के उसी सहस्राम्र उद्यान में पधारे। वहां अशोक वृक्ष के नीचे, ध्यानस्थ प्रभु, श्रेणी आरूढ़ हुए और घातिक कर्मों को नष्ट करके वैशाख कृष्ण १४ को—जब चन्द्र का रेवती नक्षत्र के साथ योग हुआ—केवलज्ञान रूपी अनन्त विभूति के स्वामी बने। भगवान को केवलज्ञान होते ही, तीनों लोक में प्रकाश हुआ।

अवधिज्ञान द्वारा इन्द्र और देवताओं ने जाना, कि भगवान अनन्तनाथ को केवलज्ञान हुआ है। वे तत्क्षण अपनी सब विभूति सहित, भगवान का केवलज्ञानोत्सव करने और भगवान की दिव्यवाणी श्रवण करने के लिए उपस्थित हुए। समवशरण की रचना हुई। भगवान ने द्वादश प्रकार की परिषद के सम्मुख, अमोघवाणी का प्रकाश किया। भगवान की वाणी सुन कर अनेक भव्य जीव, प्रतिबोध पाये।

भगवान, विचरते-विचरते किसी समय द्वारकापुरी में पधारे। उस समय द्वारकापुरी में, पुरुषोत्तम नाम के चौथे

वासुदेव और सुप्रभ नाम के चौथे बलदेव तीन खण्ड पृथ्वी का शासन कर रहे थे। उद्यान रक्षक ने, इन चौथे हरि हलधर को, भगवान के पधारने की बधाई दी। वासुदेव ने सिंहासन से उठ कर, वहीं से भगवान को वन्दना की, और उद्यान रक्षक को पुरस्कार देकर विदा किया। पश्चात्, आप अपने वैभव सहित, भगवान को वन्दना करने के लिए, द्वारका के उद्यान में आये। भगवान के छत्र चमर आदि अष्टप्रतिहार्य देखते ही, वासुदेव हाथी से नीचे उतर पड़े। उन्होंने नंगे पांव और नम्रतापूर्वक समवशरण में प्रवेश किया। भक्ति-पूर्वक वन्दना नमस्कार करके, अपने साथियों सहित वासुदेव, इन्द्र के पीछे बैठ गये। भगवान ने, भवसागर से तारने-वाली वाणी का प्रवाह छोड़ा, जिसे श्रवण करके अनेक भव्य जीव, बोध पाये और संयम में प्रवर्जित हुए। बहुतों ने श्रावक व्रत स्वीकार किये, तथा पुरुषोत्तम अर्द्ध-चक्री ने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

भगवान, अनन्तनाथ के, यशोधर आदि पचास गणधर* थे। छांसठ सहस्र मुनि थे। बांसठ सहस्र सतियां थीं। दोलाख छः

---

* तीर्थंकर भगवान, उपनेवा, विगमेवा और धुवेवा ये-त्रिपदी फर्माते हैं, उस पर से जो महापुरुष अपनी पवित्र और निर्मल बुद्धि से चौदह पूर्वादि द्वादशांगी की रचना कर लेते हैं, उन महापुरुषों को 'गणधर' कहते हैं। —लेखक।

हजार श्रावक थे और चार लाख चौदह सहस्र श्राविका थीं। इनके सिवा, अनेक भव्य जीव, सम्यक्त्वधारी भी थे।

भगवान अनन्तनाथ, तीन वर्ष कम साढ़े सात लाख वर्ष तक केवली पर्याय में विचरे। अपना निर्वाण काल समीप जान सातसौ मुनियों सहित भगवान, सम्मेत शिखर पर पधार गये। और अनशन कर लिया। अन्त में, चैत्र शुक्ल ५ के दिन पुष्य नक्षत्र में भगवान अनन्तनाथ, शैलेशी अवस्था को प्राप्त करके, सब कर्मों से रहित हो, सिद्ध पद को प्राप्त हुए। भगवान अनन्त नाथ का निर्वाण, भगवान विमलनाथ के निर्वाण से नव साग-रोपम पश्चात हुआ था!

प्रश्न—

१—पूर्वभव में भगवान अनन्तनाथ कौन थे, कहां रहते थे और किस करणी से गति को प्राप्त हुए थे ?

२—भगवान अनन्तनाथ के माता-पिता और जन्मस्थान का नाम ?

३—भगवान के समकालीन वासुदेव बलदेव कौन थे ?

४—भगवान ने कुल कितनी आयु भोगी और किस-किस कार्य में कितनी-कितनी ?

५—गणधर किन्हें कहते हैं ?

६—कुल कितने इन्द्र हैं और किन-किन देवताओं के ?

७—भगवान अनन्तनाथ के निर्वाण में और भगवान श्रेयांशनाथ के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा ?

१५

भगवान श्री धर्मनाथ

प्रार्थना

श्लोकः—

सद्धर्म ! धर्म ! भवतु प्रणतिर्विमुक्त
मायायते तनु भवाय धरेश भानोः।
यस्याभिधानम भवद् भविनां पवित्र
मायायतेऽतनु भवाय धरेश भानोः॥

भावार्थ—हे भानुसुत-धर्म जिनेश्वर ! आप प्रधान धर्म से सम्पन्न तथा माया रहित हैं आपका नाम स्मरण ही प्राणियों को अत्यन्त मंगल-देने वाला है आपकी प्रभा मेरु पर्वत के समान देदिप्यमान है उत्तम लक्ष्मी से सम्पन्न है। अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

पूर्व भव

धातकीखण्ड के पूर्वभाग में, भरत विजय के अन्तर्गत भद्दिल नाम का एक नगर था। वहां दृढ़रथ नाम का पराक्रमी राजा राज्य करता था। दृढ़रथ ने अपने पड़ोसी अनेक राजाओं को जीतकर अपने अधीन कर रक्खा था। इतना होते हुए भी, दृढ़रथ धर्म-सेवा को न भूला था, अपितु धर्म की आराधना करता ही रहता था और संसारिक कार्यों से, जल-कमलवत् अलिप्त रहता था। समय पाकर दृढ़रथ ने, सांसारिक ऋध्दि को, उसी प्रकार त्याग दी, जिस प्रकार मल त्यागा जाता है, और विमलवाहन गुरु से, संयम स्वीकार लिया। दुस्तर तप और अर्हद्-भक्ति आदि बोलों की उत्कृष्ट भाव से आराधना करके दृढ़रथ ने, तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में समाधि मरण से शरीर त्याग, विजय विमान में बत्तीस सागर का आयुवाला अहमिन्द्र देव हुआ।

अन्तिम भव

जम्बू द्वीप के दक्षिण विभाग में, भरतक्षेत्र के अन्तर्गत, रत्नपुर नाम का नगर था जो बहुत ही रमणीय और सब प्रकार से समृध्द था। वहां, भानु नाम के राजा राज्य करते थे। महाराजा

भानु की रानी का नाम सुव्रता था, जो अपने पवित्र आचरण से दोनों कुल की शोभा बढ़ानेवाली थी। राजा-रानी, आनन्द से समय व्यतीत करते थे।

विजय विमान का आयुष्य भोग कर राजा दृढ़रथ का जीव, वैशाख शुक्ला ७ की रात में—पुष्य नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग आने पर—महारानी सुव्रता के गर्भ में आया। सुख पूर्वक शयन किये हुई महारानी सुव्रता ने, तीर्थंकर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखे। हर्ष-सहित, वे गर्भ का पोषण करने लगीं।

गर्भकाल समाप्त होने पर, माघ शुक्ला ३ की रात को पुष्य नक्षत्र में महारानी सुव्रता ने, वज्र के लक्षण वाले स्वर्णवर्णी पुत्रको जन्म दिया। तत्क्षण त्रैलोक्य में प्रकाश हुआ और क्षणभर के लिए नारकीय जीवों को भी शांति मिली। तीर्थंकर का जन्म हुआ जान कर, इन्द्र तथा देवों ने भगवान का जन्म कल्याणोत्सव किया।

प्रातःकाल महाराजा भानु ने पुत्र जन्मोत्सव मनाकर, पुत्रका नाम धर्मनाथ रखा। भगवान् धर्मनाथ जिस समय गर्भ में थे, उस समन महारानी सुव्रता को धर्म करने की इच्छा हुई थी। इसी बात को दृष्टि में रख कर, भगवान का नाम भी धर्मनाथ रखा गया।

देवकुमारों के साथ बालक्रीड़ा करते हुए भगवान धर्मनाथ वृध्दि पाने लगे। समय पर भगवान धर्मनाथ, युवक हुए। युवा- में भगवान का पैंतालीस धनुष ऊँचा सर्वाङ्ग सुन्दर और

तेजोमय शरीर, बहुत शोभायमान दिखने लगा। माता-पिता के आग्रह से भगवान धर्मनाथ ने पुण्य-फल नष्ट करने के लिए विवाह किया। पत्नी सहित भगवान, आनन्द-पूर्वक रहने लगे।

भगवान धर्मनाथ की अवस्था जब ढाई लाख वर्ष की हुई तब महाराजा भानु ने राजपाट भगवान को सौंप दिया। पांच लाख वर्ष तक भगवान धर्मनाथ, पिता के सौंपे हुए राज्य को नीति-पूर्वक चलाते रहे। एक दिन भगवान ने विचार किया कि अब मेरे भोग-फल देने वाले कर्म निःशेष होने आये हैं, इसलिए मुझे,स्व पर कल्याणार्थ धर्म और तीर्थ की प्रवृत्ति करनी चाहिए। इतने ही में ब्रह्मलोकवासी लोकान्तिक देवों ने उपस्थित होकर [illegible] से प्रार्थना की, कि—हे प्रभो, अब समय आगया है, [illegible] धर्मतीर्थ प्रवर्ताइये। स्वयं के विचार एवं देवों की प्रार्थना [illegible] में लेकर, भगवान ने राजपाट त्याग वार्षिकदान [illegible] कर दिया।

वार्षिकदान की समाप्ति पर, इन्द्र तथा [illegible], [illegible] का निष्क्रमणोत्सव मनाने के लिए उपस्थित [illegible]। [illegible] हो जाने के पश्चात भगवान शिविकारूढ़ होकर [illegible] के बाहर उद्यान में पधारे। वहां, माघ शुक्ला १३ के दिन [illegible] सहस्र राजाओं सहित भगवान, संयम में प्रव्रजित हो गये। संयम स्वीकार [illegible] [illegible] भगवान धर्मनाथ को मनःपर्यय नाम का चौथा ज्ञान [illegible]

दीक्षा लेकर भगवान, रत्नपुर से विहार कर गये। दूसरे दिन, सोमनसपुर में धर्मसिंह राजा के यहां भगवान का परमान्न से पारणा हुआ। भगवान,वहां से जनपद में विहार कर गये।

पत्ती की तरह स्वतन्त्र विचरते हुए और अनेक परिषद् सहन-पूर्वक संयम का पालन करते हुए, भगवान दो वर्ष तक छद्मस्थावस्था में रहे। विचरते हुए भगवान, रत्नपुर के उसी प्रकांचन उद्यान में पधारे। वहां, दधिपर्ण वृक्ष के नीचे, ध्याना-रूढ़ भगवान ने अपने घातिक कर्म त्तयकर दिये, जिससे पौष शुक्ल १५ के दिन-जब चन्द्र, पुष्य नत्तत्र के योग में प्राप्त हुआ उस समय भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

भगवान धर्मनाथ, को केवलज्ञान होते ही, इन्द्र और देवता सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने, केवलज्ञानोत्सव किया। समव-शरण की रचना हुई। भगवान धर्मनाथ ने, भव्य जीवों का उद्धार करने वाली वाणी की धारा बरसाई। भगवान की वाणी सुनकर,, अनेक भव्य जीवों ने प्रतिबोध पाया और आत्म-कल्याण किया।

भगवान धर्मनाथ, विचरते-विचरते अश्वपुर नगर के उद्यान में पधारे। उस समय वहां पुरुषसिंह नाम के वासुदेव और सुदर्शन नाम के बलदेव, अर्द्धचक्री के वैभव को भोग रहे थे। उद्यान-रत्तक ने, पुरुषसिंह वासुदेव को भगवान धर्मनाथ के

पधारने की बधाई दी। भगवान पधारे हैं, यह जानकर वासुदेव बहुत हर्षित हुए। उन्होंने, सिंहासन से उठकर, वहीं से भगवान को वन्दन किया और उद्यान-रक्षक को पुरस्कार दिया। पश्चात् पांचवें वासुदेव पुरुषसिंह, अपनी सब ऋद्धि एवं सुदर्शन बलदेव सहित, भगवान को वन्दन करने के लिए उद्यान में आये। भगवान को विधिवत वन्दना नमस्कार करने के पश्चात्, वासुदेव और बलदेव, इन्द्र के पीछे बैठ गये। भगवान ने, दिव्य-वाणी प्रकाशित की जिसे सुनकर अनेक भव्य जीवों ने आत्म-कल्याण का मार्ग पकड़ा और वासुदेव ने भी सम्यक्त्व स्वीकार किया।

भगवान धर्मनाथ ने दो वर्ष कम ढाई लाख वर्ष केवली पर्याय में विचरते रह कर अनेक भव्य जीवों का कल्याण किया। भगवान के रिष्ट आदि त्रैतालिस गणधर थे। चौंसठ हजार मुनि थे। बांसठ हजार छःसौ साध्वियां थीं। दो लाख चालीस हजार श्रावक थे और चार लाख तेरह हजार श्राविका थीं। इनके सिवा अनेक भव्य जीव, सम्यक्त्व—धारी भी हुए।

अपना निर्वाण काल समीप जानकर भगवान धर्मनाथ, एक सौ आठ मुनियों को लेकर, सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहां भगवान ने सदा के लिए अनशन कर लिया। अन्त में ज्येष्ठ शुक्ल ५ के दिन पुष्य नक्षत्र में, भगवान, निर्वाण पधार गये। देवता तथा इन्द्रों ने, भगवान के शरीर का अन्तिम संस्कार किया और अठाई महोत्सव करके अपने-अपने स्थान को गये।

भगवान धर्मनाथ, ढाई लाख वर्ष कुमार पद पर रहे। पांच लाख वर्ष राज्य किया। दो वर्ष, छद्मस्थ रहे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार सब दस लाख वर्ष का आयुष्य भोग कर भगवान धर्मनाथ भगवान अनन्तनाथ के निर्वाण के पौन पल्य कम तीन सागरोपम पश्चात्, निर्वाण पधारे।

प्रश्न—

१—भगवान धर्मनाथ के पूर्व भव का संक्षिप्त चरित्र क्या है?

२—माता के गर्भ में भगवान धर्मनाथ का जीव, किस गति में से और वहां कितना आयुष्य भोग कर आया था?

३—भगवान के माता-पिता और जन्म स्थान का नाम क्या है?

४—भगवान धर्मनाथ के समकालीन वासुदेव बलदेव कौन थे?

५—भगवान की आयु कितनी थी और भगवान के अनुयायियों की भिन्न-भिन्न संख्या क्या है?

६—भगवान की जन्म-तिथी और निर्वाण-तिथि बताओ?

१६
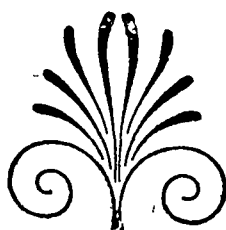
भगवान श्री शान्तिनाथ

प्रार्थना

श्लोकः—

यंस्तौति शान्ति जिनमिन्द्र ततिर्नितान्तं
श्री जात रूपतनु कान्त रसाभिरामम् ।
शान्ति सुरीभिरभि नूत नुदन् सनुन्न !
श्री जात रूप तनुकान्त रसाभिरामम् ॥

भावार्थ—कामदेव के स्वरूप को भी अपने शरीर की शोभा से तिरस्कृत करने वाले हे शांतिनाथ प्रभु ! इन्द्रों का समूह निरन्तर आपकी सेवा स्तुति करता है । क्योंकि आप भव्यप्राणियों को रोग रहित परमशान्ति को देने वाले हैं ।

पूर्वभव
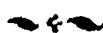
इसी जम्बू द्वीप के अन्तर्गत दक्षिण दिशा में मण्डन रूप भरत क्षेत्र है। उसमें रत्नपुर नाम का नगर था। वहां श्रीसेन नाम का प्रतापी राजा राज्य करता था। श्रीसेन की अभिनंदिता और शिखिनंदिता नाम्नी दो रानियाँ थीं।

बड़ी रानी अभिनंदिता ने, एक रात को स्वप्न में यह देखा कि मेरी गोद में सूर्य और चंद्र आये हैं अभिनंदिता ने अपना यह शुभ स्वप्न, अपने पति महाराजा श्रीसेन को सुनाया महाराजा श्रीसेन ने, स्वप्न का यह फल बताया कि तुम्हारे दो उत्कृष्ट पुत्र होंगे।

समय पाकर महारानी अभिनंदिता ने एक साथ दो पुत्र प्रसव किये। महाराजा श्रीसेन ने पुत्र-जन्मोत्सव करके, दोनों पुत्रों का क्रमशः इन्दुसेन और बिन्दुसेन नाम दिया। कुछ ही समय में दोनों कुमार बड़े हुए।

उस समय, अचल नाम के ग्राम में धरणीजट नाम का एक ब्राह्मण रहता था। धरणीजट ब्राह्मण था तो विद्वान, फिर भी उसने एक दासी को अपनी प्रेयसी बना रक्खी थी। धरणीजट के संयोग से, दासी के एक पुत्र हुआ। समय पाकर यह दासी—पुत्र बड़ा हुआ। उसका नाम कपिल था।

धरणीजट ब्राह्मण, नन्दीभूति और शिवभूति नाम के अपने लड़कों को पढ़ाया करता था। दासी—पुत्र कपिल इतना बुद्धिशाली था कि—धरणीजट और नन्दीभूति शिवभूति के अध्यापन अध्ययन को सुन-सुनकर, वेद का पारगामी होगया। कुछ दिन पश्चात कपिल, विदेश चला गया। घूमते फिरते कपिल, रत्नपुर नगर में आया। रत्नपुर नगर में वह, सत्य की उपाध्याय पाठशाला में जाया करता था। सत्यकी उपाध्याय ने, कुशाग्र बुद्धि कपिल को कुलवान जानकर, उसके साथ अपनी सत्यभामा नाम्नी कन्या का विवाह कर दिया। कपिल, सत्यभामा के साथ आनन्द-पूर्वक रहने लगा। नागरिकों के लिए कपिल प्रतिष्ठापात्र बन गया था।

एक रात कपिल नाटक देखने गया। रात अधिक हो गई थी। वह जब घर आने लगा, तब वर्षा होने लगी। कपिल ने सोचा कि मार्ग में कोई मनुष्य तो है नहीं, फिर कपड़े क्यों भीगने दूँ! यह विचार कर कपिल ने शरीर के सब वस्त्र निकाल अपनी बगल में दाब लिये और नग्न शरीर घर को आया। घर आकर वह अपनी पत्नी सत्यभामा से कहने लगा कि—देखो, मैंने अपनी विद्या के प्रभाव से वर्षा होने पर भी कपडे नहीं भीगने दिये। सत्यभामा ने देखा कि पति के कपडे तो सूखे हैं, परन्तु इनका शरीर वर्षा से भीगा हुआ है। वह समझ गई, कि पति नग्न शरीर आये हैं और इनने द्वार पर ही कपडे पहने हैं,

लेकिन जो पुरुष राजपथ पर नग्न होकर चल सकता है, वह अवश्य ही कुलहीन है। पति को कुलहीन समझकर, सत्यभामा कपिल से विरक्त हो, श्रीसेन राजा के पास आई और श्रीसेन राजा से प्रार्थना करने लगी कि—हे महाराज, दुर्दैव से मुझे कुलहीन पति मिला है, और मेरी इच्छा उसके साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने की नहीं है, अतः आप मुझे इस अकुलीन पति से छुड़ाकर मेरी रक्षा करें। राजा ने, सत्यभामा की प्रार्थना स्वीकार करके, पति-पत्नी का संबंध विच्छेद करा दिया। पति से छुटकारा पाकर सत्यभामा, तप करती हुई, शील की रक्षा करने लगी।

कौशम्बी के राजा बल की कन्या का नाम श्रीकान्ता था। श्रीकान्ता ने, राजा श्रीसेन के पुत्र कुमार इन्दुसेन को अपने लिए वर पसन्द किया। वह, स्वयंवरा होकर इन्दुसेन के घर आई। श्रीकान्ता के साथ, एक अनन्तमतिका नाम की वेश्या भी आई। अनन्तमतिका, युवती और रूपसम्पन्न थी, इस कारण इन्दुसेन और बिन्दुसेन दोनों ही भाई उस पर मुग्ध होगये, तथा वेश्या को अपनी-अपनी बताकर चर्मशरीरी होने पर भी आपस में लडने लगे। महाराजा श्रीसेन ने, अपने दोनों पुत्रों का आपसी कलह मिटाने के लिये बहुत प्रयत्न किया, परंतु दोनों भाइयों में से कोई भी न माना। निराश हो, राजा श्रीसेन ने अपनी दोनों रानियों सहित, जहरी कमल सूंघ कर, प्राण त्याग दिये। राजा और दोनों

रानियों की मृत्यु हुई जानकर, शरणागत सत्यभामा भयभीत हुई कि अब मेरी रत्ता कौन करेगा ! मेरा रत्तक राजा नहीं रहा, इसलिए कपिल मुझे सतावेगा, इस भय से सत्यभामा ने भी जहरी कमल सूँघकर शरीर छोड़ दिया ।

शुद्ध और सरल परिणामों के प्रभाव से, ये चारों जीव उत्तर कुरुत्तेत्र में, भोग प्रधान युगलियों के दो जोड़े के रूप में उत्पन्न हुए । वहां तीन पल्योपम की आयुष्य भोगकर, विरह-रहित चारों ही जीव, प्रथम स्वर्ग में गये ।

इन्दुसेन और बिन्दुसेन, दोनों आपस में युद्ध कर रहे थे । क्रोध मोह आदि के वशीभूत बने हुए दोनों कुमार, किसी के भी समझाने से नहीं माने । उसी समय, विमान में बैठ कर एक विद्याधर आया । वह युद्ध करते हुए दोनों कुमार के बीच में खड़ा हो, हाथ ऊपर करके दोनों से कहने लगा कि—अरे मूर्खों ! जिस वेश्या के लिये तुम दोनों भाई आपस में युद्ध कर रहे हो, वह तो तुम्हारी—पूर्व-भव की बहन—है ! तुम इस बात को न समझकर, अपनी-अपनी स्त्री बनाने के लिये क्यों लड़ रहे हो ! तुम लोग मुझ से पूर्व-भव का वृत्तान्त सुनो । विद्याधर की बात सुनकर दोनों ने युद्ध बन्द कर दिया और विद्याधर से पूर्व-भव का वृत्तान्त सुनने लगे । विद्याधर ने पूर्व-भव का विस्तृत वर्णन करते हुए कहा, कि—तुम दोनों भाई

और यह वेश्या, पूर्व-भव में—तीनों ही बहनें-बहनें थीं, और मैं, तुम तीनों बहनों की माता थी। तुम तीनों में से एक बहन—जो अब वेश्या है—ने, एक वेश्या के लिये दो पुरुषों को युद्ध करते देख कर यह अभिलाषा की, कि मेरे तप के फलस्वरूप आगामी-भव में, मुझे भी ऐसा ही सौभाग्य प्राप्त हो। यानी मैं भी ऐसी होऊँ, कि मेरे वास्ते दो पुरुष आपस में युद्ध करें। तप के बदले में इस प्रकार का फल चाहने की इच्छा के कारण, यह इस भव में वेश्या हुई है।

यह सुनकर दोनों भाइयों का मोह शान्त हुआ। वे दोनों विद्याधर से कहने लगे, कि आप पूर्व-भव में तो हमारी माता थी ही, लेकिन इस भव में भी आपने हमारे गुरु बनकर हम पर बहुत उपकार किया है। हम आपके ऋणी हैं। ऐसा कह कर दोनों भाई संसार से विरक्त होगये। धर्मरुचि मुनि से दोनों भाइयों ने संयम स्वीकार कर लिया, और महान तप एवं शुभ और शुद्ध ध्यान द्वारा घातिक कर्मों को नष्ट कर, सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

इसी भरतक्षेत्र के मध्य में, वैताढ्यगिरि नाम का एक पर्वत है। इसकी उत्तर और दक्षिण दिशा में, विद्याधरों की श्रेणियां हैं। वहां रथनुपुर नाम का एक नगर था और ज्वल—नजटी नाम का विद्याधर रहता था, जिसके अर्ककीर्त्ति नाम का पुत्र और स्वयंप्रभा नाम की परम सुन्दरी कन्या थी। स्वयंप्रभा का विवाह, त्रिपृष्ठ वासुदेव के साथ हुआ था।

अर्ककीर्ति की पत्नि का नाम ज्योत्तिर्माला था । श्रीसेन राजा का जीव, ज्योत्तिर्माला की कोख से पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ जिसका नाम अमिततेज रखा गया। सत्यभामा का जीव भी, ज्योत्तिर्माला की कुक्षि से पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ,जिसका नाम सुतारा रखा गया । अर्ककीर्ति की बहन और तिपृष्ट वासुदेव की रानी स्वयंप्रभा की कोख से, अभिनन्दिता रानी का जीव पुत्र रूपमें और शिखिनन्दिता रानी का जीव पुत्री रूपमें उत्पन्न हुआ। इन दोनों के नाम क्रमशः श्रीविजय और ज्योतिर्प्रभा दिये। समय पाकर,अर्ककीर्ति की कन्या सुतारा का विवाह श्रीविजय के साथ और ज्योतिर्प्रभा का विवाह अमिततेज के साथ होगया। ये दोनों परस्पर साले बहनोई और ये ननंद भोजाई परस्पर हुईं।

त्रिपृष्ट वासुदेव का शरीरांत होने के कुछ समय पश्चात अचल बलदेव संसारसे विरक्त होगये और संयम स्वीकार कर लिया। तव पोतनपुर के राजा श्रीविजय हुए। उधर रथनुपुर का राज्य अमिततेज को सौंप कर, ज्वलनजटी और अर्ककीर्ति ने भी दीक्षा ले ली।

एक समय, महाराजा अमिततेज, अपनी बहन सुतारा से मिलने के लिये पोतनपुर आये। उस समय, पोतनपुर नगर में और विशेषतः पोतनपुर की राजसभा में, बड़ा ही आनन्दोत्सव हो रहा था। महाराजा श्रीविजय द्वारा स्वागत सत्कार हो जाने

के पश्चात, महाराजा अमिततेज ने उनसे इस उत्सव का कारण पूछा। महाराजा अमिततेज के प्रश्न के उत्तर में. महाराजा श्रीविजय कहने लगे, कि 'आज से आठ दिन पहले, एक भविष्यवेत्ता आया था। मैंने उस भविष्यभाषी से पूछा, कि तुम किस लिये आये हो ? तुम्हारे आने का उद्देश्य कुछ याचना करना है, या किसी प्रकार का भविष्य बताने आये हो ? उस भविष्यवेत्ता ने कहा कि मैं याचक तो हूँ, ही लेकिन इस समय याचना करने नहीं आया हूँ, किंतु न कहने योग्य भविष्य की एक बात कहने के लिये आया हूँ, जिससे धर्मकृत्यादि द्वारा दुर्भविष्य का प्रतिकार किया जासके। मेरे पूछने पर उसने कहा कि—आजके सातवें दिन, पोतनपुर के राजा पर महाघोर विद्युत्पात होगा।' यह कटु भविष्य सुनकर, मेरे प्रधान मन्त्री ने उस भविष्यभाषी से कहा, कि—जब पोतनपुर के राजा के ऊपर बिजली गिरेगी, उस समय तेरे पर क्या गिरेगा ? उस भविष्यभाषी ने, प्रधान मन्त्री से कहा—मन्त्रीवर, आप मेरे पर क्यों रुष्ट होते हैं ? मैं तो शास्त्र में जैसा देखता हूँ वैसा कहता हूँ। फिर भी आप पूछते हैं—इसलिये मैं आपसे कहता हूँ, कि उस समय मेरे पर वस्त्राभूषण, मणिमाणिक और स्वर्णादि-द्रव्य की वृष्टि होगी। भविष्यवक्ता की बात सुन कर, मैंने प्रधानमन्त्री से कहा, कि—मन्त्री, इस पर कोप न करो, यह तो यथार्थ भविष्य

कहने के कारण उपकारी ही है । भविष्यवक्ता की बात सुनकर मेरे मन्त्रिगण अपने राजा की रक्षा के लिए उपाय सोचने लगे। कोई कहने लगा कि समुद्र में विद्युपात नहीं होता, इसलिए महाराजा को समुद्र में रखा जावे। कोई, पर्वत की गुफा में रहने की सम्मति देने लगा। कोई यह कहने लगा कि भावी नहीं टलती, इसलिये कर्मनाश करने को तप करना चाहिये; क्यों कि तप का प्रभाव बहुत होता है।

इस तरह होते होते एक मन्त्री ने कहा कि इस भविष्य वक्ता की भविष्यवाणी के अनुसार पोतनपुर के राजा पर विद्युपात होगा, न कि श्रीविजय पर। इसलिए पोतनपुर का राजा किसी दूसरे को बना दिया जावे और तब तक महाराजा श्रीविजय धर्मध्यान करते रहें। ऐसा करने से, अहित टल जावेगा। यह सुन कर उस भविष्यवक्ता ने ऐसा कहने वाले मन्त्री से कहा, कि—मेरे निमित्तज्ञान से भी आपका मतिज्ञान विशेष निर्मल है। इसलिए जैसा आप कहते हैं ऐसा ही करना ठीक है। तब मैंने कहा कि इस योजना के अनुसार तो जिसे भी राजा बनाया जावेगा, वह निरपराधी होने पर भी व्यर्थ में मारा जावेगा। ऐसा होना तो कदापि भी उचित नहीं है। क्योंकि चींटी से लगा कर, इन्द्र तक को अपना जीवन प्यारा है। राजा का कर्त्तव्य निर्बल की रक्षा करना है, और इसीलिए मैं हाथ में तलवार ले

कर बैठा हूँ। फिर मेरी रक्षा के लिए निरपराधी की हत्या होने देना मेरे लिए श्रेय कैसे हो सकता है ? मेरी बात सुन कर, वह मन्त्री कहने लगा कि, हमें तो आपका भावी अनिष्ट भी दूर करना है, और किसी की हत्या भी नहीं करनी है। अतः वैश्रवण यक्ष की प्रतिमा का राज्याभिषेक करके, सात दिन के लिए उसे यहां का राजा बना दिया जावे। हम लोग भी उस मूर्ति की सेवा सात दिन तक उसी प्रकार करेंगे जिस प्रकार आप की करते हैं।

मन्त्री की यह बात मुझे भी जंच गई । यक्ष-प्रतिमा को राज्याभिषिक्त कर, मैं पोपधशाला में गया। वहां मैं पोषध करके बैठ गया। सातवें दिन, मध्यान्ह समय सहसा गर्ज घुमड़ कर मेघ चढ़ आया और थोड़ी ही देर में यक्ष-प्रतिमा पर भयंकर विद्युत्पात हुआ। यक्ष की प्रतिमा के टुकड़े टुकड़े हो गये। यह दुर्घटना देख कर, उस भविष्यवक्ता की भविष्यवाणी सत्य हुई और उसकी भविष्यवाणी के फलस्वरूप राजा की रक्षा होसकी यह विचार, कर अंतःपुर एवं प्रधानों की ओर से उस भविष्यवक्ता पर स्वर्ण रत्न और वस्त्राभूषण आदि की वृष्टि हुई मैंने भी उस भविष्यवक्ता को पद्मिनीखण्ड नाम का नगर प्रदान किया और सम्मान सहित उसे विदा किया। यक्ष की जो मूर्ति विद्युत्पात से खण्ड खण्ड हो गई थी, उसके स्थान पर मैंने रत्न की मूर्ति बनवा दी।

यह वृत्तान्त सुनाकर महाराजा श्रीविजय, महाराजा अमिततेज से कहने लगे कि 'आप सर्वत्र जो उत्सव देख रहे हैं, वह मेरा अनिष्ट टल गया और मैं सकुशल बच गया, इस खुशी के कारण हो रहा है।' महाराजा श्रीविजय से यह वृत्तान्त सुनकर, महाराजा अमिततेज को भी बहुत प्रसन्नता हुई। महाराजा अमिततेज, अपनी बहन सुतारा से मिले। वस्त्राभूषण आदि से बहन का सत्कार करके महाराजा अमिततेज अपने स्थान को गये।

सत्यभामा के विरह से दुःखित कपिल ब्राह्मण, भव-भ्रमण करता हुआ, विद्याधरों की श्रेणी में, अश्विनीघोष नाम का राजा हुआ था। एक समय महारानी सुतारा सहित महाराजा श्रीविजय वन-क्रीडा करने गये। अश्विनीघोष विद्याधर ने, वन में सुतारा को देखा। पूर्व भवके स्नेह की प्रेरणा से अश्विनीघोष ने, प्रतारिणी विद्या की सहायता से, सुतारा का हरण कर लिया। महाराजा श्रीविजय और महाराजा अमिततेज ने, अश्विनीघोष से युद्ध किया और उसे परास्त भी कर दिया। श्रीविजय और अमिततेज अश्विनीघोष को अपना वन्दी वनाना चाहते थे, इसलिये इन्होंने महाज्वाला, विद्या को, अश्विनीघोष को पकड़ लाने की आज्ञादी।

महाज्वाला, अश्विनीघोष को पकड़ने के लिए दौड़ी। अश्विनीघोष भागा। वह वैताढ्य पर्वत छोड़ कर, भरतार्द्ध में

आया। भरतार्द्ध में, सीमान्तगिरि पर, अचल बलदेव मुनि को घातिक कर्म नष्ट हो जाने से केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। वहां देवता लोग, केवलज्ञान महोत्सव मना रहे थे। अश्विनीघोष भी, भागता हुआ उसी महोत्सव-स्थान पर बैठ गया, इससे महाज्वाला शक्ति वापस लौट गई। महाज्वाला शक्तिने, सब वृत्तान्त महाराजा अमिततेज को सुनाया। महाज्वाला शक्ति से, अचल मुनि को केवलज्ञान हुआ जानकर महाराजा अमिततेज और महाराजा श्रीविजय आदि, उन्हें वन्दन करने आये। वहां केवली, भगवान के उपदेश से, ये वैर-रहित हुए और अपने पूर्व भव का सब वृत्तान्त जानकर इन्होंने श्रावक व्रत स्वीकार किये। अश्विनीघोष विद्याधर ने तो भगवान के उपदेश से प्रभावित होकर संयम स्वीकार किया।

महाराजा अमिततेज और महाराजा श्रीविजय, दीर्घकाल तक श्रावक व्रत पालते रहे। एक बार ये दोनों, मेरु पर्वत के नन्दन वन में गये। वहां इन्हें विपुलमति और महामति नाम के दो मुनियों के दर्शन हुए। इन दोनों ने मुनि को वन्दन करके मुनि से अपना आयुष्य पूछा। ज्ञानी मुनियों ने उत्तर दिया कि तुम दोनों का आयुष्य केवल २६ दिन शेष है। यह सुनकर दोनों राजा दुःख करते हुए कहने लगे, कि हमने, निद्रालु, मूर्छित, मतवाले बालक और अरण्य में ऊगे हुए पुष्पवृक्ष की तरह अपना मनुष्य

जन्म निरर्थक खो दिया। हमने आत्म कल्याण का कोई उचित उपाय नहीं किया। दोनों राजा इस प्रकार खेद करने लगे। तबमुनि उनसे कहने लगे। कि इस प्रकार खेद करने से कोई लाभ न होगा, जितनी आयु शेष है उसमें तुमलोग आत्मा का कल्याण, व्रत स्वीकार करके भली प्रकार कर सकते हो। यह सुन कर दोनों ही राजा, अपनी-अपनी राजधानी में आये और अपना-अपना राज्य अपने-अपने पुत्र को सौंप कर, अमिततेज और श्रीविजय ने अभिनन्दन मुनि के पास चारित्र ग्रहण किया।

चारित्र लेकर दोनों ने पादोपगमन संथारा (अनशन) प्रारम्भ कर दिया। अनशन काल में, श्रीविजय को अपने पिता त्रिपृष्ठ वासुदेव की ऋद्धि का स्मरण हुआ, इस कारण श्रीविजय ने अपने तप के फल स्वरूप, वैसी ही ऋद्धि मिलने की इच्छा की। अमिततेज ने, ऐसी कोई इच्छा नहीं की। अन्त में दोनों ने समाधिपूर्वक शरीर त्याग किया और प्राणत कल्प में, सुस्थितावृत और नन्दितावृत विमानों के स्वामी मणिचूल और दिव्यचूल नाम के देव हुए। वहां दोनों ने वीस सागरोपम तक दिव्य-सुखों को भोगा।

इसी जम्बू द्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र को सुशोभित करने वाली रमणीय विजय में शुभा नाम की नगरी थी। वहां, स्तिमित सागर नाम के राजा राज्य करते थे। उनके अन्तःपुर में अप्स-

राओं को भी लज्जित करनेवाली वसुन्धरा और अनुद्धरा नामकी सुन्दरी रानियां थीं।

नन्दितावर्त विमान का आयुष्य भोग कर, अमिततेज का जीव महारानी वसुन्धरा के गर्भ में आया। शयन किये हुए महारानी वसुन्धरा ने, हस्ति, वृषभ, चन्द्र और पद्मसरोवर ये चार महास्वप्न देखे। महास्वप्न देख कर महारानी वसुन्धरा जाग उठीं। उन्होंने अपने स्वप्न पति को सुनाये। महाराजा स्तिमितसागर ने रानी वसुन्धरा को स्वप्न का यह फल बताया कि तुम्हारी कोख से बलभद्र पुत्र जन्म लेगा। गर्भकाल समाप्त होने पर महारानी वसुन्धरा ने, एक सुन्दर पुत्र प्रसव किया। महाराजा स्तिमित-सागर ने, पुत्र जन्म महोत्सव मना कर, बालक का नाम अपराजित दिया।

कुछ समय पश्चात, सुस्थितावृत विमान का आयुष्य भोग कर श्रीविजय का जीव, महारानी अनुद्धरा के गर्भ में आया। महारानी अनुद्धरा ने वासुदेव के जन्म-सूचक सात महास्वप्न देखे। अनुद्धरा के देखे हुए स्वप्नों को सुनकर, महाराजा स्तिमित-सागर ने अनुद्धरा महारानी से कहा, कि तुम वासुदेव पुत्र प्रसव करोगी।

समय पर महारानी अनुद्धरा ने, अनुपम पुत्र को जन्म दिया महाराजा स्तिमितसागर ने पुत्र जन्मोत्सव मना, कर बालक का नाम अनन्तवीर्य दिया।

अनन्तवीर्य, युवक हुए। संसार से उपरति होने के कारण, महाराजा स्तिमितसागर ने, अपराजित कुमार की सम्मति से राज्य का भार अनन्तवीर्य को सौंप दिया और स्वयं ने दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण किया। राज्य करते हुए महाराजा अनन्तवीर्य की मैत्री, एक विद्याधर से हो गई। उस विद्याधर ने महाराजा अनन्तवीर्य को एक महाविद्या बताई और उसका साधन करने की विधि भी बताई। महाविद्या तथा उसे साधने की विधि बता कर, विद्याधर चला गया।

अनन्तवीर्य के यहां, बर्बरी और किराती नाम की दो दासियां थीं। ये दोनों दासियां नाट्य-गान-कला में कुशल थीं। नारद द्वारा इन दासियों की प्रशंसा सुनकर, दमितारि प्रतिवासुदेव ने अनन्तवीर्य के यहां अपना दूत भेजकर दोनों दासियें भेजने के लिए आज्ञा की। वासुदेव अनन्तवीर्य ने दमितारी के दूत को तो यह कहकर विदा कर दिया, कि मैं विचार कर दोनों दासियों को भेज दूंगा, लेकिन हृदय में दमितारि के प्रति बहुत क्रोध हुआ वासुदेव अनन्तवीर्य, इस विषय में अपराजित बलदेव से गुप्तरूप से मन्त्रणा करने लगे। विचार करते हुए वासुदेव ने बलदेव से कहा, कि आकाशगमनादि विद्या सिद्ध कर लेने के कारण ही दमितारि अपने पर शासन करता है; अतः अपने को अपना विद्याधर मित्र जो विद्या दे गया है, अपन उसे क्यों न साधलें? दोनों भाई इस प्रकार विचार कर रहे थे, कि इतने ही में प्रज्ञप्ति आदि

विद्याएँ प्रकट होकर इन दोनों भाइयों से कहने लगीं, कि—हे महाभुज, तुम जिन्हें साधने का विचार कर रहे हो, वे विद्याएँ हम स्वयं ही आपके सन्मुख उपस्थित हैं। आपने, पूर्व भव में हमें साध रखा है, इस कारण अब पुनः सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। आप आज्ञा दीजिए, हम आपके शरीर में प्रवेश करें। यह सुनकर वासुदेव बलदेव ने उन विद्याओंकी गंध पुष्प आदि से उचित पूजा करके उनकी बात के उत्तर में एवमस्तु कहा! यह सुनकर वे विद्याएँ, तत्काल ही दोनों के शरीर में उसी प्रकार प्रवेश कर गईं जिस प्रकार नदियां समुद्र में प्रवेश करती हैं।

दमितारि का दूत, अनन्तवीर्य के पास फिर लौट कर आया। वह, अनन्तवीर्य से कहने लगा कि आप लोग स्वामी की आज्ञा की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं। दासियों के बदले में आप दोनों अपने पर क्यों आपत्ति बुला रहे हो! दूत की बात सुन कर, अनन्तवीर्य को बहुत क्रोध हुआ, लेकिन क्रोध को हृदय में ही दबा कर अनन्तवीर्य ने दूत से कहा कि—दमितारि बड़ी-बड़ी बहुमूल्य भेंट के योग्य है, फिर भी यदि वह दासियों से ही सन्तुष्ट होता है, तो हमें कोई आपत्ति नहीं, तुम दासियों को ले जा सकते हो। दूत से ऐसा कह कर, दोनों भाइयों ने आपस में विचार किया, कि दमितारि कैसा है, यह देखना चाहिए। इस

प्रकार विचार कर दोनों भाई, विद्या की सहायता से दासियों का रूप बनाकर, दूत के पास गये और उससे कहने लगे कि अनन्तवीर्य महाराज ने हमें आपके पास दमितारि के पास ले जाने के लिए भेजी है। दूत, बहुत प्रसन्न हुआ और दोनों को लेकर दमितारि के पास आया। उसने, दमितारि से कहा कि आपकी आज्ञानुसार, दोनों दासियां हाजिर हैं।

दमितारि ने, दासी-वेश धारी अनन्तवीर्य और अपराजित को, नाट्यगान करने की आज्ञा दी। दोनों भाई, समस्त कलाओं में कुशल ही थे। दोनों ने, नाट्यगान-कला का खूब प्रदर्शन किया। दमितारि ने प्रसन्न होकर दोनों कृत्रिम दासियों को अपनी बड़ी पुत्री कनकश्री के पास-उसे नाट्यगानकला सिखाने के लिये भेज दी।

दासी वेशधारी अपराजित और अनन्तवीर्य ने, थोड़े ही समय में, कनकश्री को नाट्यगानकला सिखा दी। शिक्षा देते समय अपराजित, वारंवर अनन्तवीर्य के रूप गुण और शौर्य की प्रशंसा करते थे। एक दिन, कनकश्री ने दासीवेशधारी अपराजित से पूछा, कि तुम वारम्बार जिसका गुणगान किया करती हो, यह पुरुष कौन है? छद्मवेषधारी अपराजित ने कनकश्री को अनन्तवीर्य का प्रशंसापूर्ण परिचय सुनाया। अनन्तवीर्य की प्रशंसा सुनकर, कनकश्री के हृदय में, अनन्तवीर्य का दर्शन करने

की बहुत उत्कण्ठा हुई। वह विचारने लगी कि ऐसे महापुरुष का दर्शन मुझे किस प्रकार हो सकेगा ! आकृति द्वारा कनकश्री के मनके भावों को जानकर, अपराजित कनकश्री से कहने लगे–राजकुमारी, अनन्तवीर्य का परिचय सुनकर, कुछ पीड़ित–सी जान पड़ती हो, अतः क्या तुम महाभुज अनन्तवीर्य को देखना चाहती हो ? यह सुनकर, दीनता दिखाती हुई कनकश्री ने कहा कि यद्यपि मेरी इच्छा तो यही है, लेकिन मेरी यह इच्छा चंद्र को हाथ से पकड़ने के समान असम्भव-सी दिखाई देती है। दासी रूपधारी अपराजित ने कहा कि—यदि तुम अनन्तवीर्य को देखने के लिये इतनी उत्कण्ठित हो, तो मैं अनंतवीर्य को यहां तुम्हारे सामने ला दूंगी। यह सुनकर कनकश्री कहने लगी कि—क्या तुमसे ऐसा होना सम्भव है ? यदि हां, तो कृपा करके अभी ही उनके दर्शन कराइये। मुझे अपना भाग्य प्रबल जान पड़ता है, इससे तुम्हारी सहायता का संयोग मिला है। इस प्रकार की बात हो ही रही थी कि अनन्तवीर्य ने अपना छद्मवेश त्याग दिया और वास्तविक रूप धारण कर लिया। तब अपराजित ने भी अपना कपटरूप त्याग अनन्तवीर्य की ओर संकेत करके कनकश्री से कहा—सुभगे, मैं जिनकी प्रशंसा करता था, वे मेरे छोटे भाई अनन्तवीर्य यही हैं। मैंने इनके जितने गुण कहे थे, ये उनसे अधिक गुण वाले हैं, यह बात तू इनको देखकर सहज ही जान सकती है।

अनन्तवीर्य को देखकर, कनकश्री बहुत ही विस्मित, लज्जित एवं आनन्दित हुई। अपराजित को अपने श्वसुर तुल्य मान कनकश्री, उत्तरीय वस्त्र द्वारा लज्जा करके खड़ी रही। कुछ देर पश्चात मान और लज्जा को त्याग कनकश्री, अनन्तवीर्य से प्रार्थना करने लगी, कि सहसा आपका दर्शन मेरे लिए असम्भव था, परन्तु भाग्य की अनुकूलता से सम्भव हो गया। अब आप जिस प्रकार मेरे नाट्याचार्य बने थे, उसी प्रकार पति बनकर मुझे अपनी शरण में स्थान दीजिये; अर्थात् मेरा पाणिग्रहण कीजिये। कनकश्री की प्रार्थना के उत्तर में, अनन्तवीर्य ने कहा कि—हे मुग्धे, यदि तेरी इच्छा यही है, तो मेरी नगरी को चल। कनकश्री कहने लगी—नाथ, यद्यपि मेरे प्राणों पर आप ही का राज्य है, मैं तो आपकी दासी हूँ, और आपकी आज्ञा मानना मेरा कर्त्तव्य है, परन्तु मेरा पिता विद्या के बल से दुर्मद बना हुआ है और दुष्ट स्वभाव वाला है, अतः सम्भव है कि वह आपके लिए कोई अनर्थ कर डाले, मुझे यही भय है। [illegible] आप बलवान हैं, लेकिन इस समय अकेले एवं [illegible] हैं। वासुदेव ने उत्तर दिया—हे कातरे! तुम्हें [illegible] के भय से भीत होने की आवश्यकता नहीं है [illegible] पिता, मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। [illegible] साथ चलो।

अनन्तवीर्य की आज्ञा मानकर, कनकश्री उनके साथ हो ली। तब अनन्तवीर्य ने ऊँचे हाथ करके उच्चस्वर में इस प्रकार घोषणा की, कि—हे पुराध्यक्ष, सेनापति, राजकुमारों, मन्त्रियों, सामन्तों और सुभटों ! अपराजित भ्राता से सुशोभित मैं अनन्तवीर्य, राजा दमितारि की पुत्री कनकश्री को अपने घर लिये जाता हूँ । मेरे जाने के पश्चात तुम लोग अपवाद न बोलो इसलिये वार-वार घोषणा करता हूँ। तुम लोगों की इच्छा हो तो मेरे सामने आओ और मेरी भुजा का वल देखो ! इस प्रकार पुनः पुनः घोषणा करके अनन्तवीर्य वासुदेव, अपने भ्राता अपराजित एवं अपनी पत्नी कनकश्री सहित वैक्रिय विमान में बैठ, आकाश मार्ग से चले। अनन्तवीर्य की घोषणा सुन एवं कनकश्री सहित उन्हें जाते देख, दमितारि बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने अपने सुभटों को, कनकश्री सहित अनन्तवीर्य को पकड़ लाने की आज्ञा दी, परन्तु आकाश मार्ग से जाते हुए अनन्तवीर्य का सुभट क्या कर सकते थे। अन्त में दमितारि स्वयं अनन्तवीर्य से युद्ध करने के लिए गया। निःशस्त्र वासुदेव और वलदेव को देवताओं ने अस्त्र-शस्त्र दिये। दमितारि से वासुदेव वलदेव का घोर युद्ध हुआ। परिणामतः वासुदेव ने सुदर्शनचक्र द्वारा दमितारि को मार डाला। दमितारि को मरा जान, देवताओं ने, वासुदेव वलदेव पर पुष्पवृष्टि की और यह घोषणा की, कि ये महाबाहु अनन्तवीर्य, इस

विजयार्द्ध के वासुदेव हैं, अतः समस्त राजा एवं सामन्त इनकी शरण ग्रहण करो। दिव्य घोषणा को मानकर, समस्त राजा, सामन्तों ने अनन्तवीर्य के आगे अपना मस्तक झुकाया और अनन्तवीर्य की शरण ली।

सब विद्याधरों एवं राजाओं सहित अनन्तवीर्य, भ्राता तथा पत्नी को लिए हुए विमान द्वारा चले। कनकगिरि (मेरु) के समीप जब विमान आया, तब विद्याधरों के कहने से अनन्तवीर्य, अपने साथ के लोगों सहित पर्वत पर उतर पड़े और पर्वत की शोभा देखने लगे। उस समय वहां पर कीर्तिधर मुनि के घातिक कर्म क्षय हुए थे, और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था; इसलिये देवता लोग केवलज्ञान-महोत्सव मनाने के लिये आये। अनन्तवीर्य वासुदेव को यह जानकर बहुत हर्ष हुआ। वे, सब साथियों सहित केवली भगवान को वन्दना करने आये। वंदन एवं वाणी श्रवण के पश्चात कनकश्री ने, अपने मृत पिता बन्धु आदि के सम्बन्ध में केवली भगवान से प्रश्न किया। भगवान ने, उनके पूर्व भव का सब वृत्तान्त वर्णन किया, जिसे सुनकर कनकश्री को संसार से वैराग्य हो गया। कनकश्री ने अपने पति एवं जेठ से आत्मकल्याण के लिये आज्ञा मांगी। वासुदेव बलदेव ने विस्मय भरे नेत्रों से कनकश्री की ओर देख, कनकश्री से कहा कि तुम्हारा कार्य निर्विघ्न हो, यही हमारी शुभकामना है, परन्तु

हमारी इच्छा है कि तुम शुभानगरी चलो। यहां जब भगवान पधारें तब इनके समीप दीक्षा लेना। कनकश्री ने, यह स्वीकार किया और अपने पति आदि के साथ शुभानगरी आई।

शुभानगरी पहुँच कर, राजाओं तथा विद्याधरों ने अनन्त-वीर्य को अर्द्धचक्री पद का अभिषेक किया। कालांतर से वहां केवली भगवान कीर्तिधर भी पधार गये। वासुदेव बलदेव उन्हें वंदन करने गये। कनकश्री ने पति आदि से आज्ञा प्राप्त करके भगवान के पास से संयम स्वीकार किया। अनेक प्रकार के तप द्वारा कर्मों का नाश कर, कनकश्री सिद्ध गति को प्राप्त हुई।

सम्यक्त्वधारी वासुदेव बलदेव, राज्य का उपभोग करने लगे। चौरासी लाख पूर्व का आयुष्य भोग कर, अनन्तवीर्य वासुदेव, प्रथम नरक में गये। स्तिमित सागर राजा, चमरेंद्र हुए थे। उन्होंने, अनन्तवीर्य वासुदेव को मिलने वाली वेदना शांत करने में प्रयत्न किया।

अनन्तवीर्य वासुदेव के शोक से वैराग्यवंत होकर अपरा-जित बलदेव ने, अपने पुत्र को राज्य देकर राज-परिवार के सोलह हजार पुरुषों सहित दीक्षा ले ली। परिषह सहन एवं तप के द्वारा आत्मा को पवित्र बना, अपराजित ने अनशन कर लिया और बारहवें कल्प में अच्युतेंद्र हुए।

नरक से निकल कर, अनन्तवीर्य का जीव वैताढ्य पर्वत पर, मेघनाद नामक विद्याधरों का ऋद्धिमान राजा हुआ। एक समय, मेघनाद, वैताढ्य पर्वत पर आये। वहां, मुनि के दर्शन करने को अच्युतेन्द्र भी पधारे थे। अच्युतेन्द्र ने, मेघनाद को प्रतिबोध दिया, जिससे मेघनाद ने दीक्षा ग्रहण की और दीर्घ-काल तक तप करने के पश्चात अनशन द्वारा शरीर त्याग, बारहवें कल्प में सामानिक इन्द्र पद प्राप्त किया।

इसी जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह में सीता महानदी के तट पर मंगलावती विजय है। वहां, रत्नसंचया नाम की नगरी थी। और क्षेमंकर नाम के राजा राज्य करते थे, जिनकी रानी का नाम रत्नमाला था।

अपराजित बलदेव का जीव, बारहवें देवलोक से अच्युतेन्द्र का आयुष्य भोग कर, रत्नमाला के गर्भ में आया। रत्नमाला ने, रात्रि के शेष भाग में, चौदह महास्वप्न देखे और पन्द्रहवां स्वप्न, वज्र का देखा। रत्नमाला जागृत हुई। उन्होंने, सब स्वप्न अपने पति को सुनाये। महाराजा क्षेमंकर ने कहा कि स्वप्नों के फल को देखते हुए, तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र होगा।

गर्भकाल की समाप्ति पर, महारानी रत्नमाला ने, उत्तम पुत्रको जन्म दिया। पुत्र जन्मोत्सव मनाकर महाराजा क्षेमंकर ने बालक का नाम वज्रायुध रखा। बालवय समाप्त करके जब वज्रा-

युध युवक हुए, तब उनका विवाह, लक्ष्मीवती नाम की कन्या से हुआ। कुछ काल पश्चात. अच्युत देवलोक का आयुष्य समाप्त करके अनन्तवीर्य का जीव, लक्ष्मीवती के गर्भ में आया और समय पर, पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। वज्रायुध के इस बालक का नाम सहस्रायुध रखा गया।

एक वार क्षेमंकर राजा,अपने पुत्र, पौत्र और मन्त्री सामन्त सहित सभा में बैठे थे। उस समय, ईशान्य कल्प में देव-सभा स्थित ईशानेन्द्र ने कहा, कि पृथ्वी पर, वज्रायुध जैसा दृढ़ सम्यक्त्वधारी कोई भी नहीं है। वहां उपस्थित चित्रचूल देव को, ईशानेन्द्र की बात पर विश्वास नहीं हुआ। मिथ्यात्व की प्रेरणा से वह, महाराजा क्षेमंकर की सभा में आया और कहने लगा, कि संसार में पुण्य, पाप, स्वर्ग-नर्क, लोक, परलोक आदि कुछ भी नहीं है। लोग, आस्तिकता की बुद्धि रखकर, अनावश्यक कष्ट पाते हैं देव की बात सुनकर, वज्रायुध ने उस से कहा, कि—हे देव, तुम प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध ऐसा क्यों कह रहे हो ! तुम अपने ज्ञान द्वारा अपना पूर्व-भव ही क्यों नहीं देखते ! यदि पुण्य का फल न होता, तो तुम मनुष्य से देव कैसे होते ! इसलिए लोक, परलोक और पुण्य, पाप आदि सब कुछ हैं। इस प्रकार युक्ति द्वारा वज्रायुध ने, उस देव को प्रतिबोध दिया। देव, प्रसन्न होकर कहने लगा, कि—जिनके पिता

तीर्थंकर हैं, उनकी बुद्धि का क्या कहना है ! अब कृपा करके मुझे सम्यक्त्व दीजिये तथा बदले में मुझसे कुछ मांगिये। वज्रा-युध ने,उसे समकित दी और उससे यही मांगा कि तुम समकित पर दृढ़ रहना। देव ने कहा कि ऐसा करने में तो मुझे ही लाभ है, इसलिए कुछ और मांगो। वज्रायुध ने कहा कि बस जो मांगना था, वह मांग लिया। तब चित्रचूल देव बहुत प्रसन्न हुआ और वज्रायुध को अनेक दिव्य अलंकार देकर, अपने स्थान को गया। चित्रचूल देव ने, वापस जाकर ईशानेन्द्र से प्रार्थना की, कि वज्रायुध वास्तव में वैसे ही हैं, जैसा कि आपने उनकी प्रशंसा करते हुए बताया था। तब ईशानेन्द्र यह कह कर वज्रायुध की प्रशंसा करने लगे, कि इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में वे पांचवें चक्रवर्ती और सोलहवें तीर्थंकर होंगे।

लोकान्तिक देवों की प्रार्थना पर, महाराजा क्षेमंकर ने वज्रायुध को राज्य सौंपकर संयम स्वीकार कर लिया। विविध प्रकार के अभिग्रह एवं दुस्तर तप करने से, क्षेमंकर स्वामी के घनघातिक कर्मक्षय हो गये और उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। तब इन्द्र देव और महाराजा वज्रायुध ने, केवलज्ञान की महिमा की तथा भगवान की वाणी श्रवण करके अपने स्थान को लौट आये।

महाराजा वज्रायुध को अस्त्र-शाला के अधिकारी ने यह बधाई दी कि अस्त्र-शाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ है। वज्रायुध

ने, विधिपूर्वक चक्ररत्न की पूजा की। इसी प्रकार अन्य तेरह रत्न भी प्रकट हुए। चक्र के पीछे चल कर महाराजा वज्रायुध ने, समस्त राजाओं पर विजय प्राप्त की और छहों खण्ड साध उस विजय के चक्रवर्ती हुए।

एक समय, चक्रवर्ती वज्रायुध सभा में वैठे थे। उस समय एक विद्याधर भागता हुआ आया और उसने चक्री की शरण ग्रहण की। उस शरणागत विद्याधर के पीछे ही एक विद्याधरी और एक विद्याधर भी आया। ये दोनों, चक्रवर्ती वज्रायुध से कहने लगे, कि आप इस दुष्टात्मा को छोड़ दीजिये, हम दोनों इसका वध करने आये हैं। महाराज वज्रायुध, त्रिकालदर्शी एवं अवधिज्ञानी थे, इसलिए उन्होंने उन तीनों को पूर्व भव एवं भावी भाव का समस्त वृत्तान्त सुनाकर, निर्वैर होने का उपदेश दिया, जिससे वे तीनों निर्वैर हुए। पश्चात वे हाथ जोड़ कर, कहने लगे कि यदि आपके ये वचन हमें सुनेन को न मिलते तो हम नरक में ही स्थान पाते। अब हम भगवान क्षेमंकर की शरण में जाना चाहते हैं, अतः आप हमें आज्ञा दीजिये। चक्री ने, उन्हें आज्ञा दी, और उन्होंने, क्षेमंकर भगवान से संयम स्वीकार करके आत्मकल्याण किया।

कुछ काल पश्चात श्री क्षेमंकर भगवान, रत्नसंचयानगरी में पधारे। चक्रवर्ती, भगवान को वंदना करने गये। भगवान का

उपदेश श्रवण करके चक्रवर्ती ने भगवान से यह प्रार्थना की कि–हे प्रभो, मैं कुमार सस्रायुध को राज्य सौंप कर पुनः आपकी सेवा में उपस्थित होऊं, तब तक आप यहीं विराजे रहने की कृपा करिये। भगवान से यह प्रार्थना करके, वज्रायुध चक्रवर्ती नगरी में आये। वहां, उन्होंने, सहस्रायुध को राज्याभिषेक किया। पश्चात भगवान की सेवा में उपस्थित होकर चार हजार राजाओं, चार हजार अपनी रानियों और सात सौ अपने पुत्रों सहित वज्रायुध चक्रवर्ती ने संयम स्वीकार किया।

वज्रायुध मुनि, अनेक प्रकार के तप करते हुए, सिद्ध पर्वत पर आये। वहां वे, वार्षिकी-प्रतिमा धारण करके रहे। उस समय अश्वग्रीव राजा के दो पुत्र-जो भव भ्रमण करते हुए असुर-कुमार देव हुए थे, वे-उधर आ निकले। वज्रायुध मुनि को देख कर, उन्हें वज्रायुध मुनि के प्रति अमिततेज के भव का वैर हो आया है। जिससे वे, उपद्रव करने लगे और अनेक प्रकार के रूप बना-बनाकर वज्रायुध मुनि को उपसर्ग देने लगे। इतने ही में, रम्भा तिलोत्तमा आदि इन्द्र की अप्सरायें, अर्हन्त प्रभु को वन्दन करने के लिए जाती हुई उधर से निकलीं। देवों द्वारा वज्रायुद्ध मुनि को उपसर्ग होता देख कर, उन्होंने उन देवों से कहा, कि—अरे पापात्माओं! तुम यह क्या दुष्कर्म कर रहे हो! अप्सराओं के ऐसा कहते ही, वे देव भाग गये अप्सराएँ, आगे गईं और

वज्रायुध मुनि, प्रतिमा पाल कर जन पद में विचरने लगे।

महाराजा सहस्रायुध, राज्य कर रहे थे। पुण्य-योग से उनके नगर में, पिहिताश्रव गणधर पधारे। गणधर महाराज की वाणी श्रवण करने से, सहस्रायुध को भी संसार से विरक्ति हो गई। उन्होंने, संयम स्वीकार कर लिया और जनपद में विचरने लगे। योगायोग से वज्रायुध और सहस्रायुध दोनों मुनि, एक स्थान पर मिल गये। दोनों मुनि, साथ ही विचरने लगे। अन्त में इषत्प्राग्भार पर्वत पर दोनों मुनियों ने अनशन कर लिया और शरीर त्याग, तीसरे ग्रैवेयक में, पच्चीस सागर की आयुवाले महर्द्धिक देव हो, अनुपम सुख का अनुभव करने लगे।

इसी जम्बू द्वीप के पूर्व महाविदेह में, पुष्कलावती विजय के अन्तर्गत, पुण्डरीकिणी नाम की एक नगरी थी। वहां घनरथ नाम के महाराजा राज्य करते थे। महाराजा घनरथ के प्रियमति और मनोरमा नाम की दो रानियां थीं। तीसरे ग्रैवेयक की आयु समाप्त कर के वज्रायुध का जीव, महारानी प्रियमति के उदर में आया, तब महारानी ने स्वप्न में, गर्जते बरसते मेघ के साथ विद्युत प्रकाश देखा। महारानी ने प्रियमति ने, अपना स्वप्न महाराजा घनरथ को सुनाया। उन्होंने स्वप्न सुनकर कहा, कि तुम्हारे गर्भ से, मेघ की तरह पृथ्वी का संताप हरने वाला पुत्र होगा।

महारानी प्रियमति की ही तरह महारानी मनोरमा ने भी,

ध्वजापताका सहित रत्न की घूँघरियोंवाला रथ, स्वप्न में देखा। महारानी मनोरमा के गर्भ में, सहस्रायुध का जीव, तीसरे ग्रैवेयक का आयुष्य समाप्त करके आया था।

समय पाकर दोनों रानियों ने, एक-एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। महाराजा ने, पुत्र-जन्मोत्सव मनाकर, दोनों का क्रमशः मेघरथ और दृढ़रथ नाम दिया। दोनों पुत्र बड़े हुए, तब अनेक राजकन्याओं के काथ दोनों का विवाह हुआ।

एक समय महाराजा घनरथ-जो भावी तीर्थंकर थे—पुत्र-पौत्रादि परिवार सहित महल मे बैठे थे। उसी समय वहाँ पर सुसेना नास की गणिका, अपने हाथ में एक मुर्गा लेकर आई और कहने लगी कि-मेरा कुक्कुट अपनी जाति में मुकुट रत्न के समान ऊंचा है। इसे कोई दूसरा कुक्कुट नहीं जीत सकता। यदि इस मेरे मुर्गे को कोई दूसरा मुर्गा जीत ले, तो मैं एक लक्ष स्वर्ण-मुद्रा दूँगी। यह सुनकर महारानी मनोरमा ने गणिका से कहा, कि तुम्हारे मुर्गे के साथ मैं अपना मुर्गा लड़ाती हूँ। महारानी मनोरमा ने, गणिका के मुर्गे से लड़ने के लिए अपना मुर्गा छोड़ा। दोनों मुर्गों का युद्ध होने लगा, लेकिन न तो कोई कुक्कुट जीतता था, न कोई हारता ही था। तब महाराजा घनरथ ने कहा, कि इन दोनों में से कोई भी कुक्कुट जीते हारेगा नहीं। कुमार मेघरथ ने महाराजा घनरथ से इसका कारण पूछा। त्रिकालदर्शी

महाराजा घनरथ ने दोनों मुर्गों की पूर्व भव की बात सुना कर कहा कि ये दोनों कुक्कुट समान बलवाले हैं, इसलिए कोई किसी से न हारेगा। यह सुन कर कुमार मेघरथ ने कहा, कि समान पराक्रमी होने के साथ ही ये दोनों कुक्कुट विद्याधरों से अधिष्ठित हैं। महाराजा घनरथ की प्रेरणा से अवधिज्ञानी कुमार मेघरथ ने विद्याधरों का पूर्ववृत्तान्त सुनाकर कहा कि इनमें के दोहों विद्याधर, अपने पूर्व भव के पिता—जो इस समय महाराजा घनरथ हैं—का दर्शन करने आये हैं और कौतूहल वश, इन कुक्कुटों के शरीर में प्रवेश करके युध दिखाया है। कुमार मेघ-रथ का कथन सुनकर, दोनों विद्याधर प्रकट हुए और महाराजा घनरथ को प्रणाम करके अपने स्थान को गये।

दोनों कुक्कुटों ने भी यह सब वृत्तान्त देखा सुना। परिणामों को विशुद्धि से, दोनों कुक्कुटों को जातिस्मृति ज्ञान हुआ। वे, घनरथ महाराजा को प्रणाम करके पश्चाताप करते हुए कहने लगे—हे प्रभो, हम आत्म कल्याण कैसे करें, यह कृपा करके बताइये! महाराजा घनरथ ने सम्यक्त्व का स्वरूप समझा कर दोनों को समकित दी। समकित पाते ही, दोनों कुक्कुटों ने अन-शन करके शरीर त्याग किया, और भूतरत्न नाम की बड़ी अटवी में, ताम्रचूल नाम के महर्द्धिक देव हुए। अवधिज्ञान द्वारा अपना पूर्व भव जानकर दोनों ही देव, अपने पूर्व भव के उपकारी मेघ-

रथ की सेवा में उपस्थित हुए और मेघरथ से प्रार्थना करने लगे, कि हम संसार की अनेक योनियों में भ्रमण करते थे, परंतु आप की कृपा से हम इस उत्तम देवयोनि को प्राप्त कर सके हैं। अब आप हमपर प्रसन्न होइये और यद्यपि आप सब कुछ जानते हैं, फिर भी आप हमारे विमान में बैठकर मनुष्य लोकका अवलोकन कीजिये।

उभयदेवों की प्रार्थना स्वीकार करके सपरिवार कुमार मेघरथ विमान में सवार हुए। विमान में बैठकर कुमार मेघरथ ने अपने परिवार सहित मनुष्य लोक (ढाई द्वीप) की प्रदक्षिणा की और फिर अपनी नगरी को लौट आये।

लोकान्तिक देवों की प्रार्थना से महाराजा घनरथ ने राज-पाट कुमार मेघरथ को सौंप दिया तथा कुमार दृढ़रथ को उनका युवराज बना दिया और आप दीक्षा लेने के लिये वार्षिकदान देने लगे। वर्ष की समाप्ति पर महाराजा घनरथ ने संयम स्वीकार कर लिया तथा कर्म खपा कर चार तीर्थ प्रवर्तके मोक्ष प्राप्त किया।

महाराजा मेघरथ, राज्य करने लगे। एक दिन वे राजसभा में बैठे थे, इतने ही में एक भय कम्पित कबूतर, महाराजा मेघरथ की गोद में आ पड़ा और करुणस्वर में त्राहि-त्राहि पुकारने लगा। महाराजा मेघरथ ने, आश्वासन देकर कबूतर को निर्भय किया। कबूतर निर्भय होकर महाराजा मेघरथ की गोद में बैठा था,

इतने ही में एक वाज आया और वह कहने लगा, कि—हे महा-राजा यह मेरा भक्ष्य है, अतः आप इस कबूतरको छोड़ दीजिये महाराजा मेघरथ ने वाज को उत्तर दिया, कि क्षात्रधर्म के विरुद्ध मैं, शरणागत पक्षी, तुझे नहीं दे सकता, और तुझे भी मैं यही समझता हूँ, कि दूसरे के प्राणनाश द्वारा, अपने प्राणों का पोषण करना कदापि उचित नहीं है। तू अपने-से प्राण सब के समझ। इसके सिवा पंचेन्द्रिय का वध, नरक का कारण है, इसलिये प्राण वध त्याग दे। बाज कहने लगा—महाराज, जिस प्रकार यह कपोत मेरे भय से आपकी शरण आया है, उसी प्रकार मैं भी क्षुधा के कष्ट से पीड़ा पाकर आपकी शरण आया हूँ। करुणा-वान पुरुष सभी पर करुणा करते हैं, अतः जिस प्रकार आप इस पारावत की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार मेरी रक्षा कीजिये और मेरा भक्ष्य मुझे दीजिये। मैं, मांस भोजी प्राणी हूँ और ताजा मांस ही खाता हूँ। मैं क्षुधा से पीड़ित हूँ, अतः आप कबूतर छोड़ दीजिये।

महाराजा मेघरथ ने, बाज को अनेक तरह से समझाया परन्तु उसने क्षुधा-पीड़ा के नाम पर, एक भी बात स्वीकार नहीं की। तब मेघरथ ने उससे कहा कि तू कुछ भी कह, शरणागत को शत्रु के हवाले कर देना, क्षात्र धर्म के विरुद्ध है, अतः मैं क्षत्रिय ऐसा कदापि नहीं कर सकता। यह सुन, वाज ने कहा,

कि यदि आप इस कबूतर को नहीं दे सकते, तो कृपया इसके बराबर अपने शरीर का मांस ही दीजिये। महाराजा मेघरथ ने, बाज की यह बात स्वीकार करली। उन्होंने, तराजू मंगवाई। महाराजा मेघरथ ने, तराजू के एक पलड़े में कबूतर को बैठाया और दूसरे पलड़े में शस्त्र द्वारा अपने शरीर का मांस काट-काट कर धरने लगे। देव माया से कबूतर का बोझ बढ़ता ही गया। मेघरथ भी उदारता-पूर्वक अपने शरीर का मांस काट-काट कर पलड़े में रखते गये, परन्तु कबूतर वाला पलड़ा नीचा हो रहा, बराबर न हुआ। तब धीरवीर और दयासागर महाराजा मेघरथ ने, अपना सारा शरीर ही पलड़े में रख दिया। यह देख कर रानियाँ मंत्री आदि हाहाकार करके मेघरथ से कहने लगे, कि आप यह क्या कर रहे हैं। एक तुच्छ पक्षी की रक्षा के लिये अपना शरीर क्यों दे रहे हैं? यह पारावत, पक्षी नहीं किन्तु कोई माया है। पक्षी में इतना भार हो ही नहीं सकता। लोगों के बहुत कुछ कहने पर भी, मेघरथ, किंचित भी विचलित नहीं हुए, किन्तु यही विचारते रहे कि इस नाशवान शरीर द्वारा एक प्राणी की रक्षा हो रही है, यह तो बड़े हर्ष की बात है। उसी समय वहां एक देव प्रकट हुआ और महाराजा मेघरथ के चरणों में गिरकर क्षमा-प्रार्थना करके कहने लगा, कि ईशानेन्द्र महाराज ने देव सभा में आपकी प्रशंसा की थी, परन्तु मुझे उस पर विश्वास नहीं हुआ। इस-

लिये मैं, आपकी परीक्षा करने आया। मार्ग में, मैंने इन पक्षियों को देखा और इनके शरीर में प्रवेश करके यह सब किया। अब मुझे मालूम हो गया कि ईशानेन्द्र ने आपकी जो प्रशंसा की थी, आप उससे भी अधिक दयालु, क्षात्र-धर्म का पालन करने वाले और धीरवीर हैं। इस प्रकार महाराजा मेघरथ की प्रशंसा एवं उनसे क्षमा-प्रार्थना करके वह देव, स्वर्ग में गया।

देव के जाने के पश्चात मेघरथ से उनके मन्त्री आदि पूछने लगे कि—हे भगवन, ये दोनों पक्षी पूर्व भव में कौन थे और इनमें वैर कैसे हुआ! तथा यह देव कौन था? अवधिज्ञान की सहायता से महाराजा मेघरथ कहने लगे, कि—इसी जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में, एक श्रेष्ठि के दो पुत्र थे। दोनों पुत्र, व्यापारार्थ विदेश गये। एक अमूल्य रत्न के लिये, दोनों भाई आपस में लड़े। उस लड़ाई में दोनों ही की मृत्यु हो गई और इस भव में दोनों बाज कबूतर हुए। पूर्व-भव के वैर से ये दोनों इस भव में भी वैर रख रहे हैं। पक्षियों का पूर्व-भव सुना कर महाराजा मेघरथ उस देव का पूर्व-भव बताने लगे। वे कहने लगे कि यह देव इसी जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र की रमणीय विजय मे दमितारि नाम का प्रति वासुदेव था और मैं शुभानगरी में, अपराजित बलदेव था तथा भाई दृढ़रथ, अनन्तवीर्य वासुदेव था। कनकश्री नाम की दमितारि की कन्या के लिए, हम दोनों

से दमतारि का युद्ध हुआ था और हमने, दमतारि को मारडाला था। दमतारि, भव-भ्रमण करता हुआ एक तापस हुआ था। वहां, कष्ट सहन किये, इससे यह देव हुआ। पूर्व-भव के इसी वैर के कारण, इसे ईशानेन्द्र द्वारा की गई मेरी प्रशंसा, असह्य हुई थी।

अपने पूर्व भव की कथा सुनकर बाज और कपोत को जातिस्मृति ज्ञान हुआ। वे, मेघरथ से कहने लगे—हे महाराज लोभवश हम मनुष्य भव तो हारे ही थे, लेकिन इस भव में भी हम नरक जाने की ही सामग्री कर रहे थे। आप ही ने हमें नरक से बचाया है। अब हमें हमारे कल्याण का मार्ग बताइये। महाराजा मेघरथ ने, अवधिज्ञान द्वारा अवसर जानकर, दोनों को अनशन करने की आज्ञा दी। अनशन द्वारा शरीर त्याग, दोनों पक्षी, देव भव को प्राप्त हुए।

एक समय महाराजा मेघरथ, अष्टम तप करके पोपधशाला में कायोत्सर्ग किये बैठे थे। उसी समय, अपने अन्तःपुर में बैठे हुए ईशानेन्द्र महाराज ने, 'नमो भगवते तुभ्यं,' कह कर नमस्कार किया। यह देखकर इन्द्रानियों ने ईशानेन्द्र से पूछा—महाराज, आप समस्त जगत के वन्दय हैं, फिर आपने अतिभक्ति से किसको नमन किया? ईशानेन्द्र महाराज ने उत्तर दिया—हे देवियों जम्बूद्वीप की पुष्कलावती विजय के अन्तर्गत पुण्डरी-

किणी नगरी में, घनरथ तीर्थंकर के पुत्र महाराजा मेघरथ, अष्टम तप पूर्वक, महाप्रतिमा ध्यान धारण करके बैठे हैं। ये महाराजा भविष्य में इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सोलहवें तीर्थंकर होंगे, इससे मैंने उन्हें नमस्कार किया है। महाराजा मेघरथ को ध्यान से चलायमान करने में, इन्द्रसह सुरासुर का समूह भी समर्थ नहीं है।

ईशानेन्द्र महाराजा द्वारा की गई महाराजा मेघरथ की प्रशंसा सुरूपा और अतिरूपा नामकी इन्द्रानियों को सहन नहीं हुई। ये दोनों, मनुष्यलोक में आईं। राजा मेघरथ को ध्यान से डिगाने के लिये दोनों इन्द्रानियां, महाराज मेघरथ के सामने हाव भाव दिखाने लगीं और इस तरह रात भर चेष्टा करती रही परन्तु जिस प्रकार वज्र पर किया गया प्रहार व्यर्थ होता है, उसी प्रकार इन्द्रानियों, की भी सब चेष्टा व्यर्थ हुई। सवेरा होने पर, निराश हो इन्द्रानियां, अपनी माया समेट कर, और बार-बार महाराजा मेघरथ से क्षमायाचना करके, अपने स्थान को गईं।

महाराजा मेघरथ ने, प्रतिमा तथा पौषध पालकर पारणा किया, परन्तु रात की घटना से उन्हें संसार से विरक्ति हो गई। पति को संसार से विरक्त देख कर महारानी प्रियमित्रा को भी संसार से वैराग्य हो गया। पुण्ययोग से, भगवान घनरथ तीर्थं-

कर पुण्डरीकिणी नगरी में पधारे। महाराजा मेघरथ उन्हें वंदन करने गये। भगवान की वाणी सुन कर महाराजा मेघरथ ने भगवान से प्रार्थना की, कि—हे प्रभो, कृपा करके आप यहीं विराजे रहिये, मैं राज्य का प्रबन्ध करके आपके समीप दीक्षा लेने के लिये उपस्थित होता हूं। भगवान से यह प्रार्थना करके महाराजा मेघरथ, नगरी में वापस आये और अपने भाई दृढ़रथ युवराज को राज-भार सौंपने लगे। दृढ़रथ युवराज ने, हाथ जोड़ कर महाराजा मेघरथ से प्रार्थना की, कि—हे पूज्य भ्राता, आज तक तो आपने मुझे अपने से दूर नहीं किया, फिर अब आत्म कल्याण के समय आप मुझे दूर क्यों करते हैं? आप, मुझे अपने से दूर न करिये, मैं भी आपके साथ चारित्र ग्रहण करूंगा अंत में, कुमार मेघसेन को राज भार सौंपकर, मेघरथ और दृढ़रथ ने, अन्य सात सौ राजकुमारों और चार सहस्र राजाओं के साथ संयम स्वीकार किया।

मेघरथ मुनि ने, ग्यारह अंग का ज्ञान प्राप्त किया तथा सिंहनीक्रीड़ित आदि तप एवं बीस बोलों में से कई बोल की आराधना करके तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। अंत समय में, दृढ़रथ मुनि सहित पण्डित मरण से शरीर त्यागा और सर्वार्थ सिद्ध महा विमान में, तैंतीस सागर की स्थितिवाले देव हुए और दोनों, दिव्य सुख भोगने लगे।

किणी नगरी में, घनरथ तीर्थंकर के पुत्र महाराजा मेघरथ, अष्टम तप पूर्वक, महाप्रतिमा ध्यान धारण करके बैठे हैं। ये महाराजा भविष्य में इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सोलहवें तीर्थंकर होंगे, इससे मैंने उन्हें नमस्कार किया है। महाराजा मेघरथ को ध्यान से चलायमान करने में, इन्द्रसह सुरासुर का समूह भी समर्थ नहीं है।

ईशानेन्द्र महाराजा द्वारा की गई महाराजा मेघरथ की प्रशंसा सुरूपा और अतिरूपा नामकी इन्द्रानियों को सहन नहीं हुई। ये दोनों, मनुष्यलोक में आईं। राजा मेघरथ को ध्यान से डिगाने के लिये दोनों इन्द्रानियां, महाराज मेघरथ के सामने हाव भाव दिखाने लगीं और इस तरह रात भर चेष्टा करती रही परन्तु जिस प्रकार वज्र पर किया गया प्रहार व्यर्थ होता है, उसी प्रकार इन्द्रानियों, की भी सब चेष्टा व्यर्थ हुई। सवेरा होने पर, निराश हो इन्द्रानियां, अपनी माया समेट कर, और बार-बार महाराजा मेघरथ से क्षमायाचना करके, अपने स्थान को गईं।

महाराजा मेघरथ ने, प्रतिमा तथा पौषध पालकर पारणा किया, परन्तु रात की घटना से उन्हें संसार से विरक्ति हो गई। पति को संसार से विरक्त देख कर महारानी प्रियमित्रा को भी संसार से वैराग्य हो गया। पुण्ययोग से, भगवान घनरथ तीर्थं-

कर पुण्डरीकिणी नगरी में पधारे। महाराजा मेघरथ उन्हें वंदन करने गये। भगवान की वाणी सुन कर महाराजा मेघरथ ने भगवान से प्रार्थना की, कि—हे प्रभो, कृपा करके आप यहीं विराजे रहिये, मैं राज्य का प्रबन्ध करके आपके समीप दीक्षा लेने के लिये उपस्थित होता हूं। भगवान से यह प्रार्थना करके महाराजा मेघरथ, नगरी में वापस आये और अपने भाई दृढ़रथ युवराज को राज-भार सौंपने लगे। दृढ़रथ युवराज ने, हाथ जोड़ कर महाराजा मेघरथ से प्रार्थना की, कि—हे पूज्य भ्राता, आज तक तो आपने मुझे अपने से दूर नहीं किया, फिर अब आत्म कल्याण के समय आप मुझे दूर क्यों करते हैं? आप, मुझे अपने से दूर न करिये, मैं भी आपके साथ चारित्र ग्रहण करूंगा अंत में, कुमार मेघसेन को राज भार सौंपकर, मेघरथ और दृढ़रथ ने, अन्य सात सौ राजकुमारों और चार सहस्र राजाओं के साथ संयम स्वीकार किया।

मेघरथ मुनि ने, ग्यारह अंग का ज्ञान प्राप्त किया तथा सिंहनीक्रीड़ित आदि तप एवं वीस बोलों में से कई बोल की आराधना करके तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। अंत समय में, दृढ़रथ मुनि सहित पण्डित मरण से शरीर त्यागा और सर्वार्थ सिद्ध महा विमान में, तैंतीस सागर की स्थितिवाले देव हुए और दोनों, दिव्य सुख भोगने लगे।

अन्तिम भव।

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, कुरुदेशान्तर्गत हस्तिनापुर नाम का एक प्रख्यात नगर था। यह नगर सुन्दरता में स्वर्ग की समता करता था। महाराजा विश्वसेन वहां के राजा थे, अचिरा नाम्नी शीलादि गुणों से अलंकृत जिनकी पटरानी थी।

सर्वार्थसिद्ध महाविमान का आयुष्य समाप्त करके मेघरथ का जीव, भादों कृष्ण ७ को—जब चन्द्र का योग भरिणी नक्षत्र के साथ हुआ था—महारानी अचिरा के गर्भ में आया। उस समय महारानी अचिरा, सुख-निद्रा में शयन किये थीं। तीर्थंकर के गर्भ सूचक चौदह महास्वप्न देखकर, महारानी अचिरा जाग उठीं। उन्होंने महाराजा विश्वसेन को स्वप्न सुनाये, जिन्हें सुनकर महाराजा विश्वसेन ने कहा, कि स्वप्नों के फल का विचार करते हुए जान पड़ता है, तुम्हारी कोंख से, लोकोत्तर गुण विभूषित पुत्र होगा।

प्रातःकाल महाराजा विश्वसेन ने, स्वप्नशास्त्रियों को बुलाकर स्वप्नों का फल पूछा। स्वप्नशास्त्रियों ने कहा, कि स्वप्नों के प्रभाव से महारानी, चक्री या धर्मचक्री (तीर्थंकर) पुत्र प्रसव करेंगी। महाराजा विश्वसेन ने पुरस्कार समान देकर, स्वप्नशास्त्रियों को विदा किया।

महारानी अचिरा, गर्भ का पोषण करने लगीं। उन्हीं
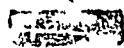
दिनों कुरुदेश में महामरी रोग का बड़ा उपद्रव था। प्रजा में, हाहाकार मचा हुआ था। शान्ति के लिए अनेक प्रयत्न किये गये, परन्तु शान्ति न हुई। तब गर्भवती महारानी अचिरा ने, महल की छत पर चढ़कर, चारों ओर दृष्टिपात किया। महारानी अचिरा की दृष्टि जिस ओर भी पड़ी, गर्भ के प्रताप से, उस ओर उपद्रव शान्त हो गया। इस प्रकार सारे देश में शान्ति हुई और लोग कष्ट मुक्त हुए।

गर्भकाल समाप्त होने पर, ज्येष्ठ कृष्णा १३ की रात को चन्द्र ने भरिणी नक्षत्र के साथ योग जोड़ा उस समय जिस प्रकार पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है, उसी प्रकार महारानी अचिरा ने, मृग के चिन्ह वाले, स्वर्णवर्णी, और एक सहस्र आठ लक्षणों के धारक अनुपम पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही, क्षण भर के लिए त्रिलोक में उद्योत हुआ और नारकीय जीवों को भी शान्ति हुई। इन्द्र, देव और दिक् कुमारियों ने भगवान का जन्म कल्याण मनाया और भगवान को पुनः माता के पास लाकर, छत के चँदवे पर पुष्पों का गुच्छा, वस्त्र और कुण्डल जोड़ी रख, सब देव नन्दीश्वर द्वीप को गये। वहां अष्टान्हिका महोत्सव मना, सब देव, अपने अपने स्थान को गये।

महाराजा विश्वसेन ने, पुत्र जन्मोत्सव मनाकर, भगवान

का नाम शान्तिनाथ रखा । इन्द्र संक्रामित अंगुष्टामृत का पान करते हुए, बाल-क्रीड़ा समाप्त करके भगवान, युवक हुए। उस समय भगवान का चालीस धनुष ऊंचा शरीर, कल्पवृक्ष के समान शोभायमान जान पड़ता था। भगवान शान्तिनाथ ने, पिता के अत्याग्रह से भोग देने वाले शुभ कर्मों को निःशेष करने के लिए, यशोमति आदि अनेक राज्य-कन्याओं का पाणिग्रहण किया।

दामपत्य सुख भोगते हुए, भगवान शान्तिनाथ की आयु जब पच्चीस हजार वर्ष की हुई, तब महाराजा अश्वसेन ने, राज्यभार भगवान शान्तिनाथ को सौंप दिया और स्वयं आत्म-कल्याण में लग गये। महाराजा शान्तिनाथ, विधि पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे। कुछ काल पश्चात सर्वार्थसिद्ध विमान का आयुष्य भोग कर, दृढ़रथ का जीव, महारानी यशोमति के गर्भ में आया। महारानी यशोमति ने, स्वप्न में सूर्य देखा। गर्भकाल समाप्त होने पर, महारानी ने, महाभाग्यशाली पुत्र का प्रसव किया। पुत्र जन्मोत्सव मनाकर महाराजा शान्तिनाथ ने बालक का नाम चक्रायुध रखा।

महाराजा शान्तिनाथ को जब राज्य करते पच्चीस हजार वर्ष बीत गये, तब इनके आयुधागार में ज्योतिमान चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। महाराजा शान्तिनाथ ने, चक्ररत्न उत्पन्न होने का उत्सव मनाया। शस्त्रागार में से निकल कर, वह चक्र, पूर्व दिशा की

ओर आकाश में स्थित हुआ। तब महाराजा शान्तिनाथ, सेना सहित पूर्व की ओर चले। अनेक देशों को विजय करके समुद्र की पूर्व सीमा पर मागध देव को, दक्षिण सीमा पर वरदाम देव को पश्चिम सीमा पर प्रभाश देव को, अपने आज्ञाकारी की भांति नियुक्त करके, महाराजा शान्तिनाथ, सिन्धु देवी को लक्ष्य बना, सिन्धु नदी की ओर पधारे। सिन्धु देवी ने, भगवान को भेंट रखकर, भगवान की आधीनता स्वीकार की। तब भगवान शान्ति-नाथ, वैताढ्य गिरि की ओर पधारे। इस प्रकार छः खण्ड पृथ्वी साध चौदह रत्न, नवनिधि, बत्तीस सहस्र देशाधिपति मुकुटधारी राजा, चौंसठ सहस्र रानियां, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, चौरासी लाख रथ और छयान्वे कोटि पैदल आदि चक्रवर्ती की समस्त ऋद्धि सहित भगवान शान्तिनाथ, आठ सौ वर्ष में हस्तिनापुर को लौटे। हस्तिनापुर में, मन्त्रीगण आदि, दीर्घकाल से महाराजा शान्तिनाथ की प्रतिक्षा कर रहे थे, अतः पुरजन-परिजन आदि ने, महाराजा शान्तिनाथ का बहुत स्वागत किया। महाराजा शान्तिनाथ राज-भवन में पधारे। वहां देवों तथा देशाधिपति मुकुटधारी राजाओं ने मिलकर, भगवान शान्तिनाथ को चक्रवर्ती पद पर अभिषिक्त किया। हस्तिनापुर में बारह वर्ष तक एक बड़ा महोत्सव हुआ। महोत्सव काल में प्रजा कर और दण्ड से भी मुक्त रही।

छः खण्ड के स्वामी भगवान शान्तिनाथ ने चौबीस सहस्र दो सौ वर्ष तक, चक्रवर्ती पद का उपभोग किया। इनके एक लाख बानवे हजार रानियां थीं और क्रोड़ों पुत्र थे।

एक दिन भगवान शान्तिनाथ, आत्मचिन्तन कर रहे थे, उसी समय लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की, कि—हे प्रभो, यद्यपि आप स्वयं बुद्ध हैं, परन्तु हम परम्परा के अनुसार यह प्रार्थना करने के लिए उपस्थित हुए हैं, कि अब आप धर्म-चक्री होकर, त्रिलोक में धर्मशासन प्रवर्ताइये। लोकान्तिक देव यह प्रार्थना करके ब्रह्मलोक को चले गये, अब अचिरानन्दन भगवान शान्तिनाथ ने राज्य-भार अपने पुत्र चक्रायुध को सौंप दिया और आप वार्षिकदान देने लगे।

वार्षिकदान समाप्त होने पर, इन्द्र तथा देव देवी, भगवान का निष्क्रमणोत्सव करने के लिए हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। स्नानादि से निवृत हो, शरीर पर वस्त्राभूषण धार भगवान शांतिनाथ सर्वार्थ-शिबिका में बैठे; जय-जयकार सहित नगर के मध्य होते हुए सहस्राम्र बाग में पधारे। वहां, सब वस्त्रालंकार त्याग, एक सहस्र राजपरिवार के पुरुषों सहित भगवान ने, ज्येष्ट कृष्णा १४ को छट्ठ के तप में, सर्वविरत चरित्र स्वीकार किया। चरित्र स्वीकार करते ही भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ। भगवान, हस्तिनापुर से विहार कर गये। दूसरे

दिन हरिपुर में सुमित्र राजा के यहां, परमान्न से भगवान का पारणा हुआ। इस उत्तम दान की महिमा बताने के लिए देवों ने, पांच दिव्य प्रकट किये।

संग एवं ममत्व रहित, भगवान शान्तिनाथ जनपद में विचरने लगे। एक वर्ष पश्चात् भगवान, हस्तिनापुर के उसी सहस्राम्र बाग में पधारे। वहां, छट्ठ के तप में नन्दी वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो भगवान ने, घातिक कर्मों का क्षय कर डाला, तब भगवान को अनन्त केवलज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त हुआ। भगवान को केवलज्ञान होते ही त्रिलोक में प्रकाश हुआ। आसन कम्पादि से अवधिज्ञान द्वारा भगवान को केवलज्ञान हुआ जानकर इन्द्रादि देव भगवान की सेवा में उपस्थित हुए। समवशरण की रचना हुई, जिसमें द्वादश प्रकट की परिषद् एकत्रित हुई। भगवान शान्तिनाथ ने, भव भ्रमण के कष्ट से संतप्त लोगों को अमृत के समान सुखदायिनी वाणी का प्रकाश किया।

भगवान की वाणी श्रवण करके हस्तिनापुर के महाराजा चक्रायुध, परम वैराग्यवन्त होकर भगवान से प्रार्थना करने लगे—हे प्रभो, मैं जन्म मरण के कष्ट से व्यथित हूँ, अतः आपकी शरण ग्रहण करना चाहता हूँ। आप मुझे अपनी शरण में स्थान दीजिये; मैं दीक्षा लेने का अभिलाषी हूँ। चक्रायुध की

प्रार्थना सुनकर भगवान ने उत्तर दिया कि तुम्हें जैसा सुख हो, अविलंब वैसा करो, प्रमाद मत करो।

महाराजा चक्रायुध नगर में आये। उन्होंने अपने पुत्र कुरुचंद्र को राज्याभिषेक किया और अन्य पैंतीस राजाओं के साथ, भगवान के समीप संयम स्वीकार किया। भगवान ने, इन्हें--चक्रायुध आदि को--उत्पाद व्यय और ध्रुव इस त्रिपदी का उपदेश किया, जिससे इन मुनियों ने द्वादशांगी की रचना की और भगवान के गणधर हुए।

अचिरानन्दन भगवान शान्तिनाथ, एक वर्ष कम पच्चीस सहस्र वर्ष केवली पर्याय में विचरते रहे और अनेक भव्य जीवों का उद्धार किया। इनके बांसठ सहस्र मुनि, इकसठ सहस्र छःसौ आर्यिका, दो लाख नब्बे हजार श्रावक और तीन लाख मन्यान्वे हजार श्राविकाएँ हुई। अपना निर्वाणकाल समीप जान कर भगवान शांतिनाथ, नव सौ मुनियों सहित सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहां, सब ने अनशन कर लिया, जो एक मास तक चलता रहा। अंत में, जेष्ठ कृष्णा १३ को--जब चंद्र का योग भरिणी नक्षत्र में हुआ--भगवान ने चार अघातिक कर्म नष्ट करके सिद्ध पद प्राप्त किया।

भगवान शांतिनाथ, पच्चीस हजार वर्ष कुमार पद पर रहे। पच्चीस हजार वर्ष माण्डलिक राजा रहे और पच्चीस हजार वर्ष

चक्रवर्ती पद का उपभोग किया। फिर संयम लेकर एक वर्ष छद्मस्थावस्था में शेष केवली पर्याय में विचरते रहे। इस प्रकार भगवान,सब एक लाख वर्ष का आयुष्य भोग कर, भगवान,धर्म-नाथ के निर्वाण को पौन पल कम तीन सागरोपम बीत जाने के पश्चात् निर्वाण पधारे।

प्रश्न—

१—भगवान शांतिनाथ के कितने भव का हाल जानते हो ?

२—भगवान शांतिनाथ ने, किस भव में किस कार्य द्वारा तीर्थंकर गोत्र बांधा था ?

३—भगवान शांतिनाथ के समस्त पूर्व भवों में, सब से अधिक आदर्श कार्य कौनसा है ?

४—भगवान शांतिनाथ, अचिरामाता के गर्भ में कहां से और कितना आयुष्य भोग कर पधारे थे ?

५—भगवान की जन्म तिथी कौन सी है और इनका नाम शांतिनाथ, किस घटना के कारण हुआ ?

६—भगवान शांतिनाथ का गार्हस्थ्य जीवन कितने भागों में किस-किस प्रकार व्यतीत हुआ ?

७—भगवान शांतिनाथ ने इस भव और पूर्व भवों में श्लाघ्य पुरुषों में की कौन-कौन पदवियें पाई हैं ?

८—भगवान शांतिनाथ और भगवान अनन्तनाथ के निर्वाण में कितने काल का अंतर रहा ?

भगवान श्री कुन्थुनाथ

प्रार्थना

श्लोकः—

मां कुन्थुनाथ ! समथावसथः प्रकृष्ट,
स्थानंदमाय नय मोहनवारि राशेः ।
मध्येऽम्बुनाथ तुलनां कलयन्ननल्पा,
स्थानन्दमाय नयमोहनवारि राशेः ॥

भावार्थ—शांति के स्थान और नय रूपी सुन्दर समुद्र वरुण की शोभा को धारण करने वाले, हे कुन्थुनाथ भगवान ! मुझे मोह रुपी नवीन वैरी-समूह को दमन करने के लिये प्रकृष्ट स्थान (मोक्ष मार्ग) में पहुँचा दें ।

पूर्व भव

इसी जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में, आवर्त नामकी विजय है। उसमें, खड्गि नाम की नगरी थी। वहां सिंहावह नाम का राजा राज्य करता था। वह राजा, धर्म का आधार और पाप को कुठार रूप था, तथा जिस प्रकार से संयमी लोग अनासक्त रूप से भोजन करते हैं, उसी प्रकार वह अनासक्त रूप से राज्य करता था। समय पाकर उसने संवराचार्य के पास से संयम स्वीकार कर लिया। तीव्ररूप से व्रतों का पालन करते हुए बीस बोल में से कई बोल की आराधना करके, सिंहावह मुनि ने, तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में, समाधि पूर्वक काल करके सर्वार्थ सिद्ध महाविमान में तैंतीस सागर की आयुवाला अहमिन्द्र देव हुआ।

अन्तिम भव।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में, कुरुदेशान्तर्गत हस्तिनापुर नगर था जो स्वर्ग से भी स्पर्द्धा करता था। वह नगर, अनेक भवन, अट्टालिका और उद्यानादि से सुशोभित था। वहां, सूर्य जैसे तेज वाला सूर नाम का राजा राज्य करता था। सूर की सूरा नाम्नी रानी थी, जो श्री (लक्ष्मी) के समान थी।

सर्वार्थ सिद्ध महा विमान का आयुष्य भोग कर सिंहावह राजा का जीव श्रावण कृष्ण९ को-जब चन्द्र कृतिका नक्षत्र में था, तब-सूरा देवी के गर्भ में आया। महारानी सूरादेवी, सुख शैय्या पर शयन किये थीं। वे तीर्थङ्कर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखकर जाग उठीं और पति के समीप जाकर सब स्वप्न सुनाये। महाराजा सूर ने, महारानी सूरादेवी से कहा कि स्वप्न प्रभाव से, तुम चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर पुत्र प्रसव करोगी।

नौमास साढ़े सात रात बीतने पर, वैशाख कृष्णा ९ को—जब चन्द्र कृतिका नक्षत्र में था उस समय—महारानी सूरादेवी ने, एक सहस्र आठ लक्षणों से युक्त स्वर्ण वर्णी और अज के चिन्हवाले अनुपम पुत्र को जन्म दिया। तीनों लोक में, तत्काल उद्योत हुआ। आसनकंपादि से भगवान का जन्म हुआ जानकर, अच्युतादि चौंसठ इन्द्र, छप्पन दिक्कुमारी और असंख्य देव देवी ने, भगवान को, मन्दिराचल पर्वत पर जन्म कल्याण मनाया। पश्चात भगवान को, महारानी सूरादेवी के समीप प्रस्तुत किये।

पुत्र जन्मोत्सव मनाकर महाराजा सूर ने, भगवान का नाम कुन्थुकुमार रखा। अंगुष्ठामृत पान करते हुए और धाइयों द्वारा लालन पालन कराते हुए, भगवान बालयवस्था त्याग युवक हुए। उस समय भगवान का पैंतीस धनुष ऊंचा शरीर,

कल्पवृक्ष के समान सुशोभित लगने लगा। पिता के आग्रह से भगवान ने अनेक राजकन्याओं का पाणिग्रहण किया और दाम्पत्य सुख भोगते हुए सानन्द रहने लगे। जब भगवान पौने चौवीस सहस्र वर्ष के हुए तब महाराजा के आग्रह से भगवान ने राज्य-पाट स्वीकार किया।

भगवान कुन्थुनाथ को जब पौने चौवीस सहस्र वर्ष माण्डलिक राजा के रूप में राज्य करते बीते, उस समय शस्त्रागाररक्षक ने आकर भगवान को चक्ररत्न उत्पन्न होने की बधाई दी। भगवान ने चक्ररत्न की विधि पूर्वक पूजा की। पश्चात् वह चक्ररत्न, आयुधशाला से निकलकर, अन्तरिक्ष में स्थित हुआ। तब भगवान कुंथुनाथ ने, दिग्विजय की तैयारी करके, चक्र के संकेतानुसार छः खंड साध लिया। मागधपति वरदाम, प्रभास, सिंधु देवी, कृतमालदेव, नटमालदेव, वैताढ्यगिरि देव, आदि सीमारक्षक देवों, पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर, भगवान कुन्थुनाथ छः सौ वर्ष पश्चात चक्रवर्ती की सम्पूर्ण सम्पति से युक्त होकर हस्तिनापुर में पधारे। देवों तथा राजाओं ने मिलकर भगवान को चक्रवर्ती पद का अभिषेक किया, जिसका महोत्सव हस्तिनापुर में बारह वर्ष तक होता रहा और इतने ही काल तक प्रजा कर दण्ड आदि से मुक्त रही।

भगवान कुन्थुनाथ को चक्रवर्ती पद का उपभोग करते पौने

चौवीस सहस्र वर्ष बीत चुके थे, तब आत्मचिन्तन करते हुए भगवान ने, संसार त्याग का विचार किया। उसी समय लोकांतिक देवों ने आकर भगवान से धर्म तीर्थ प्रवर्ताने की प्रार्थना की। भगवान कुन्थुनाथ ने उसी समय अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य-भार सौंप दिया और स्वयं वार्षिकदान देनेलगे।

भगवान कुन्थुनाथ, नित्य प्रति सूर्योदय से एक पहर दिन चढ़ेत तक एक क्रोड़ आठ लाख स्वर्णमुद्रा दान करते थे। देवता लोग, सारे भरतक्षेत्र में से दान लेने वाले लोगों को लाते थे। भगवान कुन्थुनाथ, मुट्ठी भर-भर कर स्वर्णमुद्रा दान करते थे, परन्तु जिसे जितनी स्वर्णमुद्रा मिलने का योग होता था, उसे उतनी ही स्वर्णमुद्रा मिलती थीं। अर्थात जिसे जितनी स्वर्ण-मुद्रा मिलने का योग है, भगवान की मुट्ठी में यदि उससे अधिक स्वर्णमुद्रा हुईं, तब तो इन्द्र महाराजा अधिक स्वर्णमुद्राओं तो हरण कर लेते थे और यदि भगवान की मुट्ठी में कम हुईं, को इन्द्र महाराज भगवान की मुट्ठी में और स्वर्णमुद्रा मिला देते थे। इस प्रकार, शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र, चमरेन्द्र और बलेन्द्र से सेवित भगवान, एक वर्ष तक मेघवृष्टि की तरह दान देते रहे।

तीर्थंकर द्वारा दिया गया दान लेने के लिए सेठ साहूकार और राजा महाराजा भी आया करते हैं। तीर्थंकर भगवान द्वारा दिये गये दान में यह विशेषता होती है कि दान में मिली हुई

स्वर्ण मुद्राएँ जिस द्रव्य में रख दी जाती हैं वह द्रव्य अक्षय हो जाता है,-अर्थात उस द्रव्य का कभी अन्त नहीं आता। साथ ही जिस घर में वह दान का द्रव्य होता है वहां सदा शान्ति रहती है, कभी संकट नहीं आता,ऐसा महापुरुष फरमाते हैं।

वार्षिक-दान की समाप्ति पर, इन्द्र और देव, भगवान का निष्क्रमणोत्सव मनाने के लिए उपस्थित हुये। दीक्षाभिषेक के पश्चात भगवान वस्त्रालंकार धारण करके विजया नाम्मी शिविका में आरूढ़ हो, देव तथा मनुष्यों द्वारा जय—जयकार होते हुवे, नगर के मध्य होकर सहस्राम्र बाग में पधारे। वहां भगवान ने सब वस्त्रालंकार त्याग दिये। पश्चात वैशाख कृष्णा ५ को दिन के पिछले पहर में, कृतिका नक्षत्र में, भगवान ने पंचमुष्ठि लोंच करके छट्ट के तप में एक सहस्र राजाओं सहित चारित्र स्वीकार किया। चारित्र लेते ही भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ।

दूसरे दिन, चक्रपुर नगर के राजा व्याघ्रसिंह के यहां भगवान कुन्थुनाथ का परमान्न से पारणा हुआ। दान की महिमा करने के लिए देवों ने, पांच दिव्य प्रकट किये।

वायु की तरह अप्रतिबन्ध विहार करते हुये और अनेक प्रकार के तप करते हुए भगवान, सोलह वर्ष तक छद्मस्थ-अवस्था में विचरते रहे। अन्त में विहार करते-करते भगवान हस्तिनापुर के सहस्राम्र बाग में पधारे। वहां भगवान ने, छट्ट का तप

करके: तिल के वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग किया। उस समय भगवान ने, शुक्लध्यान और क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर, घातिक कर्मों का क्षय कर दिया तब चैत्र शुक्ला ३ को कृतिका नक्षत्र में अनन्त केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

भगवान कुन्थुनाथ को केवलज्ञान होते ही, त्रिलोक में क्षण-मात्र प्रकाश हुआ। भगवान को केवलज्ञान हुआ जानकर, इन्द्र सहित देवों ने भगवान की सेवा में उपस्थित हो, केवलज्ञान महोत्सव मनाया। वहीं पर, समवशरण की रचना हुई, जिसमें बैठकर बारह प्रकार की परिषद् ने भगवान की दिव्य वाणी सुनी भगवान की वाणी सुनकर, अनेक भव्य जीव प्रतिबोध पाये।

भगवान कुन्थुनाथ के, स्वयम्भू आदि पैंतीस गणधर थे। साठ हजार साधु थे। साठ हजार छः सौ आर्यिका थीं। एक लाख उन्यासी हजार श्रावक थे और तीन लाख इक्यासी हजार श्राविकाएँ थीं। भगवान कुन्थुनाथ ने, सोलह वर्ष कम पौने चौबीस हजार वर्ष केवलीपर्याय में विचर कर, अनेक भव्य जीवों का कल्याण किया।

अपना निर्वाणकाल समीप जानकर, भगवान कुन्थुनाथ, एक सहस्र मुनियों सहित सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहां, भगवान ने अनशन कर लिया, जो एक मास तक चलता रहा।

अन्त में वैशाख कृष्णा प्रतिपदा को भगवान, शैलेशी अवस्था में प्राप्त हो मोक्ष पधारे ।

भगवान कुन्थुनाथ पौने चौवीस हजार वर्ष तक कुमार पद पर रहे, पौने चौवीस हजार वर्ष, माण्डलिक राजा रहे । पौने चौवीस हजार वर्ष, चक्रवर्ती पद का उपभोग किया । सोलह वर्ष छद्मस्थावस्था में विचरे और शेष आयु, केवली पर्याय में व्यतीत की । इस प्रकार भगवान कुन्थुनाथ सब पञ्चयान्वे हजार वर्ष का आयुष्य भोग कर, भगवान शान्तिनाथ के निर्वाण के अर्द्ध पल्योपम पश्चात निर्वाण पधारे ।

प्रश्न—

१—भगवान कुन्थुनाथ, पूर्व भव में कौन थे ? कहां रहते थे ? और क्या करके तीर्थंकर गोत्र बांधा था ।

२—भगवान कुन्थुनाथ के माता-पिता और जन्मस्थान का नाम क्या है ?

३—भगवान कुन्थुनाथ का चक्रवर्ती पद का अभिषेक कितनी अवस्था में हुआ था ?

४—तीर्थंकर द्वारा दिये गये दान की विशेषता क्या है ?

५—भगवान कुन्थुनाथ की जन्मतिथि, दीक्षातिथि, केवलज्ञान प्राप्ति तिथि और निर्वाण तिथि कौनसी है ?

६—भगवान कुन्थुनाथ ने कितनी आयु किस-किस स्थिति से व्यतीत की ?

७—भगवान कुन्थुनाथ द्वारा स्थापित तीर्थ की भिन्न-भिन्न संख्या क्या थी ?

८—भगवान कुन्थुनाथ और भगवान धर्मनाथ के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा ?

१८

भगवान श्री अरहनाथ

प्रार्थना
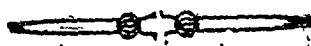
श्लोकः—

पीठे पदोर्लुठति यस्य सुरालिरग्र,
सेवे सुदर्शन धरेऽशमनं तवाऽऽमम् ।
त्वांखण्ड, यन्त मर तं परितोषयन्तं,
सेवे सुदर्शन धरेश मनन्तावामम् ॥

भावार्थ—जिनके चरणतल में देव श्रेणी लौटती है ऐसे हे
र्शनसुत अरहनाथ स्वामी ! आपके चरण कमलों की सेवा,
न्त न होने वाले भवरोग के लिए औषधी समान बड़ी ही
तम है अतः मैं भी आपकी सेवा को अंगीकार करता हूं ।
आपकी आज्ञा का पालन करना ही आपकी सच्ची सेवा है ।

पूर्व भव

जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र में, 'वत्स' नाम की विजय है, जिसमें सुसीमा नाम की एक रमणीय नगरी थी। वहां, धनपति नाम का एक पराक्रमी राजा राज्य करता था, जो धर्म-अर्थ काम और मोक्ष की आराधना करता हुआ प्रजा का पालन करता था। धनपति को संसार से विरक्ति हो गई, इसलिए उसने श्री संवर मुनि के पास दीक्षा धारण कर ली। अनेक प्रकार से बाह्याभ्यन्तर तप एवं बीस स्थानकों में से कितने ही स्थानक की आराधना करके धनपति मुनि ने, तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त समय में, अनशन करके समाधि सहित शरीर त्याग सर्वार्थ सिद्ध महाविमान में, तैंतीस सागर की आयु वाला महर्द्धिक देव हुआ।

अन्तिम भव।

एक लक्ष योजन के विस्तार वाले इस जम्बूद्वीप के भरतार्द्ध में परम समृद्धिशाली हस्तिनापुर नाम का एक नगर था। वहां ईक्ष्वाकु वंशोत्पन्न महा तेजस्वी महाराजा सुदर्शन राज्य करता था। महाराजा सुदर्शन की रानी का नाम श्रीदेवी था, जो रूप एवं स्त्रियोचित गुणों से परिपूर्ण थीं।

सर्वार्थसिद्ध विमान का आयुष्य भोग कर, धनपति राजा का जीव फाल्गुन शुक्ला २ की रात में--जब चन्द्र का रेवती नक्षत्र के साथ योग था—महारानी श्रीदेवी के उदर में आया। सुखशैय्या पर शयन किये हुई महारानी श्रीदेवी ने, तीर्थंकर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखे। महारानी श्रीदेवी नींद से जाग उठीं। उन्होंने महाराजा सुदर्शन को स्वप्न सुनाये, जिन्हें सुनकर उन्होंने महारानी से यह कहा कि तुम्हारी त्रिलोकपूज्य उत्कृष्ट पुत्र होगा। महारानी श्रीदेवी ने पति के वचन पर विश्वास करके तथास्तु कहा और गर्भ का पालन करने लगीं।

गर्भ काल समाप्त होने पर, महारानी श्रीदेवी ने, सर्व लक्षण व्यञ्जन युक्त स्वस्तिका के चिन्ह वाले स्वर्णवर्णी पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही क्षण भर के लिए तीनों लोक में प्रकाश हो गया और नैरियकों को भी शान्ति मिली।

छप्पन दिक्कुमारियों ने, आसनकम्प से भगवान का जन्म हुआ जाना। ये छप्पन दिक्कुमारियां, आठ-आठ, चारों दिशा में, चार-चार, चारों विदिशा में; चार उर्ध्वलोक में और अधःलोक में वसती हैं। भगवान जन्मे हैं, यह जानकर छप्पन दिक्कुमारियां, अपने चार हजार सामानिक देव, सोलह हजार आत्मरक्षक देव, बीस हजार तीनों परिषद के देव, और सात अणिका, चार महत्तरिका आदि परिवार सहित, विमान में बैठ कर, भग-

घान के जन्म गृह में उपस्थित हुई। महारानी श्रीदेवी को नमस्कार करके छप्पन दिक्कुमारियों ने अपना परिचय दिया और माता से प्रार्थना की, कि हम अपने जीताचार के अनुसार भगवान का जन्मकल्याण मनाने के लिए आई हैं, अतः आप किसी प्रकार का भय न करें। इस प्रकार प्रार्थना करके दिक्कुमारियां अपना-अपना काम करने लगीं।

दिक्कुमारियों की तरह इन्द्रों ने भी भगवान का जन्म हुआ जाना। तब भुवनपति के बीस, व्यन्तरों के बत्तीस, ज्योतिषियों के दो और वैमानिकों के दस, इन चौंसठ इन्द्र में से त्रैसठ इन्द्र तो अपने-अपने परिवार सहित सुमेरु गिरि पर पधारे और सौधर्मपति शक्रेन्द्र-महाराज, अपने परिवार सहित माता श्रीदेवी की सेवा में उपस्थित हुए। माता को नमन करके अपना परिचय देकर शक्रेन्द्र महाराज ने माता को अवश्यव्यापिनी निद्रा दी और भगवान को लेकर, सुमेरुगिरि की ओर प्रस्थान किया। सुमेरु गिरि पर, शक्रेन्द्र महाराज, भगवान को अपनी गोद में लेकर बैठे, तब शेष त्रैसठ इन्द्रों ने भगवान को स्नान करा, वस्त्राभूषण पहनाये और भगवान कीपूजा करके आरती उतारी। फिर भगवान को, इशानेन्द्र की गोद में देकर शक्रेन्द्र महाराज ने, चार-वृषभ वैक्रिय करके उनके अंगो में से जल की धारा, भगवान के ऊपर पहुँचाई और सब ने मिलकर भगवान को

स्नान कराया। फिर भगवान को दिव्य वस्त्रालंकार पहना, भगवान की पूजा की और आरती उतारी। यह हो जाने पर, गीत नृत्य करके शक्रेन्द्र महाराज, भगवान को माता के पास लाये। भगवान की सेवा के लिये, अनेक देव देवियों को नियत करके इन्द्रादि देव अपने-अपने स्थान को गये।

प्रातःकाल महाराजा सुदर्शन ने पुत्रजन्मोत्सव मनाकर, भगवान का अरहनाथ नाम रखा। लालन-पालन के मध्य भगवान, वृद्धि पाने लगे। बाल अवस्था त्याग कर भगवान ने, युवावस्था में प्रवेश किया। उस समय भगवान का तीस धनुष ऊँचा शरीर बहुत सुन्दर मालम होता था। माता-पिता ने अति आग्रह-पूर्वक भगवान का अनेक राजकन्याओं के साथ विवाह कर दिया।

दामपत्य सुख भोगते हुए जब भगवान की आयु इक्कीस सहस्र वर्ष की हुई, तब पिता के आग्रह से भगवान ने, राजभार ग्रहण किया। भगवान को राज्य करते हुए इक्कीस सहस्र वर्ष व्यतीत हो चुके, उस समय भगवान के आयुधागार में, दिव्य चक्ररत्न प्रकट हुआ। आयुधागार-रक्षक ने, भगवान को, चक्ररत्न प्रकट होने की बधाई दी। भगवान ने, सपरिवार पधार कर, चक्ररत्न की विधिपूर्वक पूजा की। पूजा होते ही चक्ररत्न, आयुधशाला से बाहर निकला और पूर्वाभिमुख आकाश में

स्थित हुआ। भगवान अरहनाथ ने, तत्क्षण सेना सजा कर विजय के लिए प्रयान किया।

सेना सहित भगवान, नित्य एक योजन चल कर पड़ाव डला देते थे और मार्ग में जितने भी देश नगर आते थे, उनके अधिपति (राजा) से अपनी अधीनता स्वीकार कराते जाते थे। इस प्रकार भगवान, ससैन्य समुद्र तक पहुंच गये और वहां के रक्षक मागधदेव को साधकर, वहां के निरीक्षण का भार उसे सौंप भगवान, दक्षिण दिशा की ओर बढ़े। दक्षिण में वरदाम देव को और पश्चिम में प्रभासदेव को साध, भगवान, सैन्य सहित सिन्धुदेवी की ओर बढ़े। सिन्धुदेवी, तथा सिन्ध के पश्चिमि भाग को साध भगवान, वैताढ्यगिरि के निकट पहुंचे। वहां वैताढ्यगिरि देव को साध और गुफाओं के द्वार खोल, भगवान ने उत्तर के तीनों खण्ड साधे। फिर, गंगादेवी और गंगा के पूर्वीय भागों को साधे। इस प्रकार सारे भरतक्षेत्र में अपनी आण प्रवर्ताकर चारसौ वर्ष पश्चात भगवान अरहनाथ, चक्रवर्ती की सम्पूर्ण सम्पदा सहित हस्तिनापुर पधारे। हस्तिनापुर में, पच्चीस हजार देवता, बत्तीस हजार मुकुटधारी राजा, और प्रधान सामन्त आदि ने मिलकर भगवान अरहनाथ को चक्रवर्ती पद का अभिषेक किया, जिसका महोत्सव बारह वर्ष तक होता रहा।

भगवान अरहनाथ ने इक्कीस सहस्र वर्ष तक सम्पूर्ण भरत-

क्षेत्र पर आधिपत्य किया। एक दिन भगवान आत्मचिन्तवन कर रहे थे, इतने ही में लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की, कि प्रभो, तीर्थ प्रवर्ताइये। भगवान ने तत्क्षण राज-पाट अपने पुत्र अरविन्द को सौंप दिया और आप वार्षिकदान देने लगे। वार्षिक दान समाप्त होने पर, दीक्षाभिषेक के पश्चात वस्त्रालंकार धारणकर भगवान, वैजन्ति शिविका में विराजे और देव तथा मनुष्यों द्वारा होने वाले जयजयकार के मध्य, सहस्राम्र बाग में पधारे। वहां, शिविका एवं वस्त्रालंकार त्याग भगवान ने राजपरिवार के एक सहस्र पुरुषों सहित मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को दिन के पिछले पहर में, छट्ठ के तप में संयम स्वीकार किया। उसी समय भगवान को मनःपर्यय ज्ञान हुआ।

दूसरे दिन, राजपुर के अपराजित राजा के यहां भगवान का परमान्न से पारणा हुआ। देवताओं ने, दान की महिमा करने के लिए पांच दिव्य प्रकट किये।

अप्रतिबंध विहार करते हुए भगवान, तीन वर्ष पश्चात पुनः हस्तिनापुर के सहस्राम्र बाग में पधारे। वहां भगवान, आम्र वृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण करके खड़े रहे। ध्यान का तीव्र वेग बढ़ने से, क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो, भगवान ने चार घन घातिक कर्म क्षय किये और भगवान को अनन्त केवलज्ञान प्राप्त हुआ। भगवान को केवलज्ञान होते ही, त्रिलोक में प्रकाश हुआ।

आसनकम्प द्वारा प्रभु को केवलज्ञान हुआ जानकर, असंख्य देवों सहित अच्युतादि इन्द्र, केवलज्ञान की महिमा करने के लिए उपस्थित हुए। वहीं, समवशरण की रचना हुई, जिसमें बारह प्रकार की परिषद्, भगवान की वाणी श्रवण करने के लिये एकत्रित हुई। भगवान ने, कर्ण-मधुर वाणी का प्रकाश किया, जिसे सुनकर अनेक भव्य जीव प्रतिबोध पाये।

भगवान अरहनाथ के, कुम्भ आदि तैंतीस गणधर थे। पचास हजार मुनि थे, साठ हजार साध्वी थी। एकलाख चौरासी हजार श्रावक थे और तीन लाख बहत्तर हजार श्राविका थी।

भगवान अरहनाथ, तीन वर्ष कम इक्कीस हजार वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते रहे और अनेक भव्यजीवों का कल्याण करते रहे। अपना निर्वाण काल समीप जान, भगवान अरहनाथ एक हजार मुनियों सहित सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहां भगवान ने अनशन कर लिया, जो एक मास तक चलता रहा। अन्त में मार्गशीर्ष शुक्ला १० के दिन—जब चंद्र रेवती नक्षत्र में आया—अयोगी अवस्था को प्राप्त हो भगवान ने, चार अघातिक कर्म क्षय कर दिये और सिद्ध पद प्राप्त किया।

भगवान अरहनाथ, इक्कीस हजार वर्ष कुमार पद पर रहे। इक्कीस हजार वर्ष माण्डलिक राजा रहे। इक्कीस हजार वर्ष चक्रवर्ती पद पर रहे। तीन वर्ष छद्मस्थ अवस्था में रहे और शेष

आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार भगवान अरह-नाथ चौरासी हज़ार वर्ष की आयु भोग कर, भगवान कुन्थुनाथ के निर्वाण को एक क्रोड़ वर्ष कम पाव पल्योमप व्यतीत होने पर निर्वाण पधारे।

प्रश्न—

१—भगवान अरहनाथ, पूर्व भव में कौन थे, कहां रहते थे और क्या करके तीर्थङ्कर गोत्र बांधा था ?

२—भगवान अरहनाथ, किस नगर में किस कुल में, और किस तिथि को जन्मे थे तथा इनके माता-पिता का नाम क्याथा ?

३—भगवान अरहनाथ, माता के गर्भ में, कहां से और कितना आयुष्य भोग कर पधारे थे ?

४—चौंसठ इन्द्र के भेद बताओ ?

५—भगवान अरहनाथ का शरीर कितना ऊँचा था और इनके शरीर पर कौनसा चिन्ह था ?

६—भगवान अरहनाथ से पहले कोई और तीर्थकर ऐसे हुए थे या नहीं, जो चक्रवर्ती रहे हों ? यदि थे, तो कौन ?

७—चक्रवर्ती किसे कहते हैं ?

८—भगवान अरहनाथ को छः खण्ड साधने में कितना समय लगा था और कौन से छः खण्ड साधे थे ?

९––भगवान अरहनाथ को केवल ज्ञान किस तिथि को हुआ था और किस तिथि को भगवान का निर्वाण हुआ ?

१०––भगवान ने आयु का उपभोग किस कार्य में कितने कितने वर्ष तक किया ? संख्या सहित बताओ ?

१९
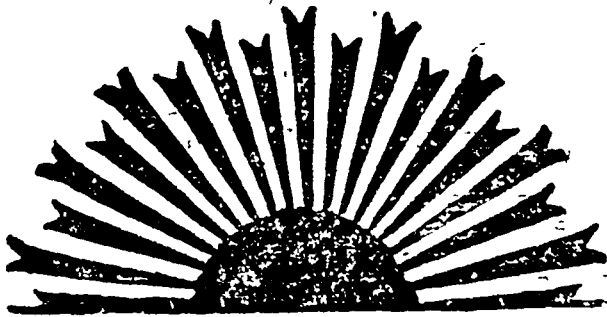
भगवान श्री मल्लिनाथ

प्रार्थना
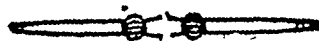
श्लोकः—

श्री मल्लिनाथ शमथ द्रुम सेकपाथः
कान्त प्रियंगु रूचिरोचित काय तेजः।
पादाब्ज मस्तु मदनार्ति मधौ विमुक्ता;
कान्त! प्रियंगुरुचिरोचितकाय तेजः॥

भावार्थ—जिनके चरण कमल शान्ति रूपी वृक्ष को सींचन में अमृत समान हैं, जिनका शरीर प्रियंगुलता के समान सुन्दर है और जो कामदेव रूपी मधु दैत्य के लिये कृष्ण के समान वीर हैं, ऐसे हे मल्लिनाथ प्रभु! आपके चरण कमल की सेवा मुझे प्राचीन और उचित सुख के लिए हो।

पूर्व भव

जम्बू द्वीप के पश्चिम महाविदेह में, लीलावती विजय के अन्तर्गत वीतशोका नाम की एक रमणीय नगरी थी । वहां, बलि नाम का राजा राज्य करता था, जिसके धारिणीदेवी नाम की रानी थी । धारिणीदेवी ने, स्वप्न में केसरी सिंह देखा । परिणामतः महारानी धारिणीदेवी ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम महाबल रखा गया । महाबल के अचल, धरण, पूरण, बसु, वैश्रवण और अभिचन्द्र नाम के छः बालमित्र थे । बाल मित्रों के साथ विनोद करता हुआ, कुमार महाबल, युवक हुवा । महाबल का कमलश्री आदि पांच सौ राज-कन्यायों के साथ विवाह हुआ कुछ समय पश्चात, महाराजा बलि, महाबल को राज्य सौंप कर आत्मकल्याण में लग गये ।

महाराजा महाबल, राजकार्य करने लगे । महाबल की कमलश्री रानी से बलभद्र नाम का पुत्र हुआ । जब बलभद्र युवक हुआ तब महाबल ने उसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया और स्वयं अपने मित्रों सहित अर्हत-भाषित धर्म की सेवा करने लगे ।

एक समय महाराज महाबल ने अपने मित्रों से कहा, कि मै सांसारिक कष्टों से बहुत भयभीत हुआ हूँ, अतः मेरी इच्छा संयम लेने की है । आप लोगों की इच्छा क्या है ? यह प्रश्न

करने पर, छहों मित्र बोले, कि आज तक हम आपके साथ रह कर ही सांसारिक सुख भोगते रहे हैं, अतः कल्याण-मार्ग में भी आपही के साथ रहेंगे। महाराजा महाबल ने, राजपाट युवराज बलभद्र को सौंप दिया। इनके छहों मित्र भी, सांसारिक बोझ से निवृत्त हो गये और सातों मित्रों ने महात्मा वरधर्म मुनि के पास दीक्षा लेली।

दीक्षा लेकर सातों मित्रों ने आपस में यह प्रतिज्ञा की, कि अपन सब समान रूप से तप करेंगे। यह प्रतिज्ञा करके सातों मुनि, चतुर्थादि अनेक प्रकार के तप करने लगे, किन्तु पीछे से महाबल मुनि ने विचार किया, कि मैं इन छः से बड़ा हूं, अतः मुझे विशेष तप करना चाहिये; अन्यथा भविष्य में सातों समान हो जावेंगे, मेरा बड़प्पन न रहेगा। इस प्रकार विचार कर महाबल मुनि पारणे के दिन, बहाना बनाकर पारणा न करते और तपस्या बढ़ा देते। इस प्रकार मायामिश्रित तप करने से, महाबल मुनि ने स्त्री-वेद प्रकृति का निकाचित बन्ध कर लिया, लेकिन अर्हद्भक्ति आदि बोलों का उत्कृष्ट भावेण सेवन करने से प्रथम तीर्थङ्कर नाम कर्म उपार्जन कर लिया था। सातों मुनियों ने, चौरासी हजार वर्ष तक संयम का पालन किया। अन्त में, अनशन द्वारा समाधिपूर्वक शरीर त्याग, जयन्त नाम के अनुत्तर विमान में बत्तीसें सागर की आयु वाले अहिमिन्द्र देव हुए।

महाबल मुनि ने, माया सहित किये हुए तप की आलोचना नहीं की, इससे स्त्री-वेद कर्म अविच्छिन्न रहा। इस घटना से यह शिक्षा मिलती है कि, धर्म-करणी चाहे कम करे या ज्यादा, परन्तु हो कपट-रहित शुद्ध हृदय से। कपट सहित अधिक की गई धर्म-करणी भी, दुःखदायिनी हो जाती है। शास्त्रकार कहते हैं, कि 'माई मिच्छादिट्ठी अमाई समदिट्ठी।' अर्थात कपटी ही मिथ्यादृष्टि है और निष्कपटी ही समदृष्टि है। कपटी का जप-तप नियम प्रत्याख्यान श्रावकपना और साधुपना भी, अंक रहित बिन्दियों के समान हो जाता है। आज कल जितना लक्ष्य हिंसा अहिंसा और आरम्भ समारम्भ के कार्यों प्रति दिया जाता है, सत्य और सरलता के प्रति नहीं दिया जाता बात-बात में असत्याचरण किया जाता है और उसे सत्य सिद्ध करने के लिए माया का आश्रय लिया जाता है जैसे माया का कोई पाप ही न हो। ऊपर से यह मानते हैं कि हम बड़े चतुर हैं जो काम भी बनालेते हैं और प्रतिष्ठा भी बनायी रखते हैं परन्तु यह चरित्र सिद्ध करता है कि माया (कपट) ही भयंकर पाप है अतः बुद्धिमानों को कपटभाव त्याग, सरल व शुद्ध हृदय से ही धर्म करना उचित है।

चरित्र से ज्ञात होता है, कि महाबल मुनि का भावी आयुष्य कपट सहित तप करने से पूर्व ही बन्ध चुका था, अन्यथा कपटी का शुभ आयुष्य नहीं बन्धता। थोड़े से दोष की भी आलोचना

न करने से कैसा दुष्परिणाम भोगना होता है, यह इस चरित्र से स्पष्ट है।

अन्तिम भव।

इसी जम्बूद्वीप के भरतार्द्ध में विदेह देशान्तर्गत मिथिला-पुरी नाम की एक नगरी थी। वहां कुम्भ नाम के प्रतापी राजा राज्य करते थे। इनकी रानी का नाम प्रभावती था जो शील सौन्दर्यादि गुणों में अप्रतिम थी।

जयन्त विमान का आयुष्य पूर्ण करके महाबल राजा का जीव, फाल्गुन शुक्ला ४ को—जब चन्द्र अश्विनी नक्षत्र में आया था—महारानी प्रभावती के गर्भ में आया। सुखशैया पर शयन किये हुई महारानी प्रभावती, तीर्थङ्कर के गर्भ सूचक चौदह महास्वप्न देखकर जाग उठीं। तत्काल महारानी प्रभावती ने, पति को स्वप्न सुनाये जिन्हें सुन कर कुम्भराजा ने कहा कि तुम्हारे गर्भ से तीर्थङ्कर का जन्म होगा। महारानी प्रभावती, गर्भ का पालन-पोषण करने लगीं।

गर्भवती महारानी को, मालती पुष्प की शैया पर शयन करने की इच्छा हुई। देवों ने, महारानी—प्रभावती की इस

इच्छा को पूर्ण की। गर्भकाल समाप्त होने पर, मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को—जब चन्द्र अश्विनी नक्षत्र में आया—महारानी प्रभावती ने उन्नीसवें तीर्थंकर को पुत्री रूप में ❀ प्रसव किया। भगवान के शरीर पर, मुख्य चिन्ह कुम्भ कलश का था और भगवान अपनी कान्ति से नीलमणि की प्रभाको भी हरण करते थे। भगवान के जन्म लेते ही त्रिलोक में उद्योग हुआ और नारकीय जीवों को भी शांति मिली।

आसनकम्प से तीर्थङ्कर का जन्म हुआ जान छप्पन दिक्कुमारियों और देवताओं सहित इन्द्रों ने यथा स्थान उपस्थित होकर भगवान का जन्म कल्याण मनाया। जन्म कल्याण मना कर भगवान को माता के पास पधरा गये और वे अपने-अपने स्थान गये।

भगवान जब गर्भ में थे, तब महारानी प्रभावती की इच्छा, मालती-पुष्प की शैया पर शयन करने की हुई थी। इस बात को दृष्टि में रख कर, भगवान के माता-पिता ने भगवान का नाम

❀ भगवान तीर्थंकर, वैसे तो पुरुष रूप में ही अवतीर्ण होते हैं, परन्तु अपवाद स्वरूप स्त्री—रूप में भी अवतीर्ण हो जाते हैं। ऐसे अपवाद को लोकप्रवृत्ति में आश्चर्य मानते हैं। अवसार्पिणी काल में होने वाले दस आश्चर्यों में से, उन्नीसवें तीर्थंकर का स्त्री—रूप में अवतीर्ण होना भी एक आश्चर्य माना गया है। —लेखक—

मल्लिकुमारी रखा। धात्रियों द्वारा लालन-पालन पाते हुए बढ़कर भगवान ने युवावस्था में प्रवेश किया। उस समय भगवान के पच्चीस धनुष ऊँचे और नीलमणि की कान्ति को हरण करने वाले शरीर का रूप लावण्य, स्वर्ग की अप्सराओं को भी शर्माता था।

भगवान के पूर्व भव के मित्र भी, जयन्त विमान का आयुष्य भोगकर भगवान से पूर्व ही इसी भरतार्द्ध में, भिन्न-भिन्न देश के राजाओं के यहां जन्मे और वयस्क होकर राज्य करने लगे थे। अचल का जीव, साकेतपुर (अयोध्या) का प्रतिबुद्ध राजा हुआ। धरण का जीव, चम्पानगरी का चन्द्रछाय राजा हुआ। पूरन का जीव, श्रावस्ती नगरी का रुकमी राजा हुआ। वसु का जीव, वाराणशी का नगरी शंख राजा हुआ। वैश्रवण का जीव, हस्तिनापुर का अदीनशत्रु राजा हुआ और अभिचंद्र का जीव, कम्पिलपुर का जित-शत्रु राजा हुआ।

इन छहों राजाओं ने किसी न किसी प्रसंग से विदेहराज कुम्भ की कन्या भगवान मल्लि के उत्कृष्ट रूप लावण्य की प्रशंसा सुनी। छहों राजाओं ने, अपने-अपने दूत कुम्भ राजा के पास भेजे और कुम्भराजा से मल्लिकुमारी की याचना कराई। इधर भगवान मल्लिनाथ ने अपने पूर्वभव के साथियों का हाल अवधिज्ञान द्वारा जान लिया कि इस समय वे कहां-कहां के राजा हैं। अपने पूर्व भव के मित्रों को प्रतिबोध देने के

लिए भगवान ने, अशोकवाटिका में एक मोहनगृह बनवाया। मोहनगृह के मध्य में एक पीठिका (चबूतरा) बनवाकर भगवान ने उसके ऊपर अपने आकार की एक प्रतिमा खड़ी की। भगवान मल्लिनाथ के आकार की यह पुतली, स्वर्णमयी थी। उसके अधर, पद्मराग मणिमय थे। नीलमणि के केश थे। स्फटिक रत्न के लोचन थे। प्रवालमयी हाथ पांव थे। उसका उदर पोला और छिद्र सहित था। उसके तालू में भी एक छिद्र था, जिसका मुख मस्तक पर था। मस्तक का एक कमलाकार स्वर्णमयी ढक्कन था। जो मुकुट की भांति बना हुआ था। देखने में वह पुतली, साक्षात् मल्लिकुमारी ही जानपड़ती थी।

जिस रत्नमयी पीठिका पर यह पुतली थी, उसके चारों ओर छः द्वार वाली दीवाल बनवाई। द्वार इस प्रकार रखे कि एक द्वार से प्रवेश करके पुतली के सन्मुख पहुँचा हुआ व्यक्ति दूसरे द्वार से प्रवेश करके पुतली के सामने पहुंचे हुए व्यक्ति को न देख सके। एक मार्ग, पुतली की पीठ की ओर रखा, जिससे पुतली के समीप पहुंच सके। इस प्रकार कलामय गृह और पुतली बनवा कर भगवान मल्लिनाथ, भोजन करने के समय एक एक ग्रास भोजन-सामग्री नित्य प्रति उस पुतली में डालने लगे। मस्तक पर रहे हुए छिद्र द्वार से, भगवान, पुतली के उदर में ग्रास डाल देते और फिर ढक्कन बन्द कर देते।

छहों राजाओं के, योगायोग से कुम्भराजा के दरबार में एक ही साथ पहुंचे। छहों दूतों ने शिष्टाचार-पूर्वक कुम्भराजा से मल्लिकुमारी की ❀ याचना की। महाराजा कुम्भ ने, दूतों का अपमान करते हुए यह उत्तर दिया, कि यह कन्या त्रैलोक्य की मुकुटमणि है, मनुष्य तो क्या, देवलोक के इन्द्र भी इसके पति बनने के योग्य नहीं हैं, तो फिर किसी पुरुष की इस कन्या को वरने की इच्छा रखना व्यर्थ है। अतः तुम मेरे दरबार से चले जाओ। इस प्रकार अपमान करके कुम्भराजा ने, छहों राजा के दूतों को अपने यहां से निकाल दिया। निराश और अपमानित होकर छहों दूत अपने-अपने राजा के यहां लौट गये और कुम्भराजा का उत्तर एवं व्यवहार अपने-अपने राजा को कह सुनाया। कुम्भराजा के उत्तर और दूत के प्रति किये गये व्यवहार ने, राजाओं की क्रोधाग्नि को भड़का दिया। छहों राजाओं ने आपस में सलाह करके अपमान का बदला लेने के लिए सम्मिलित बल से कुम्भराजा पर चढ़ाई करदी। छहों राजा की सेना ने चारों ओर से मिथिला को घेर लिया, कुम्भराजा ने, शत्रुसेना को परास्त करने के लिए युद्ध भी किया, परन्तु विजय

❀ स कपट और निष्कपट करणी का प्रत्यक्ष अन्तर यह है कि जो बड़े थे, वे लौकिक व्यवहार में स्त्री-रूप हैं, और जो छोटे थे, वे पुरुष बनकर उन्हें स्त्री बनाने की अभिलाषा कर रहे हैं। —लेखक।

न मिली और मिथिला के चारों ओर पड़े हुए घेरे को नष्ट न कर सके। विवश होकर उन्हें नगर में ही बन्द रहना पड़ा।

कुम्भराजा, शत्रुसेना से किस प्रकार रक्षा हो, इसी चिन्ता में पड़े हुए थे, इतने ही में भगवान मल्लिनाथ, पिता को वन्दन करने के लिए गये। चितामग्न पिता, भगवान मल्लिनाथ के प्रति कोई पापूर्ण व्यवहार न दर्शा सके, तब भगवान ने, अवधिज्ञान की शक्ति से सब कुछ जानते हुए भी, कुम्भराजा से पूछा—पिताजी, आज आप इस प्रकार चिन्ता में क्यों पड़े हुए हैं? कुम्भराजा, भगवान को सब वृत्तान्त सुना कर कहने लगे कि कन्या किसी एक को दी जा सकती है, परन्तु इस समय छः राजा चढ़ाई करके आये हैं और नगर का घेरा डाले पड़े हैं, अतः मैं किसे तो कन्या दूं और किसे कन्या न दूं। भगवान ने कहा—पिताजी, आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें, इन छहों राजाओं को समझाने का उपाय मैंने कर लिया है। आप प्रत्येक राजा के पास पृथक्-पृथक् दूत भेजकर छहों को, यह सूचना करा दीजिए, कि यदि आपको कन्या से ही प्रयोजन है, तो आप गुपचुप मेरे साथ चलिए। इस प्रकार छहों राजाओं को भिन्न-भिन्न रास्ते से लाकर, अशोकवाटिका में मेरे द्वारा बनवाये हुए मोहनघर मे, अलग-अलग बैठा दीजिये। फिर तो मैं उन सभी को समझा दूंगी।

कुम्भराजा ने, भगवान मल्लिनाथ के कथनानुसार छहों राजाओं को बुलवा कर मोहनघर में बैठाया। पीठिका-स्थित पुतली को मल्लिकुमारी मान कर छहों राजा, अपने-अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगे और विचारने लगे, कि पूर्व-पुण्य के योग से ही हमें ऐसी पत्नी मिलेगी। राजा लोग, अपने-अपने मन में इस प्रकार प्रसन्न हो रहे थे, इतने ही में छहों राजा का उद्धार करने के लिए, प्रतिमा के पीछे के मार्ग से भगवान मल्लिनाथ, प्रतिमा के समीप पधारे और पुतली के मस्तक पर लगा हुआ कमलाकार सोने का ढक्कन खोल दिया। भगवान को देखकर राजा लोग यह आश्चर्य कर रहे थे कि एक ही आकृति की दो युवती कैसे ? इतने ही में पुतली के भीतर पड़ी हुई भोजन सामग्री से उत्पन्न घोर दुर्गन्ध ढक्कन खोलने से चारों ओर फैल गई। छहों राजा, उस दुर्गन्ध से घबराये और कपड़े से नाक दबा-दबा कर, मुंह फेर लिया। उसी समय भगवान बोले कि—आप लोगों ने मेरी ओर से मुंह क्यों फेर लिया ? राजाओं ने उत्तर दिया, कि दुर्गन्ध से प्राण घबराते हैं ? भगवान ने कहा—इस स्वर्णमयी पुतली में, केवल एक-एक ग्रास उत्तम भोजन का डाला गया, जो इस दशा में परिणत हुआ और उसकी दुर्गन्ध आप से नहीं सही जाती, तो माता-पिता के रजवीर्य से बने हुए औदारिक शरीर की स्थिति क्या है, इसे क्यों नहीं विचारते ? जो शरीर, रूप-रस,

रुधिर, मांस, चर्बी, अस्थि, मज्जा और वीर्य इन सात धातुओं से बना हुआ है, जो मल का खजाना है और जिसका साथ करने से उत्तम भोज्य पदार्थ और सुगंधित द्रव्य भी मल रूप बन जाते हैं, उस शरीर के केवल ऊपरी रंग को देखकर क्यों मोह में पड़ रहे हो? अपने पूर्व भव पर ध्यान देकर, अपना कल्याण क्यों नहीं करते।

भगवान का यह उपदेश सुनकर, छहों राजाओं को जाति-स्मृति ज्ञान हुआ और छहों राजा प्रतिबोध पाये। भगवान ने छहों कमरे के द्वार खोल दिये। छहों राजा, बाहर निकल कर, हाथ जोड़ भगवान से विनती करने और कहने लगे—हे प्रभो, आपने हमें नरक में पड़ने से बचाकर, बड़ा ही उपकार किया है। आप, पूर्वभव में भी हमारे गुरु थे और इस भव में भी हमारे गुरु हैं। आप हमारे अपराध क्षमा करें और हमें ऐसा मार्ग बतावें कि जिससे हम कल्याण कर सकें। भगवान ने उन्हें आश्वासन दिया और उनसे कहा कि—मेरी इच्छा तो अब चारित्र स्वीकार करने की है। यदि तुम्हारी भी यह इच्छा हो, तो अपने राज-पाट का प्रबन्ध करके चारित्र स्वीकार करो। छहों राजाओं ने, संयम लेना स्वीकार किया तब भगवान मल्लि-नाथ छहों राजाओं को अपने साथ लेकर महाराजा कुम्भ के पास उपस्थित हुवे उन्होंने महाराजा को प्रणाम किया। कुंभराजा ने भी

उनका सत्कार करके विदा किये। वे राज्य का प्रबन्ध करने के लिए अपने-अपने नगर को लौट गये।

इसी समय लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से धर्म तीर्थ प्रवर्ताने की विनती की। भगवान ने, वार्षिकदान देना प्रारम्भ कर दिया। वार्षिकदान समाप्त होने पर, कुम्भराजा और इंद्रादि देवों ने, भगवान का निष्क्रमणोत्सव मनाया। भगवान मल्लिनाथ, जयन्त-शिबिका में आरूढ़ हो, मिथिलापुरी के सहस्राम्र बाग में पधारे। वहां, भगवान ने शिबिका एवं वस्त्रालंकार त्याग दिये। पश्चात मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को प्रातःकाल, छट्ठ के तप में भगवान मल्लिनाथ ने, तीन सौ स्त्रियों और एक सहस्र राजा एवं राज-परिवार के पुरुषों सहित संयम स्वीकार किया। तत्क्षण भगवान को मनः पर्यय ज्ञान हुआ।

दीक्षा लेकर भगवान मल्लिनाथ, अशोक वृक्ष के नीचे, विशुद्ध ध्यान श्रेणी पर आरूढ़ हुए। क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो, भगवान ने घनघातिक कर्मों को नष्ट कर डाला और उसी रोज अपरान्ह काल में भगवान मल्लिनाथ को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

इन्द्रादि देवों ने, केवलज्ञान-महोत्सव मनाकर, समवशरण की रचना की। बारह प्रकार की परिषद, भगवान की वाणी सुनने को एकत्रित हुई। राजा कुंभ और प्रतिवुद्ध आदि छः राजा इंद्रों के पीछे बैठे। भगवान ने, कल्याणकारिणी वाणी का प्रकाश

किया। प्रतिबुद्ध आदि छः राजा, भगवान के पास संयम में प्रवर्जित हुए और कुम्भराजा ने, श्रावकपना स्वीकार किया।

दीक्षा लेने के पश्चात भगवान मल्लिनाथ, चव्वनहजार नौ सौ, वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते और भव्यजीवों का कल्याण करते रहे। अपना निर्वाणकाल समीप जानकर भगवान मल्लिनाथ, पांच सौ साध्वी और पांच सौ साधु सहित, सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहां भगवान ने अनशन कर लिया। अन्त में, फाल्गुन शुक्ल १२ को एक मास के अनशन में भगवान अघातिक कर्मों को नष्ट कर, सिद्ध पद को प्राप्त हुए।

भगवान मल्लिनाथ के भिषणजी आदि अट्ठाइस गणधर थे। चालीस हजार मुनि थे। पचपन हजार साध्वी थीं। एक लाख उन्नयासी हजार श्रावक थे और तीन लाख सत्तर हजार श्राविका थीं।

भगवान मल्लिनाथ, एक सौ वर्ष कुमारी पर्याय में रहे और चव्वनहजार नौसौ वर्ष केवली पर्याय में रहे। इस प्रकार भगवान मल्लिनाथ ने सब पच्यावन हजार वर्ष का आयुष्य पाया और भगवान अरहनाथ के निर्वाण को एक हजार क्रोड़ वर्ष व्यतीत हो जाने पर, निर्वाण पधारे।

प्रश्नः—

१—भगवान मल्लिनाथ, पूर्वभव में कौन थे और किस कारण से इस भव में स्त्री होना पड़ा था ?

२—माता के गर्भ में भगवान, कहां से, कितनी आयु भोग कर पधारे थे ? भगवान के माता-पिता और जन्म स्थान का नाम क्या था ?

३—भगवान का नाम मल्लिनाथ क्यों हुआ ?

४—भगवान, छद्मस्थावस्था में कितने काल तक रहे थे ?

५—भगवान मल्लिनाथ के संघ की भिन्न-भिन्न संख्या क्या थी ?

६—भगवान मल्लिनाथ की जन्म तिथि, दीक्षा तिथि, केवल ज्ञान तिथि और निर्वाण तिथि बताओ ?

७—भगवान मल्लिनाथ और भगवान कुन्थुनाथ के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा ?

२०

भगवान श्री मुनिसुव्रत

प्रार्थना

श्लोकः—
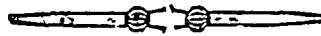
सीमन्तिनीमिवपतिः समगंस्त सिद्धिं,
निर्माय विस्मित महामुनि सुव्रतत्त्वम् ।
सोऽयं मम प्रतनुतामनुतां भवस्य,
निर्माय विस्मित महा मुनिसुव्रत त्वम् ॥

भावार्थ—हे भगवन ! आप माया रहित महातेजस्वी हैं। आपने अपनी तपस्या से महामुनियों को भी चकित कर दिये थे। जैसे पति पत्नी से मिलता है इसी तरह आपने भी उत्तम व्रत के पालन द्वारा मुक्ति सुन्दरी को प्राप्त की है। प्रभो ! मैं भी संसार को नष्ट करसकूं, ऐसी शक्ति मुझे प्रदान करो।

पूर्व भव

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में; चम्पा नाम की एक नगरी थी। वहां, सुरश्रेष्ठ राजा राज्य करता था। सुरश्रेष्ठ राजा, दानी, धर्मात्मा और वीर था। उसने लीला मात्र में सब राजाओं को अपने अधीन कर लिया था।

एक समय, नन्दन नाम के मुनि, चम्पा नगरी के उद्यान में पधारे। राजा सुरश्रेष्ठ, मुनि को वन्दन करने गया। मोह-पंक को नष्ट करने योग्य मुनि की वाणी सुनने से, राजा सुरश्रेष्ठ को प्रबल वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसने, तत्काल राज-पाट आदि संसार-सम्बन्ध त्याग दिया और संयम स्वीकार कर लिया। संयम का पालन और वीस स्थानकों में से कितने ही स्थानकों की आराधना उत्कृष्ट भावों से करके सुरश्रेष्ठ मुनि ने तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में, अनशन करके समाधि-पूर्वक शरीर त्याग, अपराजित विमान में बत्तीस सागरोपम का आयुष्यवाला अहमिन्द्र देव हुआ।

वर्तमान भव

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, मगधदेश के अन्तर्गत राजगृह नाम का नगर था। वहां हरिवंश कुलोत्पन्न सुमित्र राजा राज्य करता था। सुमित्र के पद्मावती नाम की रूप गुणसम्पन्ना रानी थी।

अपराजित विमान का आयुष्य भोग कर सुरश्रेष्ठ का जीव श्रावण शुक्ला पूर्णिमा की रात को--जब चन्द्र, श्रवण नक्षत्र में था--महारानी पद्मावती के गर्भ में आया। तीर्थंकर के गर्भ-सूचक महास्वप्न देखकर महारानी जाग उठीं। पति से स्वप्नों का फल सुनकर वे प्रसन्न हुईं और गर्भ का पोषण करने लगीं। गर्भकाल समाप्त होने पर, ज्येष्ठ कृष्ण ८ को--जब चन्द्र, श्रवण नक्षत्र में था--महारानी पद्मावती ने, कूर्म चिन्ह युक्त श्यामवर्णी पुत्र को जन्म दिया। इन्द्र, दिक्कुमारियों और देवों ने, भगवान का जन्म कल्याण मनाया।

प्रातःकाल महाराजा सुमित्र ने पुत्र जन्मोत्सव मना कर, बालक का नाम मुनिसुव्रत रखा। तीनज्ञानधारक भगवान मुनिसुव्रत, बाल्यावस्था व्यतीत कर, युवावस्था को प्राप्त हुए। उस समय उनका सर्वाङ्ग सुन्दर बीस धनुष ऊँचा शरीर, बहुत ही शोभायमान मालूम होता था। महाराजा सुमित्र ने, कुमार मुनिसुव्रत से प्रभावती आदि अनेक राजकन्यों का विवाह करा दिया। कुमार मुनिसुव्रत, अपनी पत्नियों के साथ आनन्दोपभोग करने लगे। मुनिसुव्रत की प्रधान पत्नी प्रभावती के गर्भ से एक पुत्र भी हुआ, जिसका नाम सुव्रत रखा गया।

कुमार मुनिसुव्रत जब साढ़े सात हजार वर्ष की अवस्था के हुए, तब महाराजा सुमित्र ने समस्त राजपाट कुमार मुनिसुव्रत

को सौंप दिया। भगवान, राज्य करते हुए प्रजा का पालन करने लगे। राज्य करते-करते जब पन्द्रह हजार वर्ष बीत गये, तब भगवान ने विचार किया कि अब मेरे भोग फल देने वाले कर्म क्षय होने आये हैं, इसलिए अब मुझे राजपाट त्यागने की तैयारी करनी चाहिए। भगवान ने ऐसा विचार किया, इतने ही में लोकान्तिक देवों ने, आकर भगवान से प्रार्थना की, कि—हे प्रभो अब धर्म तीर्थ प्रवर्ताइये। भगवान ने उसी समय, अपने पुत्र सुव्रत को राज्य देकर वार्षिकदान देना प्रारम्भ कर दिया।

वार्षिकदान की समाप्ति पर, राजा सुव्रत इन्द्र और देवों ने भगवान का निष्क्रमणोत्सव मनाया। भगवान, अपराजिता नाम्नी शिविका में विराजकर, नील गुहा नाम के उद्यान में पधारे। उद्यान में पहुंचकर भगवान ने, शिविका एवं आभूषणादि त्याग दिये और फाल्गुन शुक्ला १२ को श्रवण नक्षत्र में दिन के पिछले पहर में एक सहस्र राजाओं सहित छठ्ठ के तप में चारित्र स्वीकार किया। चारित्र ग्रहण करते ही, भगवान को मनः पर्यय नाम का चौथा ज्ञान हुआ। भगवान, राजगृही से विहार कर गये। दूसरे दिन, ब्रह्मदत्त राजा के यहां भगवान ने क्षीर से पारणा किया। पश्चात भगवान, संग एवं ममत्व रहित अनेक प्रकार के तप और अभिग्रह करते हुए ग्यारह मास तक जनपद में विचरते रहे।

विचरते हुए भगवान, राजगृह के उसी नीलगुहा उद्या

पधारे। वहां चम्पा वृक्ष के नीचे भगवान प्रतिमा धारण करके स्थित रहे। उस समय भगवान ने शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि से समस्त घातिक कर्मों को भस्म कर दिया, जिससे भगवान को केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हुआ। भगवान को केवलज्ञान होते ही, त्रिलोक में, क्षणिक प्रकाश हुआ।

आसन कम्प से, इन्द्रादि देवों ने भगवान को केवलज्ञान हुआ जाना। उन्होंने उपस्थित होकर केवलज्ञान-महोत्सव मनाया। समवशरण की रचना हुई, जिसमें बैठकर बारह प्रकार की परिषद् ने भगवान मुनिसुव्रत की वाणी सुनी भगवान की वाणी सुनकर, अनेकों ने दीक्षा ली, अनेकों ने श्रावक व्रत स्वीकार किये और अनेकों ने सम्यक्त्व ग्रहण किया।

भगवान मुनिसुव्रत ग्यारह मास कम साढ़े सात हजार वर्ष तक केवली पर्याय में जन-पद में विचरते रहे और अनेक भव्य जीवों का कल्याण करते रहे। अपना निर्वाणकाल समीप जान कर, एक सहस्र मुनियों सहित भगवान, सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहां अनशन करके, ज्येष्ठ कृष्णा ९ को श्रवण नक्षत्र में शैलेशी अवस्था को प्राप्त हो चार अघातिक कर्मों का अन्त कर भगवान मुनिसुव्रत, मोक्ष पधारे।

भगवान मुनिसुव्रत के इन्द्र कुम्भ आदि अठारह गणधर थे। तीस हजार मुनि थे। पचास हजार साध्वियां थी। एक

लाख बहत्तर हजार श्रावक थे और तीन लाख पचास हजार श्राविकाएं थी।

भगवान मुनिसुव्रत, साढ़े सात हजार वर्ष कुमार पद पर रहे। पन्द्रह हजार वर्ष तक राज्य करते रहे। ग्यारह मास छद्मस्थ-अवस्था में विचरे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार भगवान ने सब तीस हजार वर्ष का आयुष्य पाया और भगवान मल्लिनाथ के निर्वाण के छः लाख वर्ष पश्चात सिद्ध पद प्राप्त किया।

प्रश्नः—

१—भगवान मुनिसुव्रत पूर्व भव में कौन थे ?

२—भगवान मुनिसुव्रत के जन्मस्थान और माता-पिता का नाम क्या था ?

३—भगवान मुनिसुव्रत की सबसे बड़ी पत्नी का नाम क्या था ?

४—भगवान मुनिसुव्रत ने किस अवस्था में दीक्षा ली थी ?

५—भगवान की अवस्था का भिन्न-भिन्न हिसाब बताओ ?

६—भगवान की जन्मतिथि, दीक्षातिथि, केवल—ज्ञान तिथि और निर्वाण तिथि बताओ ?

७—भगवान मुनिसुव्रत के निर्वाण में और भगवान शान्तिनाथ के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा ?

२१

भगवान श्री नमिनाथ

प्रार्थना
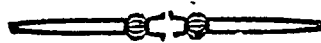
श्लोकः—

देवेन्द्र वृन्द परिसेवित सत्व दत्त,
सत्यागमो मदनमेघ महानिलाभः।
मथ्नासिनाथ रतिनाथ सुरूप रूपः,
सत्यागमोऽमद नमेऽघमऽहानि लाभः॥

भावार्थ--कामदेवरूपी मेघ को दूर करने में महापवन समान हे नमिनाथ जिन ! मेरे पापों को नष्ट करो। इन्द्रगण भी आपकी सेवा करते हैं, आपका शरीर कामदेव के समान सुन्दर है। सम्यक् आगम ही आपके सिद्धान्त हैं और सर्वदा सदा आप शाश्वत हैं।

पूर्व भव

इसी जम्बू द्वीप के पश्चिम महाविदेह में कौशाम्बी नाम की एक नगरी थी। वहां सिद्धार्थ नाम का परोपकारी और गुणवान राजा राज्य करता था। समय पाकर सिद्धार्थ राजा ने, सुदर्शन मुनि के पास संयम ले लिया। संयम का निरतिचार पालन और बीसबोल में से कितने ही बोलों की आराधना करके सिद्धार्थ ने, तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया। अन्त में, समाधि-पूर्वक शरीर त्याग, सिद्धार्थ मुनि, दसवें प्राणत देवलोक में बीस सागर की आयु वाले उत्कृष्ट देव हुए।

अन्तिम भव

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, मिथिला नाम की नगरी थी जो पृथ्वी पर [illegible] [illegible] नाम के राजा थे, जिनके [illegible] रानी का नाम वप्रा था।

कर कि तीर्थङ्कर जन्म लेंगे, वप्रादेवी बहुत प्रसन्न हुई और सावधानी से गर्भ पोषण करने लगी।

गर्भ काल समाप्त होने पर, महारानी वप्रादेवी ने, श्रावण कृष्ण ८ की रात को नीलकमल के लक्षण वाले अनुपम पुत्र को जन्म दिया। आसनकम्प से, इक्कीसवें तीर्थङ्कर का जन्म हुआ जान कर, इंद्र और देवी, देव ने सुमेरु गिरि पर भगवान का जन्म-कल्याण मनाया। प्रातःकाल महाराजा विजयसेन ने भी पुत्र जन्मोत्सव किया।

जिस समय भगवान गर्भ में थे, उस समय विजयसेन के शत्रुओं ने मिथिलापुरी को चारों ओर से घेर लिया था। लेकिन महारानी वप्रादेवी ने महल पर चढ़ कर जैसे ही चारों ओर दृष्टि डाली, वैसे ही शत्रुदल विजयसेन के सन्मुख नम्र बन गया। इस घटना को दृष्टि में रख कर विजयसेन ने भगवान का नाम नमीनाथ रखा।

भगवान नमिनाथ, अनेक दास-दासियों के संरक्षण में वृद्धि पाने लगे। बाल्यकाल समाप्त कर भगवान, युवक हुए। युवावस्था में भगवान का पन्द्रह धनुष ऊंचा, स्वर्णकान्ति को लज्जित करने वाला शरीर अनुपम सुन्दर मालूम होता था। माता-पिता ने, अनेक राजकन्याओं का भगवान के साथ विवाह कर दिया। अपनी पत्नियों के साथ दाम्पत्य सुख भोगने लगे।

भगवान नमिनाथ की आयु जब ढाई हजार वर्ष की हुई, तब महाराजा विजयसेन ने मिथिलापुरी का राज्य भगवान को सौंप दिया। भोगफल देने वाले कर्मों की निर्जरा करते हुए भगवान नमिनाथ, पांच हजार वर्ष तक राज्य-सुख भोगते रहे। एक दिन भगवान आत्मचिन्तन में तल्लीन थे, इतने ही में लोकान्तिक देवों ने आकर भगवान से प्रार्थना की, कि हे प्रभो, अब धर्म-तीर्थ प्रवर्ताइये। देवों की इस प्रार्थना पर से भगवान ने अपने पुत्र सुप्रभ को राज-पाट सौंप दिया और स्वयं वार्षिकदान देने लगे।

वार्षिकदान की समाप्ति पर, आषाढ़ कृष्ण ९ को दिन के पिछले पहर में भगवान नमिनाथ ने, छट्ठ के तप में, एक हजार पुरुषों के साथ संयम स्वीकार किया। संयम में प्रवर्जित होते ही, भगवान को चौथा मनः पर्यय नाम का ज्ञान हुआ। भगवान, वहां से विहार कर गये। दूसरे दिन, दत्त राजा के यहां भगवान नमिनाथ का पारणा हुआ। दान की महिमा दर्शाने के लिए, देवों ने पांच दिव्य प्रकट किये।

भगवान नमिनाथ, अप्रमत्तपने से नव मास तक छद्मस्थ-अवस्था में विचरते रहे। विचरते और कर्मों की निर्जरा करते हुए भगवान, वापिस मिथिलापुरी के उसी सहस्राम्र बाग में पधारे, जिसमें भगवान ने संयम स्वीकार किया था। वहां मोरसली वृक्ष के नीचे, छट्ठ का तप करके भगवान, प्रतिमा धारण करके रहे।

ध्यान की तीव्रता से भगवान ने, घातिक कर्मों का क्षय करदिया इससे मार्गशीर्ष शुक्ला ११ को अश्विनी नक्षत्र में, भगवान को अनन्त केवलज्ञान और अनन्त केवलदर्शन प्राप्त हुआ। भगवान को केवलज्ञान हुआ जानकर, इन्द्रादिक देवों ने उपस्थित हो केवलज्ञान महोत्सव मनाया। समवशरण की रचाना हुई, जिसमें बैठकर द्वादश प्रकार की परिषद ने, भगवान की दिव्यवाणी श्रवण की। भगवान की देशना श्रवण करके अनेक भव्य जीव, प्रतिबोध पाये।

भगवान नमिनाथ, नवमास कम ढाई हजार वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते रहे और भव्य जीवों को मोक्ष का मार्ग बताते रहे। अपना निर्वाणकाल समीप जानकर एक हजार मुनियों सहित भगवान नमिनाथ, सम्मेत शिखर पर पधार गये। वहां भगवान ने अनशन कर लिया, जो एक मास तक चलता रहा। अन्त में भगवान ने अयोगी और अलेशी अवस्था में पहुच कर, सिद्ध पद प्राप्त किया।

भगवान नमिनाथ के, शम्भुज आदि सत्रह गणधर थे। बीस हजार मुनि थे। इकतालिस हजार साध्वियां थीं। एक लाख सत्तर हजार श्रावक थे और तीन लाख अड़तालिस हजार श्राविकाएं थीं।

भगवान नमिनाथ ढाई हजार वर्ष तक कुमार पद पर रहे।

पांच हजार वर्ष तक राज्य करते रहे। नव मास छद्मस्थ-अवस्था में विचरते रहे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार दस हजार वर्ष का आयुष्य भोगकर भगवान नमिनाथ, भगवान श्री मुनिसुव्रत के निर्वाण के छः लाख वर्ष पश्चात मोक्ष पधारे ?

प्रश्न—

१—भगवान श्री नमिनाथ, पूर्व-भव में कौन थे ?

२—भगवान श्री नमिनाथ, माता के गर्भ में किस गति का कितना आयुष्य भोगकर पधारे थे ?

३—भगवान के माता-पिता और जन्मस्थान का नाम क्या था।

४—भगवान नमिनाथ का नाम, नमिनाथ क्यों दिया गया था ?

५—भगवान नमिनाथ ने अपनी आयु किस-किस कार्य में कितनी-कितनी बिताई ?

६—भगवान नमिनाथ के तीर्थ की भिन्न-भिन्न संख्या क्या थी ?

७—भगवान नमिनाथ के निर्वाण में और भगवान मल्लि-नाथ के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा था ?

२२
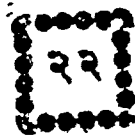
भगवान श्री अरिष्टनेमि

प्रार्थना

श्लोकः—

यो रेवताख्य गिरि मूर्ध्नि तपांसि भोग,
राजीमऽतीत्य जनमारचयांचकार।
नेमि जना नमत यो विगतन्तरारि,
राजीमतीत्य जनमारचयांचकार॥

भावार्थ—हे 'भव्यों' तुम विषय सेवन को छोड़कर जिसने उग्रसेन की पुत्री राजिमति का त्याग करके रेवतगिरी व उज्जयन्त शिखर पर तप किया था उन अरिष्टनेमिनाथ को भजो और जिनके अन्तराय रूपी कर्म ही नष्ट होगया है उन्हीं को प्रणाम करो।

पूर्वभव

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, अचलपुर नाम का नगर था। वहां विक्रमधन नाम का राजा राज्य करता था, जिसकी धारिणी नाम्नी सुशीला रानी थी।

एक रात को धारिणी रानी ने स्वप्न देखा कि एक आम का वृक्ष फूला फला हुआ है, जिसके लिए एक पुरुष कहता है कि यह वृक्ष पृथक्-पृथक् स्थान पर नव वार स्थापित होगा। रानी से यह स्वप्न अपने पति को सुनाया। राजा विक्रमधन ने स्वप्नपाठकों से रानी के स्वप्न का फल पूछा। स्वप्न पाठकों ने कहा कि स्वप्न के प्रभाव से रानी, एक उत्कृष्ट पुत्र को जन्म देगी, परन्तु स्वप्न का आम्र-वृक्ष, भिन्न-भिन्न स्थान पर नव वार स्थापित होगा, इसका आशय हम नहीं कह सकते, केवली भगवान ही कह सकते हैं।

समय पर रानी ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। विक्रमधन ने, पुत्र का नाम धनकुँवर रखा। जब धनकुँवर युवक हुआ, तब उसका विवाह कुसुमपुर के राजा सिंहरथ की कन्या धनकुमारी के साथ हुआ।

एक समय धनकुँवर घोड़े पर बैठ, वन-क्रीड़ार्थ उद्यान में गया। वहां, चतुर्विध ज्ञानी वसुन्धर मुनि वन्दना देने [illegible]

कुँवर भी देशना सुनने बैठ गया। पीछे से राजा विक्रमधन आदि भी मुनि की देशना सुनने के लिए आये। देशना की समाप्ति पर, राजा विक्रमधन वसुन्धर मुनि से पूछने लगा कि हे महाभाग,जब यह मेरा पुत्र धनकुमार गर्भ में था, तब इसकी माता ने स्वप्न में एक फलाफूला आम्र-वृत्त देखा था,और स्वप्न में ही किसी ने इसकी माता से यह भी कहा था, कि यह आम्र वृत्त, भिन्न-भिन्न स्थान पर नव बार स्थापित होगा। स्वप्न प्रभाव से,रानी ने इस धनकुमार पुत्र को जन्म दिया,परन्तु स्वप्न में रानी से किसी ने जो यह कहा था कि यह आम्र-वृत्त भिन्न-भिन्न स्थान पर नव बार स्थापित होगा, इसका क्या मतलब ? राजा का प्रश्न सुनकर महाज्ञानी वसुन्धर मुनि ने, ध्यानस्थ हो, वहां से दूर विराजे हुए केवली भगवान से सम्यक् ज्ञानार्थ मन द्वारा यह प्रश्न किया,कि विक्रमधन के प्रश्न का उत्तर क्या है ? केवली भगवान ने, मुनि के प्रश्न के उत्तर में, भावी तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि के चरित्र की ओर इशारा किया। अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान द्वारा केवली भगवान के मनोगत अपने प्रश्न के उत्तर सम्बन्धी उक्त भावों को जान कर, मुनि ने, राजा विक्रमधन से उसके प्रश्न के उत्तर में कहा,कि तुम्हारा यह धनकुमार पुत्र, इस भव के पश्चात और भव करता हुआ,नवमें भव में इसी भरतक्षेत्र में अरिष्टनेमी नाम का बाईसवां तीर्थङ्कर होगा। यह सुनकर अपने साथियों

सहित विक्रमधन बहुत प्रसन्न हुआ और मुनि को वन्दन नमस्कार करके अपने घर आया।

एक समय धनकुमार अपनी पत्नि धनवती के साथ जलक्रीड़ा करने सरोवर पर गया। वहां, धनवती ने देखा कि एक मुनि, मूर्छितावस्था में भूमि पर पड़े हुए हैं। धूप और परिश्रम के मारे उनका कण्ठ प्यास से सूख रहा है तथा फटे हुए पांवों में से रक्त भी निकल रहा है धनवती ने, अपने पति का ध्यान मुनि की ओर आकर्षित किया। मुनि को देख कर धनकुमार धनवती सहित मुनि के पास आया। दम्पति ने, शीतलोपचार से मुनि को स्वस्थ किया। मुनि ने, दम्पति को धर्मोपदेश दिया, जिसे सुनकर धनकुमार और धनवती ने, श्रावक व्रत स्वीकार किये। कुछ काल रह कर, वे मुनि अन्यत्र विहार कर गये।

समय देखकर, राजा विक्रमधन ने, अचलपुर का राज-पाट अपने पुत्र धनकुमार को सौंप दिया और स्वयं आत्म-कल्याण करने में लग गया। धनकुमार, राजा बनकर अचलपुर का राज्य करने लगा। पुण्य-योग से—जिसने धनकुमार, के भावी भव बताये थे वे—वसुन्धर मुनि, विचरते-विचरते अचलपुर नगर में पधारे। रानी सहित महाराजा धन, मुनि को वन्दना करने गये। मुनि का उपदेश सुनकर दम्पति को संसार से विरक्ति हो गई। धन राजा और धनवती रानी ने, वसुन्धर मुनि से संयम

स्वीकार कर लिया। धन राजा, संयम लेने के पश्चात गुरु के साथ रह कर अनेक प्रकार के कठिन तप तपने लगे। वे गीतार्थ हुए, तब उन्हें आचार्य पद से विभूषित किये गये। धन मुनि ने, अनेक भव्य जीवों को कल्याण-मार्ग बताया। अन्त में अनशन द्वारा शरीर त्याग धनवती सहित धन मुनि, प्रथमसौधर्म-देवलोक में, शक्रेन्द्र के सामानिक इन्द्र हुए।

प्रथम सौधर्म देवलोक का आयुष्य समाप्त करके, धन राजा का जीव, वैताढ्यगिरि की उत्तर श्रेणी में स्थित सूरःतेज नगर के सूर राजा की विद्युन्मति रानी के उदर से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ; जिसका नाम चित्रगति रखा गया। दूसरी ओर, इसी भरतक्षेत्र के वैताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणी में स्थित शिवमन्दिर नगर के राजा अनंगसिंह की पत्नी शशिप्रभा के उदर से धनवती का जीव—प्रथम देवलोक का आयुष्य समाप्त करके—पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रत्नवती रखा गया। एक समय राजा अनंगसिंह ने किसी निमित्तिया से पूछा, कि इस रत्नवती कन्या का पति कौन होगा? निमित्तिया ने उत्तर दिया कि, जो व्यक्ति आपके पास से खड्ग रत्न लेगा और जिस पर देव, वृष्टि करेंगे, वही इस कन्या का पति होगा। भविष्य में निमित्तिया का यह कथन सही हुआ। चित्रगति का विवाह, रत्नवती के साथ हो गया।

सूर राजा ने, चित्रगति को राज्य सौंप कर आत्म कल्याण

गया। विद्याधर-पति चित्रगति, रत्नवती के साथ सानन्द राज-सुख भोगने लगा। कुछ काल पश्चात चित्रगति के एक सामन्त मणिचूल राजा का देहान्त हो गया। मणिचूल राजा के शशि और शूर नाम के दोनों पुत्र, आपस में लड़ने लगे। इन दोनों को लड़ते देखकर, चित्रगती और रत्नवती को संसार से वैराग्य हो गया। दोनों ही ने दीक्षा ले ली। चिरकाल तक व्रत और तप की आराधना करके चित्रगति और रत्नवती का जीव, महेन्द्र कल्प नामक चतुर्थ देवलोक में उत्पन्न हुआ।

पूर्वमहाविदेह की पद्म नाम्नी विजय में सिंहपुर नाम का नगर था। वहां, हरिणंदी नाम का राजा था, जिसकी रानी का नाम, प्रियदर्शना था। महेन्द्रकल्प का आयुष्य समाप्त करके चित्रगति का जीव, प्रियदर्शना के गर्भ में आया। रानी ने, शुभ स्वप्न देखा। समय पर, रानी प्रियदर्शना ने एक पुत्र प्रसव किया। हरिणंदी राजा ने, पुत्रजन्मोत्सव मना कर, बालक का नाम अपराजित रखा। जब अपराजित, बड़ा हुआ, तब उसकी मैत्री, बचपन से साथ रहने वाले विमलबोध नाम के मन्त्री-पुत्र से होगई।

एक बार अपराजित और विमलबोध दोनों ही मित्र, अश्वारूढ़ हो, वन में गये। वहां, दोनों के घोड़े, दोनों को, एक गहन जंगल में ले दौड़े और रोकने पर भी न रुके। जब घोड़े

स्वयं ही थक कर रुके, तब दोनों मित्र घोड़ो पर से उतरे। घोड़े पर से उतर कर, कुमार अपराजीत ने विमलबोध से कहा कि अपने को ये घोड़े यहां ले आये, यह एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। अब अपन इसी सिलसिले में पृथ्वी-पर्यटन भी कर सकेंगे। विमलबोध ने, अपराजित की बात का समर्थन किया। दोनों मित्र, भ्रमण के लिए चल दिये भ्रमण करते हुए और भूचर[1] खेचर[2] अनेक राज-कन्याओं के साथ विवाह करते हुए दोनों मित्र जनानन्द नगर में आये।

महेन्द्र देवलोक का आयुष्य समाप्त करके रत्नवती का जीव इसी जनानन्द नगर के जितशत्रु राजा की रानी धारिणी के गर्भ से पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम प्रीतिमती था। अपने मित्र विमलबोध सहित अपराजित कुमार जिस समय जनानन्द नगर में आया हुआ था, उस समय प्रीतिमती के लिए स्वयंवर हो रहा था, अपराजित ने, स्वयंवर में प्रीतिमती को प्राप्त किया। प्रीतिमती के साथ विवाह करके, अपने मित्र सहित कुमार अपराजित, बहुत-सी ऋद्धि के साथ अपने नगर सिंहपुर को लौटा। अपराजित कुमार को सब प्रकार से योग्य देख कर, राजा हरिणन्दी ने सिंहपुर का राज्य अपराजित को सौंप दिया और आत्मकल्याण करने लगा।

१-पृथ्वी पर रहने वाले। २-आकाश मे रहनेवाले विद्याधरादि।

अपराजित राजा हुआ। एक वार वह उद्यान में गया। वहां उसने देखा, कि एक सार्थवाह का पुत्र दिव्य वस्त्रालंकार पहने, अपने मित्र एवं अपनी स्त्रियों सहित घूम रहा है। राजा अपराजित, उसे देख कर सन्तुष्ट हुआ और यह जान कर उसे अभिमान भी हुआ कि मेरे नगर में ऐसे ऐसे सेठ तथा श्रीमन्त भी हैं। इस प्रकार अभिमान करता हुआ, अपराजित राजा अपने स्थान को लौट आया। दूसरे दिन, राजा फिर वाहर घूमने के लिए निकला। उस समय उसने देखा, कि चार पुरुषों से उठाया हुआ एक शव आरहा है, जिसके साथ शोकसूचक वाजा वज रहा है, और पीछे स्त्रियां एवं कुटुम्बी-जन हाय-हाय करके विलाप कर रहे हैं, सेवकों द्वारा राजा ने जब यह जाना कि यह सब उसी सार्थवाह-पुत्र का है, जो कल उद्यान में मिला था और जिसे देख कर मुझे प्रसन्नता हुई थी, तब राजा को संसार से घृणा होगई। वह संसार के अनित्य-रूप को समझ गया। इसी बीच में, जनता का उपकार करते हुए, केवली भगवान, सिंहपुर नगर में पधारे। राजा अपराजित ने, भगवान का उपदेश सुना; जिससे प्रतिबोध पाकर, उसने राजपाट अपने पुत्र कुमारपद्म को सौंप दिया और स्वयं अपनी रानी प्रीतिमती तथा अपने मंत्री आदि सहित संयम में प्रवर्जित हो गया।

अन्त में, कठिन तपपूर्वक शरीर त्याग, अपराजित का जीव, अरणक देवलोक में, महाऋद्धिवंत देव हुआ।

इसी भरतक्षेत्र के कुरुदेश में, हस्तिनापुर नामक नगर था। वहां श्रीसेन नाम का राजा था, जिसके श्रीमती नाम की पटरानी थी। अपराजित का जीव, अरणक देवलोक का आयुष्य भोग कर, श्रीमती के गर्भ में आया। श्रीमती ने स्वप्न में चंद्र देखा। परिणामतः गर्भकाल की समाप्ति पर श्रीमती ने, शुभलक्षण-संपन्न पुत्र को जन्म दिया। श्रीसेन ने, पुत्रजन्मोत्सव मना कर, बालक का नाम शंखकुमार रखा। अपराजित के मित्र विमलबोध का जीव भी अरणक देवलोक का आयुष्य समाप्त करके, श्रीसेन राजा के मंत्री गुणनिधि के यहां, पुत्र रूप में जन्मा; जिसका नाम मतिप्रभ हुआ। शंखकुमार और मतिप्रभ में, बाल्यकाल से ही गाढ़ी मैत्री हो गई। दोनों वृद्धि पाने लगे। उधर, अंग देशान्तर्गत चम्पानगरी के राजा जितारि के यहां, प्रीतिमती का जीव भी--अरणक देवलोक का आयुष्य समाप्त करके—पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ, जिसका नाम यशोमति रखा गया। यशोमति, महान् रूपवती थी, इस कारण एक विद्याधर उसे हरण करके भागा। शंखकुमार ने, विद्याधर से यशोमति का उद्धार किया और यशोमति के आग्रह से उसका विवाह अपने साथ कर लिया।

बहुत काल तक पिता द्वारा प्राप्त राज्य का उपभोग करके

अपने मंत्री आदि और अपनी रानी यशोमति सहित शंख राजा, केवली भगवान श्रीसेन के पास संयम में प्रवर्जित हो गये। चारित्र का पालन, एवं बीस बोलों में से अनेक वोलों की आराधना करके शंख मुनि ने, तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया और अन्त में अनशन द्वारा समाधि पूर्वक शरीर त्याग कर अपराजित नाम के चौथे अनुत्तर विमान में, सर्वपरममहार्द्धिक अहमिन्द्र हुए।

अन्तिम भव

इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में, यमुनातट पर, शौर्यपुर नाम का एक नगर था। वहाँ, समुद्र विजय नाम के प्रथम दशार्ह राजा राज्य करते थे। समुद्रविजय, दस भाई थे, जो दस-दशार्ह के नाम से प्रख्यात थे। ये दसों भाई, यदुवंशी थे। समुद्रविज सब भाइयों में बड़े थे। समुद्रविजय के शिवादेवी नाम्नी रानीथीं जो गुण और सौन्दर्य में अनुपम थीं।

अपराजित विमान से बत्तीस सागरोपम का आयुष्य समाप्त करके शंख राजा का जीव, कार्तिक कृष्णा १२ की रात को जब चन्द्र, चित्रा नक्षत्र में आया तब—महारानी शिवादेवी की कुक्षि-कन्दरा में अवतीर्ण हुआ। सुख-शैया पर शयन की हुई महारानी शिवादेवी ने, तीर्थङ्कर के गर्भसूचक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्न देख कर महारानी शिवादेवी जाग उठीं! उन्होंने

महाराजा समुद्रविजय को स्वयंने देखे हुए स्वप्न सुनाये, जिन्हें सुन कर महाराजा समुद्रविजय ने महारानी शिवादेवी से यह कहा, कि तुम महाभाग्यशाली पुत्र की माता बनोगी। यह सुन कर महारानी शिवादेवी बहुत प्रसन्न हुई, और धर्मध्यान करके शेष रात व्यतीत की।

प्रातःकाल महाराजा समुद्रविजय ने कौष्टुकी को बुलाकर, उनसे शिवादेवी के देखे हुए, स्वप्नों का फल पूछा। इतने ही में, योगायोग से एक चारण मुनि भी पधार गये। राजा रानीने चारण मुनि को वन्दन करके स्वप्नों का फल पूछा। मुनि ने उत्तर दिया कि तुम्हारे यहाँ, भगवान तीर्थंकर पुत्र-रूप में उत्पन्न होंगे। यह कह कर मुनि पधार गये। महाराजा समुद्रविजय और महारानी शिवादेवी को स्वप्न-फल सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने स्वप्न पाठकों को प्रचुर धन देकर सम्मान-पूर्वक विदा किया।

महारानी शिवादेवी, गर्भ का पालन करने लगी। गर्भकाल समाप्त होने पर, महारानी शिवादेवी ने श्रावण शुक्ला ५ की रात को—जब चन्द्र चित्रा नक्षत्र में आया हुआ था—श्यामवर्ण और शंख के चिन्ह वाले मनोहर कान्तिधारी पुत्र को जन्म दिया। भगवान का जन्म होते ही क्षण भर के लिए त्रिलोक में प्रकाश हो गया और नारकीय जीवों को भी शांति मिली। भगवान का जन्म हुआ जान कर, छप्पन दिक्कुमारियों एवं

देवों सहित इन्द्रों ने, सुमेरु गिरि पर भगवान का जन्म-कल्याणोत्सव मनाया। प्रातःकाल महाराजा समुद्रविजय ने भी पुत्रजन्मोत्सव करके भगवान का अरिष्टनेमि नाम दिया। समुद्र-विजय के भाई वसुदेव ने भी मथुरा में, भगवान का जन्मोत्सव मनाया। अंगुठामृत का पान करते हुए भगवान, अप्सराओं के पालन-पोषण में वृद्धि पाने लगे।

एक बार, बालक्रिड़ा करते हुए भगवान अरिष्टनेमि ने मोतियों की मुट्ठी में भर-भर कर इधर-उधर फेंक दिया। स्त्री-स्वभावानुसार माता शिवादेवी, इसके लिए भगवान को उपा-लम्भ देने लगीं। उसी समय इन्द्र ने, जिस-जिस स्थान पर भगवान द्वारा फेंके गये मोती पड़े थे, उस-उस स्थान पर, मोती के झाड़ खड़े कर दिये, जिनकी प्रत्येक डाली पर, मोतियों के गुच्छे लग रहे थे। यह देखकर महारानी शिवादेवी बहुत प्रसन्न हुई और भगवान से कहने लगीं, कि— पुत्र और भी मोती बोओ। माता की इस बात के उत्तर में भगवान ने कहा—माता, मोती समय पर ही उगते हैं। भगवान ने यह कहा, उसी समय से संसार में यह कहावत प्रचलित हो गई, कि 'समय पर बोये हुए ही मोती निपजते हैं।'

भगवान अरिष्टनेमि जब बाल्यावस्था में थे, उन्हीं दिनों में मथुरा में, कृष्ण ने राजा कंश का वध किया था। कंस की

रानी जीवयशा,अपने पिता जरासंध प्रतिवासुदेव-जो तीन खंड पृथ्वी का स्वामी था—के पास गई और उसने जरासंध को यादवों के विरुद्ध उकसाया। जरासन्ध ने अपना दूत महाराजा समुद्रविजय के पास भेज कर उसके द्वारा राम और कृष्ण की माँग की। समुद्रविजय ने,राम और कृष्ण को भेजने से इन्कार कर दिया। परिणामतः विरोध ने जोर पकड़ा। समुद्रविजय ने नैमित्तिक से पूछा,तो उसने यह कहा,कि इस समय यदुवंशियों का कल्याण, शौर्यपुर छोड़कर पश्चिम दिशा की ओर जाने में ही है। नैमित्तिक की बात मान कर, माहाराजा समुद्रविजय, उग्रसेन सहित अठारह क्रोड़ यदुवंशियों को लेकर शौर्यपुर से निकल पड़े। सब यादव, सौराष्ट्र में आये। सौराष्ट्र में, जहाँ यादवों का पड़ाव हुआ, वहां श्रीकृष्ण ने अष्टम तप करके देवता का स्मरण किया। स्मरण करते ही, लवणसुष्टि देव, कृष्ण के सामने उपस्थित हुआ। श्रीकृष्ण ने उससे कहा, कि हम लोगों को रहने के लिए स्थान चाहिए। लवणसुष्टि देव ने उत्तर दिया, की मैं अभी इन्द्र को आपकी बात से परिचित करता हूँ।

लवणसुष्टि देव,तत्काल सौधर्म-पति इन्द्र के पास उपस्थित हुआ और सब वृत्तान्त उन्हें सुनाया। सब वृत्तान्त सुनकर इन्द्र ने कहा,कि यादवों में कृष्ण बलराम और भगवान अरिष्टनेमि ऐसे तीन लोकोत्तम पुरुष हैं, यदि ये चाहें तो क्षण में ही त्रिलोक

को जीत सकते हैं, फिर भी ये, समय की प्रतिक्षा करते हैं, असमय में कोई काम नहीं करना चाहते। यह कह कर इन्द्र ने वेसमण धनपति देव को यादवों के लिए एक नगरी निर्माण करने की आज्ञा दी। इन्द्र की आज्ञा पाकर अनेक देव, नगरी की रचना करने में लग गये और रात-ही-रात में बारह योजन लम्बी नव योजन चौड़ी साक्षात देवलोक जैसी नगरी बना डाली। प्रातःकाल यादव लोग देखते हैं, कि उनके लिए एक रम्य नगरी तैयार है। समस्त यादवों ने, उस नवप्रणिता नगरी में प्रवेश किया और उसमें बस गये। उस स्वर्ण के कोट और रत्न के कंगूरे वाली नगरी का नाम द्वारका रखा गया। श्रीकृष्ण वासुदेव को उस नगरी का राजा बनाया गया।

जब मगधाधिप जरासन्धने श्रीकृष्ण और द्वारका का समाचार सुना, तो उसने द्वारका पर चढ़ाई कर दी। श्रीकृष्ण भी, युद्ध की तैयारी करके जरासन्ध का सामना करने के लिए चले। भगवान अरिष्टनेमि भी श्रीकृष्ण की सेना में सम्मिलित हुए। भगवान के लिए शक्रेन्द्र ने अपना देवनेमि रथ, मातलि सारथी को दिव्य अस्त्र-शस्त्र सहित भेजा। शक्रेन्द्र के भेजे हुए रथ में भगवान विराजे। यद्यपि अकेले भगवान अरिष्टनेमि ही त्रिलोक पर विजय प्राप्त कर सकते थे, लेकिन वे दयालु होने के साथ ही इस बात को भी जानते थे, कि प्रतिवासुदेव का पराजय, वासुदेव द्वारा ही

होता है। इसलिए भगवान ने, आवश्यकता होने पर जरासन्ध की सेना के किसी रथ की ध्वजा, किसी सैनिक का शस्त्र और किसी सेनापति का मुकुट तो अवश्य गिराया, परन्तु एक भी मनुष्य का वध नहीं किया। पश्चात जब श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को मार डाला और उसकी सेना के राजा, राजकुमार आदि घबराने लगे। भगवान ने, समस्त भयभीत लोगों को आश्वासन देकर, अभयदान दिया।

भगवान अरिष्टनेमि जब युवक हुवे, तब महाराजा समुद्र-विजय और महारानी शिवादेवी, भगवान से विवाह करने का आग्रह करने लगीं। भगवान, माता-पिता के आग्रह को टालते रहते, और जब अधिक आग्रह होता, तब यह कह दिया करते कि मेरे योग्य कन्या मिलने पर मैं उससे सम्बन्ध जोड़ लूँगा। इसी प्रकार बहुत वर्ष व्यतीत होगये। उधर यशोमती रानी का जीव, अपराजित विमान का आयुष्य समाप्त करके, मथुरेश महाराजा उग्रसेन की रानी धारिणी के गर्भ से कन्या रूप में उत्पन्न हुआ। उग्रसेन और धारिणी ने, कन्या का नाम राजमती रखा। उत्कृष्ट रूपवाली राजमती, समय पर बड़ी हुई और अपनी सुन्दरता से सब को पराजित करने लगी।

एक समय भगवान अरिष्टनेमि, अन्य यादवकुमारों के साथ घुमते हुए, श्रीकृष्ण वासुदेव की आयुधशाला में पहुँच गये।

आयुधशाला में सुदर्शनचक्र, सारंग धनुष, कौमुदकी गदा और पांचजन्य शंख आदि कृष्ण के आयुध रखे हुए थे। इन आयुधों का उपयोग, श्रीकृष्ण के सिवा और कोई नहीं कर सकता था। भगवान अरिष्टनेमि, श्रीकृष्ण के इन आयुधों को लेने लगे, तब आयुधागार—रक्षक ने, भगवान से प्रार्थना की, कि हे प्रभो, इन आयुधों का उपयोग करना तो दूर रहा, श्रीकृष्ण के सिवा और कोई व्यक्ति इन्हें हाथ लगाकर उठाने में भी समर्थ नहीं है। कृपया आप इन्हें उठाने का प्रयास न करें। आयुधागार-रक्षक की बात सुनकर, भगवान कुछ मुसकुराये और पांचजन्य उठाकर बजाने लगे। पांचजन्य शंख की गगनभेदी ध्वनि से द्वारका के महल पर्वत आदि कम्पायमान हो उठे। श्रीकृष्ण राम और दशार्हादि भी आश्चर्य करने लगे। कृष्ण विचारने लगे, कि क्या कोई चक्रवर्ती उत्पन्न हुए हैं या इन्द्र पृथ्वी पर आये हैं, जो यह ध्वनि हुई है! इतने ही में कृष्ण को यह समाचार मिला कि आयुधागार में श्री अरिष्टनेमि कुमार ने, पांचजन्य शंख बजाया है। अन्य राजाओं सहित श्रीकृष्ण आयुधागार में आये। वहाँ देखते हैं कि कुमार अरिष्टनेमि अन्य यादव कुमारों के साथ खड़े हुए हैं और सारंग धनुष हाथ में लेकर उसे टंकार रहे हैं। यह देखकर श्रीकृष्ण को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने, कुमार अरिष्टनेमि से कहा, कि मैं तुम्हारी भुजाओं का बल देखना

चाहता हूँ। कुमार अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण की यह बात स्वीकार की। श्रीकृष्ण और कुमार अरिष्टनेमि अखाड़े में आये। यह समाचार सुन कर, समस्त यादव एवं द्वारका के नागरिक, अखाड़े के आस-पास एकत्रित हो गये।

अखाड़े में खड़े होकर, श्रीकृष्ण ने अपनी भुजा ऊपर को उठा, भगवान श्री अरिष्टनेमि से कहा, कि मेरी भुजा को झुकाओ। भगवान अरिष्टनेमि ने श्रीकृष्ण की भुजा को एक अंगुली मात्र से कमलनाल की तरह सहज ही में झुकादी। यह देख कर श्रीकृष्ण सहित सब लोग बहुत विस्मित हुए। पश्चात् भगवान श्री अरिष्टनेमि ने अपनी भुजा ऊपर उठाई और श्रीकृष्ण, अरिष्टनेमि भगवान की भुजा को झुकाने लगे। श्रीकृष्ण ने बहुत बल लगाया, यहां तक कि अपने दोनों हाथ से भवागन अरिष्टनेमि की भुजा झुकाने लगे, परन्तु श्रीकृस्ण इसमें सफल न हुए। अर्थात श्रीकृष्ण भगवान अरिटष्नेमि की भुजा को न झुका सके। तब श्रीकृष्ण बहुत क्षुभित हुए और अपने मन में कहने लगे, कि ब्रह्मचर्य का पालन करने के कारण ही कुमार अरिष्टनेमि इस प्रकार बलसम्पन्न हैं, अतः किसी प्रकार इनका विवाह कर देना अच्छा है।

श्रीकृष्ण ने महल में आकर अपनी रानियों से कहा, कि किसी प्रकार कुमार अरिष्टनेमिसे विवाह करना स्वीकार कराओ।

यह सुनकर रानियों ने श्रीकृष्ण से कहा, कि इस समय वसन्त-ऋतु है; अतः आप फाग खेलने की तैयारी कराइये, फिर हम देवरजी से विवाह करना स्वीकार करा लेंगी। फाग की समस्त तैयारी करके परिवार सहित श्रीकृष्ण, कुमार अरिष्टनेमि को साथ लेकर, रेवतगिरि पर आये। वहाँ सब स्त्री पुरुष नन्दनवन में क्रीड़ा करने लगे। क्रीड़ा करती हुई सत्यभामा रुक्मणी आदि कृष्ण की पटरानियों ने भगवान अरिष्टनेमि से—काम जागृति के लिये—युक्तिपूर्ण अनेक बातें कहीं, हर प्रकार की चेष्टा भी की, परन्तु भगवान अरिष्टनेमि, ब्रह्मचर्य से किंचित् भी विचलित नहीं हुए। निराश होकर, वे, भगवान से प्रार्थना करके कहने लगीं, कि यदुवंशोत्पन्न एक-एक साधारण वीर के भी अनेक अनेक पत्नियाँ हैं, लेकिन आप श्रीकृष्ण के भाई होकर भी स्त्री रहित ही रहते हैं, यह श्रीकृष्ण के लिये लज्जा दिलानेवाली बात है। अतः आपको अवश्य ही अपना विवाह करना चाहिये। श्रीकृष्ण की रानियों की निराशा और उन की दीनता देखकर, भगवान दया भाव लाकर किंचित मुसकुराये। भगवान को मुसकुराते देखकर, कृष्ण की रानियों ने सब पर यह प्रकट कर दिया, कि देवरजी ने विवाह करना स्वीकार कर लिया है। यह सुन कर, समुद्रविजय, श्रीकृष्ण आदि बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीकृष्ण, कुमार अरिष्टनेमि के योग्य कन्या की चिन्ता करने

लगे। तब सत्यभामा ने श्रीकृष्ण से कहा, कि देवरजी के योग्य कन्या, मेरी बहिन राजमती है। यदि आप राजमती के लिये प्रयत्न करें तो आपकी चिन्ता दूर हो सकती है। सत्यभामा की बात मान कर स्वयं श्रीकृष्ण ने, महाराजा उग्रसेन के पास जाकर अरिष्टनेमि के लिये राजमती की याचना की। उग्रसेन ने, श्रीकृष्ण की याचना स्वीकार करके कहा, कि मैं राजमती को, विवाह से पहले द्वारका नहीं भेज सकता, यदि आप बारात सहित अरिष्टनेमि को लेकर मथुरा आवें, तो मैं राजमती का विवाह अरिष्टनेमि के साथ कर सकता हूँ। श्रीकृष्ण ने उग्रसेन-की बात स्वीकार की और विवाह-तिथि नियत करके बारात की तैयारी करने लगे।

भगवान श्री अरिष्टनेमि, अवधिज्ञान द्वारा यह जानते थे, कि अभी मेरे भोग-फल देने वाले कर्म का कुछ अंश शेष है जिनसे निवर्तना- आवश्यक है तथा यादवों के समक्ष आदर्श भी उपस्थित करना था इसलिये उन्होंने श्रीकृष्ण द्वारा की जाने वाली विवाह सम्बन्धी प्रवृत्ति का विरोध नहीं किया, किंतु मौन रहे।

बारात की तैयारी हुई। भगवान अरिष्टनेमि को स्नानादि करा कर और दूल्हे के योग्य अनुपम वस्त्र पहना कर, मौर बांध दूल्हा बना हाथी पर बैठाया गया। समुद्रविजयादि दसों

दशार्ह वलराम और श्रीकृष्ण-वासुदेव आदि समस्त यदुवंशी, ससैन्य, वारात के रूप में धूम-धाम से भगवान अरिष्टनेमि के साथ चले।

वारात विदा हुई। इस अवर्णनीय वारात को देवता लोगभी देखने लगे। वारात को देखकर, सौधर्मेन्द्र साश्चर्य विचारने लगे कि पूर्व तीर्थङ्करों के कथनानुसार, इन वाईसवें तीर्थङ्कर भगवान अरिष्टनेमि को वालब्रह्मचारी रहकर दीक्षा लेनी चाहिये थी, परन्तु इस समय तो उसके विपरीत कार्य होने जा रहा है, यानी वालब्रह्मचारी रहने के वदले भगवान अरिष्टनेमि, विवाह करने जा रहे हैं! इस प्रकार आश्चर्य में पड़कर, सौधर्मेन्द्र ने अवधि-ज्ञान से देखा, तव यह जानकर उनका आश्चर्य मिटा, कि भगवान अरिष्टनेमि, वाल ब्रह्मचारी ही रहेंगे, यह विवाह-रचना, केवल कृष्ण की लीला है। अवधिज्ञान द्वारा इस प्रकार जान कर सौधर्मेन्द्र, ब्राह्मण का रूप वना श्री कृष्ण के आगे आखड़े हुए, और सिर धुनकर श्रीकृष्ण से कहने लगे, कि आप किस ज्योतिषी के वताये हुए लग्न में विवाह करने जा रहे हैं! आप, जिन लग्न में अरिष्टनेमि का विवाह करने जा रहे हैं, उन लग्न में अरिष्टनेमि का विवाह होना असम्भव-सा प्रतीत होता है! ब्राह्मण की वात सुन कर, श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो ब्राह्मण से कहने लगे, कि—आप यह कहने के लिए किनके [illegible]

हैं ! आप अपने घर जाइये ! श्रीकृष्ण को क्रुद्ध देखकर, ब्राह्मण-वेशधारी सौधर्मेन्द्र यह कह कर वहां से अदृश्य होगये, कि 'आप,अरिष्टनेमि का विवाह कैसे करते हैं यह मैं भी देखता हूँ!'

चलते चलते बारात, मथुरा के समीप आई। चारों ओर के लोग, बारात देखने के लिए दौड़ आये। राजमती की सखियां, राजमती से कहने लगीं—सखी, तू बहुत बड़भागिनी है, इससे अरिष्टनेमि ऐसे उत्तम पुरुष तेरे लिए बारात सजाकर आये हैं। सखियों की बात सुन कर राजमती बहुत हर्षित हुई। वह भी, महल के झरोखे से बारात देखने लगी,और दूल्हा बने हुए भगवान अरिष्टनेमि को देखकर प्रसन्न होने लगी, इतने ही में राजमती की दाहिनि भुजा और दाहिनी आँख फड़क उठी। इस अपशकुन के होते ही राजमती की प्रसन्नता, चिन्ता में परिणित हो गई। वह अपनी सखियों से अपशकुन बता कर कहने लगीं कि जिन्हें देख कर मैं प्रसन्न हो रही हूं, और जिनके कारण तुम मुझे बड़भागिनी कह रही हो, उनके साथ विवाह होने में अवश्य ही किसी विघ्न की आशंका है! सखियां, राजमती को धैर्य देकर कहने लगीं कि तुम अकारण ही विघ्न की आशंका न करो, कुमार अरिष्टनेमि के साथ तुम्हारा विवाह सानन्द होगा।

रथारूढ़ भगवान अरिष्टनेमि सहित बारात,महाराजा उग्रसेन के महल के सामने आई। उसी समय भगवान अरिष्टनेमि को

पशु-पत्तियों की करूणा-पूर्ण चीत्कार सुनाई दी। पशु-पक्षी, अपनी भाषा में भगवान से यह कह रहे थे, कि—हे प्रभो! हम दुःखियों की रक्षा करने वाले आप ही हैं। यद्यपि भगवान अरिष्टनेमि सब कुछ जानते थे, फिर भी उन्होंने सारथी से पूछा, कि—हे सारथी, इन सुख के अभिलाषी पशु-पक्षियों को यहाँ वाड़े में क्यों घेर रखा है? और ये इस प्रकार आरतनाद क्यों कर रहे हैं? सारथी ने उत्तर दिया, कि आपके विवाहोपलक्ष्य में जो भात की रसोई दी जावेगी, उसमें बननेवाले माँस के लिए इन पशु-पत्तियों को वाड़े पींजरे में बन्द किया गया है और मरने के भय से भीत होकर ये सब चिल्ला रहे हैं। सारथी की बात सुन कर, करुणानिधान भगवान अरिष्टनेमि ने, संसार के सामने जीव रत्ता और भय-भीत को अभयदान देने का आदर्श रखने के लिए, सारथी से कहा कि—हे सारथी, इन जीवों की हिंसा, परलोक में मेरे लिये श्रेयस्कर नहीं हो सकती, अतः तुम इन दुःखी जीवों को बन्धनमुक्त कर दो।

भगवान की आज्ञा मान कर, सारथी ने, बाड़े और पींजरे में घिरे हुए समस्त पशु पत्तियों को खोल दिया। सारथी के कार्य से प्रसन्न होकर भगवान ने उसे मुकुट के सिवा अपने समस्त आभूषण पुरस्कार में दे दिये और साथ ही, रथ वापस लौटाने की आज्ञा दी। भगवान की आज्ञा से सारथी ने, रथ

वापस लौटा दिया। दूल्हे का रथ लौटता देख, श्रीकृष्ण,समुद्र-विजय आदि,भगवान अरिष्टनेमि के सामने जाकर उनसे कहने लगे, कि आपने करुणा करके पशु-पक्षियों को बन्धन मुक्त कर दिया,यह तो अच्छा ही किया लेकिन अब वापस क्यों लौट रहे हैं ! आप,वापस न लौटिये,किन्तु चल कर उग्रसेन की कन्या के साथ विवाह करिये। सब की बात के उत्तर में भगवान कहने लगे, कि—आप मुझे जिस सम्बन्ध में जोड़ना चाहते हैं मैं उससे पवित्र और विशाल सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ। मैं, किसी एक को ही अपना नहीं बनाना चाहता, न स्वयं ही किसी एक का रहना चाहता हूं, किन्तु संसार के समस्त प्राणियों से प्रेम-सम्बन्ध जोड़ कर, मैं सभी का बनना चाहता हूं। इसके सिवा अब मेरे भोग-फल देने वाले कर्म भी शेष नहीं हैं अतः आप अधिक कुछ न कहिये। यह कह कर रथारूढ़ भगवान, आगे बढ़ गये और द्वारका के लिये चल पड़े। भगवान अरिष्ट-नेमि को जाते देख कर, दसों दशार्ह, कृष्ण आदि यादव भी निराश हो द्वारका को लौट गये।

भगवान अरिष्टनेमि द्वार पर से लौट गये आदि वृत्तान्त जब राजमती ने सुना, तब वह,मूर्छित होकर काटी हुई लता के समान भूमि पर गिर पड़ी। दासियों ने शीतलोपचार द्वारा राजमती की मूर्छा दूर की, और राजमती से कहने लगीं, कि—हे सखी,

अच्छा हुआ जो निर्मोही अरिष्टनेमि, विवाह होने से पहले ही तुम्हें छोड़ कर चले गये। यदि तुम्हारा पाणिग्रहण करके फिर तुम्हें छोड़ जाते, तो तुम्हें महान् कष्ट भोगना पड़ता और तुम कहीं की भी न रहती। अब तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो, हम महाराजा से निवेदन करेंगी, कि वे और किसी अच्छे रूप, कुल, गुण और बलसम्पन्न राजकुमार के साथ तुम्हारा विवाह करें। सखियों की बात, राजमती को ऐसी अप्रिय मालूम हुई, कि उसने अपने कानों को उँगली से बन्द कर लिया और फिर सखियों से कहने लगी—सखियों, तुम किसी और के साथ विवाह करने की तो बात ही मत करो। यह काम तो कुलटाओं का है। मैं, अरिष्टनेमि को अपना पति मान चुकी हूँ, इसलिए उनके सिवा और सब पुरुष मेरे पिता-भ्राता के समान हैं। राजमति का उत्तर सुन कर, सखियां कहने लगी, कि तुम धैर्य धरो, हम ऐसा प्रयत्न करेंगी, कि जिससे कुमार अरिष्टनेमि फिर लौटकर आवे।

द्वारका पहुँच कर भगवान अरिष्टनेमि, संसार से विरक्त हो आत्मचिन्तन करने लगे। उसी समय ब्रह्मकल्पवासी लोकान्तिक देव उपस्थित होकर भगवान से प्रार्थना करने लगे, कि—हे प्रभो, धर्म तीर्थ प्रवर्ता कर, भव्य जीवों के कल्याण का द्वार खोलिये। देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करके भगवान अरिष्टनेमि, वार्षिक दान देने लगे।

वार्षिकदान की समाप्ति पर, इन्द्र तथा देवता, भगवान का दीक्षामहोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए। दीक्षाभिषेख के पश्चात भगवान उत्तरकुरु नाम की शिविका में आरूढ़ हुए। दिव्य एवं मानवी वाद्यों के बीच, शिविकारूढ़ भगवान अरिष्ट-नेमि, गिरनार पर्वत की तराई में सहस्राम्र नाम के बाग में पधारे। श्रीकृष्ण, बलराम, समुद्रविजय आदि दसों दशार्ह एवं समस्त यादव लोग भी, जयजयकार करते हुए भगवान के साथ सहस्राम्र बाग में आये। सहस्राम्रबाग में पहुंच कर भगवान, पालकी से उतर पड़े और शरीर पर के वस्त्राभूषण भी त्याग दिये पश्चात् श्रावण शुक्ला ६ को—जब चन्द्र चित्रा नक्षत्र में आया—छट्ठ के तप में भगवान अरिष्टनेमि ने एक सहस्र पुरुषों के साथ संयम स्वीकार किया।

दीक्षा स्वीकार करते ही भगवान अरिष्टनेमि को मनःपर्यय नाम का चौथा ज्ञान प्राप्त हुआ। क्षण भर के लिए नारकीय जीवों को भी शान्ति मिली। भगवान ने, चातुर्मास में दीक्षा ली थी, और चातुर्मास में साधुलोग विहार नहीं करते हैं, इसलिए भगवान अरिष्टनेमि गिरनार पर्वत पर पधार गये। दूसरे दिन, वर दत्त ब्राह्मण के यहां परमान्न से भगवान का पारणा हुआ। दान की महिमा दर्शाने के लिए देवों ने पांच दिव्य प्रकट किये।

भगवान अरिष्टनेमि, चव्वन दिन तक छद्मस्थ-अवस्था में रहे और आत्मध्यान में रमण करते रहे। एक दिन भगवान गिरनार पर्वत की तराई में स्थित, उसी सहस्राम्र बाग में पधारे, जिसमें भगवान ने संयम स्वीकार किया था। वहां अष्टम तप में, ध्यानस्थ भगवान, शुक्लध्यान में पहुंच कर, क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए और फिर घातिककर्म क्षय करके, आश्विन कृष्णा अमावस्या को भगवान ने अनन्त केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त किया।

आसनकम्प से, भगवान को केवलज्ञान हुआ जान कर, अच्युतादि इन्द्र और असंख्य देवी देव, केवलज्ञानमहोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए। श्रीकृष्ण समुद्रविजय आदि भी भगवान को वन्दन करने के लिए आये। समव-शरण की रचना हुई जिसमें बैठकर द्वादश प्रकार की परिषद ने भगवान की वाणी सुनी। भगवान की वाणी सुन कर, अनेक भव्य जीव प्रतिबोध पाये। राजा वरदत्त को संसार से विरक्ति हो गई। भगवान ने, राजा वरदत्त को दीक्षा देकर त्रिपदी का उपदेश किया और गणधर पद पर नियुक्त किया।

भगवान तो संयम में प्रवर्जित हो गये, परन्तु राजमती, भगवान के दर्शन की अनुरागिनी बन कर, आशा में ही दिन बिताने लगी। इसी प्रकार जब एक वर्ष बीत गया और भगवान की ओर से राजमती की कोई खबर नहीं ली गई, तब राजमती

बहुत निराश हुईं। इतने में ही उन्होंने यह सुना कि जिन्हें मैं अपना पति बनाना चाहती थी, वे अरिष्टनेमि तो संयम में प्रवर्जित हो गये। अब राजमती को, भगवान अरिष्टनेमि पति रूप में कभी मिलेंगे, यह आशा किंचित् भी न रही। वे, विचारने लगीं, कि भगवान अरिष्टनेमि मुझे इस प्रकार बीच ही में छोड़ गये, इसका कारण क्या है ? प्रशस्त अध्यवसाय और विशुद्ध परिणामों के कारण राजमती को जातिस्मृतिज्ञान हुआ। अपने पूर्वभवों का वृत्तान्त जान कर, राजमती, भगवान अरिष्टनेमि के लिए कहने लगीं, कि हे प्रभो, आप मुझे चाहे त्याग दें, परन्तु मैं आपको कदापि नहीं त्याग सकती। अब, मैं भी आपका ही अनुसरण करूँगी और आपकी ही तरह संसार त्याग, आपकी शिष्या बनूँगी !

राजमती ने, अपने सब श्रृंगार त्याग दिये। वे, दीक्षा लेने के लिए तैयार हुईं। उनका साथ देने के लिए, सात सौ राज-कन्याएं एवं स्त्रियां भी तैयार हुईं। अपनी सात सौ साथिनियों सहित राजमती, द्वारका आई और वहां से भगवान अरिष्टनेमि के दर्शन करने को गिरनार पर्वत के लिए चली। मार्ग में, आंधी पानी के प्रकोप से, राजमती की साथिनी राजमती से बिछुड़ गई। राजमती अकेली ही रह गई। राजमती के वस्त्र, जल से भीग गये थे। वे, गिरनार की एक गुफा में आईं। यह गुफा

निर्जन एवं एकान्त में है, ऐसा समझ कर राजमती ने अपने शरीर के समस्त वस्त्र गुफा में इधर उधर फैला दिये।

राजमती, अनुपम रूपवती थीं। उनके रूप लावण्य का वर्णन करते हुए उत्तराध्ययन सूत्र में, विद्युत्प्रकाश और मणिप्रभ की उपमा दी है। राजमती के तेजोमय रूप से गुफा मे प्रकाश-सा हो गया। उसी गुफा में, भगवान अरिष्टनेमि के छोटे भाई रथनेमिजी—जो भगवान के साथ ही संयम में प्रवर्जित हुए थे—ध्यान करके खड़े थे। राजमती ने, मुनि रथनेमि को नहीं देखा था, परन्तु रथनेमि ने, राजमती को देख लिया। राजमती के रूप लावण्य को देख कर रथनेमि मुनि का चित्त विचलित हो उठा। उन्होंने संयम की मर्यादा त्याग कर राजमती से भोग की याचना की। पुरुष की बोली सुनकर, और पुरुष को सामने देख कर राजमती विस्मित, लज्जित एवं भयभीत हुईं। वे अपने शरीर को गोप कर बैठ गईं और भय के मारे कांपने लगी। राजमती को भयभीत देखकर, रथनेमि अपना परिचय देते हुए राजमती को धैर्य देने लगे और कहने लगे, कि डरने की आवश्यकता नहीं है। राजमती को यह जान कर धैर्य हुआ, कि यह दूसर और कोई नहीं है, किन्तु भगवान अरिष्टनेमि के लघुभ्राता और [illegible] देवर ही है। उन्होंने, रथनेमि को फटकारते हुए उचित [illegible] दिया, जिससे रथनेमि संयम पर दृढ़ हुए।

रथनेमि के चित्त की विचलितता मिटाकर, राजमती, वस्त्र पहन आगे बढ़ीं। आगे जाते हुए उन्हें उनकी बिछुड़ी हुई सखियां भी मिल गईं। राजमती, अपनी सखियों सहित भगवान की सेवा में उपस्थित हुई और दीक्षा ग्रहण करके चालीस सहस्र सतियों की नायिका बनीं।

भगवान अरिष्टनेमि, लगभग सात सौ वर्ष तक केवली पर्याय में विचरते रहे। उनके वरदत्त आदि अठारह गणधर थे। अठारह सहस्र मुनि थे। चालीस सहस्र सतियां थीं। एक लाख उन्हत्तर हजार श्रावक थे और तीन लाख उन्चालीस हज़ार श्राविका थीं।

अपना निर्वाणकाल समीप जान कर,भगवान अरिष्टनेमि, पांच सौ छत्तीस मुनियों को साथ लेकर, रेवतगिरि पर, पधार गये वहां भगवान ने अनशन कर लिया, जो एक महीने तक चलता रहा। अन्त में, आषाढ़ शुक्ला ८ को चित्रा नक्षत्र में संध्या समय भगवान अरिष्टनेमि,सब कर्मों का अन्त करके मोक्ष पधारे।

भगवान अरिष्टनेमि,तीन सौ वर्ष तक कौमारावस्था में रहे। चव्वन दिन छद्मस्थ-अवस्था में विचरते रहे। शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार भगवान ने सब एक हजार वर्ष का आयुष्य भोगा और भगवान नमीनाथ के निर्वाण को पांच लाख वर्ष बीत जाने पर निर्वाण प्राप्त किया।

प्रश्न—
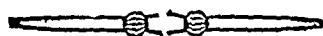
१—भगवान श्री अरिष्टनेमि के कितने पूर्व-भव का वृत्तान्त जानते हो ? नाममात्र बताओ ?

२—भगवान अरिष्टनेमि के माता-पिता का नाम क्या था ?

३—भगवान अरिष्टनेमि के बाल्यकाल की कोई विशेष घटना आपको मालूम है ?

४—द्वारका नगरी के निर्माण का क्या कारण था ?

५—भगवान अरिष्टनेमि का विवाह किसने, किस घटना को दृष्टि में रखकर और किसके साथ रचाया था।

६—भगवान अरिष्टनेमि और सती राजमती का कितने भव से साथ था ?

७—राजमती के साथ विवाह करने के लिए भगवान बारात जोड़कर गये और फिर बिना विवाह किये ही क्यों लौट आये ?

८—भगवान अरिष्टनेमि की जन्मतिथि, दीक्षातिथि केवलज्ञानतिथि और निर्वाणतिथि बताओ ?

९—राजमती और रथनेमि के बीच में कौन-सी घटना किस प्रसंगवश घटी थी और क्या परिणाम निकला ?

१०--भगवान अरिष्टनेमि के तीर्थ की भिन्न-भिन्न संख्या क्या थी ?

११—भगवान अरिष्टनेमि के निर्वाण में और भगवान मुनिसुव्रत के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा ?

२३

भगवान श्री पार्श्वनाथ।

प्रार्थना

श्लोकः—

श्री पार्श्वयक्ष पतिना परिसेव्यमान,
पार्श्वे भवामितर सादरलाङ्ग लाभे।
इन्दीवरे ऽलिरिव रागमना विनीले,
पार्श्वे भवामि तरसा दरलाङ्ग लाभे॥

भावार्थ—जो संसार रूपी पृथ्वी को विदारने में हल के समान है, जो नील वर्ण शरीर से सुशोभित है और जिनकी पार्श्वयक्ष सदा सेवा करता है ऐसे वामादेवी के नन्दन श्री पार्श्वप्रभु में मेरी उत्साहयुक्त भक्ति हो, जैसे नील कमल में भ्रमर की भक्ति होती है।

पूर्व भव
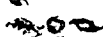
इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में, पोतनपुर नाम का एक नगर था। वहां अरविन्द नाम का प्रतापी और जैनधर्म परायण राजा था। अरविन्द के एक विश्वभूति नाम का पुरोहित था, जो श्रावक था। विश्वभूति की पत्नी अनुद्धरा से कमठ और मरुभूति नाम के दो पुत्र हुए। योग्य होने पर विश्वभूति ने, कमठ का विवाह वरुणा और मरुभूति का विवाह वसुन्धरा के साथ कर दिया।

अपना अवसान समीप जानकर, विश्वभूति पुरोहित, अनशन करके शरीर त्याग, देवलोक को गया। मरुभूति की स्त्री अनुद्धरा भी, पति-वियोग से दुखित हो, नवकार मंत्र का जाप करती हुई शरीर छोड़ गई। कमठ और मरुभूति, माता-पिता विहीन हो गये। दोनों भाइयों में से कमठ नाम का बड़ा भाई तो अपने पिता का कार्य (पुरोहित) करने लगा और छोटा भाई मरुभूति, विषय भोग से विमुख हो, पौषधादि धर्मक्रिया करता हुआ यह भावना करने लगा, कि मैं कब गुरु के समीप रहकर सर्वसावद्य योग का त्याग करूँ!

कमठ, स्वच्छन्द होगया था, इस कारण उसमें समस्त दुर्गुण निवास करने लगे थे। वह, परदारगामी और जुआरी भी था। मरुभूति की स्त्री वसुन्धरा, युवती होने के कारण विषयाभिला-

पिणी थी। कमठ और वसुन्धरा में अनुचित प्रेम-सम्बन्ध हो गया। इन दोनों का यह सम्बन्ध, कमठ की स्त्री वरुणा को मालूम हुआ। वरुणा ने, इस भेद को मरुभूति से प्रकट कर दिया। मरुभूति ने स्वयं भी पता लगाया, तो उसे वरुणा की कही हुई बात सत्य मालूम हुई। उसने, कमठ का यह अन्याय राजा अरविन्द के सामने कहा। राजा ने, कमठ को—पुरोहित-पुत्र होने के कारण अवध्य समझकर—नगर से बाहर निकाल दिया। कमठ, इस अपमान से बहुत दुःखी हुआ, परन्तु विवश था। वह, मन मसोस कर, तापसों के पास गया और स्वयं भी तापस बन कर, अज्ञानतप करने लगा।

कमठ के चले जाने के पश्चात् मरुभूति ने विचार किया, कि मेरे भाई कमठ ने जैसा जो अपराध किया था, उसकी अपेक्षा मैंने कमठ का अधिक अपराध किया है। क्योंकि मैंने ही राजा से फरियाद करके कमठ को नगर से बाहर निकलवाया और उसे अपमानित कराया है। मरुभूति ने, राजा से प्रार्थना की, कि कमठ का अपराध क्षमा कर दिया जावे और उसे नगर से बाहर जाने का दण्ड न दिया जावे; परन्तु राजा ने मरुभूति की यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी। तब मरुभूति, कमठ से क्षमा [illegible] उसके आश्रम में गया। कमठ के चरणों में [illegible] उससे क्षमा माँगने लगा, परन्तु कमठ [illegible]

वाली अपमान की ज्वाला शान्त न हुई। उसने, क्रोध के वश होकर, मरुभूति पर एक शिला दे मारी। शिलाघात से, मरुभूति पीड़ा पाने लगा, इतने ही में, कमठ ने मरुभूति पर फिर शिला-प्रहार किया। शिलाघात के कष्ट से आरतध्यान ध्याता हुआ मरुभूति मृत्यु को प्राप्त हुआ और विंद्याचल पर्वत पर युत्थपति हाथी हुआ दूसरी ओर कमठ की स्त्री वरुणा ने भी, क्रोधवश शरीर त्याग दिया, और वह इसी युत्थपति हाथी की हथिनी हुई। दोनों हाथि हथिनी स्वेछापूर्वक विषय सुख भोगते हुए विचरने लगे।

पोतनपुर के महाराजा अरविन्द, एक समय अपने महल की छत पर बैठे हुए थे। उन्होंने, एक मेघघटा को चढ़ते और बिखरते देखा। इस घटना पर से उन्हें विरक्ति हो गई और वे संयम में प्रवर्जित हो गये। अवधिज्ञान से युक्त गीतार्थ अरविन्द मुनि, एकलविहारी प्रतिमा को धारण करके विचरेत हुए उसी वन में आ निकले, जिसमें मरुभूति का जीव, हाथी का भव धारण करके रहता था। परिवार सहित जलपान करके लौटता हुआ युत्थपति हाथी, अरविन्द मुनि की ओर दौड़ा। अरविन्द मुनि, कायोत्सर्ग करके ध्यानारूढ़ हो, खड़े हो गये। हाथी ने, मुनि को उपसर्ग तो देना चाहा, परन्तु मुनि के तप-तेज से हाथी का क्रोध ही नष्ट हो गया। वह दीनता धारण करके मुनि के सन्मुख खड़ा रहा। ध्यान समाप्त करके मुनि ने, हाथी को

उपदेश दिया और कहा कि तू अपने पूर्व-भव को याद कर, जिसमें तू मरुभूति श्रावक था। आरतरुद्रध्यान में मृत्यु पाने से ही तू इस भव में हाथी हुआ है। मैं भी, पूर्व-भव में अरविन्द राजा था। तूने वह मनुष्य भव तो हारा ही, परन्तु अब इस भव को भी क्यों कुकृत्य में लगाता है! इस प्रकार मुनि ने उपदेश दिया, जिसे सुनकर, युत्थपति हाथी को जाति-स्मृतिज्ञान हुआ। उसने मुनि को प्रणाम करके उसने श्रावक-धर्म स्वीकार किया। युत्थपती हाथी की हथिनी भी पास ही खड़ी थी। मुनि का उपदेश सुनकर वह भी विचार करने लगी। विचार करते-करते हथिनी को भी जातिस्मृतिज्ञान हो गया और उसने भी श्रावक-धर्म स्वीकार किया। श्रावक-धर्म स्वीकार करके हाथी, छट्ठ, अट्टम आदि तप करने लगा और यह भावना करने लगा, कि मनुष्य जन्म पाकर महाव्रत धारण करने वाले प्राणि ही धन्य हैं, मुझे धिक्कार है, जो मैंने दीक्षा न लेकर मनुष्य जन्म को योंही खो दिया। इस प्रकार की शुभ भावना करता हुआ हाथी, काल व्यतीत करने लगा।

कमठ, अपने भाई मरुभूति को मारकर भी शान्त नहीं हुआ। मनुष्य-वध के दुष्कृत्य को देखकर, तापसों ने भी कमठ की निन्दा की। अन्त में वह आरतध्यान पूर्वक मर कर, कुक्कुट जाति का सर्प हुआ।

एक समय उक्त हाथी, एक सरोवर में जल पीने गया था। तपस्या की निर्बलता के कारण वहां वह कीचड़ में फँस गया और प्रयत्न करने पर भी न निकल सका। इतने ही में सर्पभवधारी कमठ भी वहां आगया। पूर्वजन्म के वैर के कारण सांप ने, हाथी के कुम्भस्थल को डस लिया। हाथी को विष चढ़ा। अपना अन्त-काल समीप जान, हाथी ने अनशनादि कर शुद्धभाव से शरीर त्याग किया और अष्टम सहस्रार कल्प में सत्रह सागर की आयु वाला महर्द्धिक देव हुआ। इस हाथी की हथिनी भी, कठिन तप करती हुई शरीर त्याग, ईशान्य कल्प में अनाभिग्रहीक देवी हुई, और देव सम्बन्धी सुख भोगने लगी। अनेक जीवों का संहार करके कुक्कुट नाग (सर्प) भी मृत्यु पाया और पांचवें नरक में सत्रह सागर की आयु लेकर उत्पन्न हुआ।

जम्बूद्वीप के प्राग्विदेह की सुकच्छ विजय में वैताढ्यगिरि पर तिलका नाम की नगरी थी। वहां विद्युद्गति नाम का विद्याधरों का राजा रहता था। विद्युद्गति की कनकतिलका नाम्नी पटरानी थी। सहस्रार देवलोक का आयुष्य भोग कर हाथी का जीव, कनक-तिलका के उदर में आया और गर्भकाल समाप्त होने पर पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। विद्युद्गति ने पुत्र का नाम किरणतेज रखा।

किरणतेज बड़ा हुआ। एक समय वहां सुरुगुरु नाम के ० चार्य पधारे। उनके उपदेश से प्रभावित होकर किरणतेज ने

संयम स्वीकार लिया और गीतार्थ हो, एकलविहारी प्रतिमा धारण करके विचरने लगा।

पांचवें नरक का आयुष्य भोगकर कुक्कुट नाग का जीव, हिमगिरि की गुफा में सर्प योनि में उत्पन्न हुआ। वहां भी वह अनेक प्राणियों के प्राण हरण करता हुआ, कठिन और क्रूर कर्म उपार्जन करने लगा। किरणतेज मुनि भी, विचरते-विचरते इसी गुफा में पधारे। एकान्त स्थल देखकर मुनि, गुफा में ध्यान करके खड़े रहे। ध्यान में खड़े हुए मुनि को, उस सर्प ने देखा। पूर्वभव के वैर के कारण सर्प क्रोधित होकर मुनि के शरीर से लिपट गया और उसने मुनि के शरीर को कई जगह डसा। मुनि ने, कर्मक्षय करने में सर्प को उपकारी माना और शुभ ध्यान करते हुए शरीर त्याग किया। शरीर त्याग कर, किरणतेज मुनि का जीव, बारहवें देवलोक में, बाईस सागर का आयुष्यवाला उत्कृष्ट देव हुआ। वह सर्प भी, महा भयंकर कर्म बांध कर, दावानल में दग्ध हो, अशुभ परिणामों के कारण, छट्ठी* तमःप्रभा नरक में बाईस सागर की उत्कृष्ट स्थिति वाला नैरयिक हुआ।

इसी जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह की सुगन्धा विजय में,

---

* चरित्र में सर्प को छट्ठे नर्क में गया बताया है परन्तु जैन शास्त्रों की मान्यतानुसार उरपरि सर्प छट्ठी नर्क में जा नहीं सकता। यह विचारणीय प्रश्न है। —लेखक

शुभंकरा नाम की नगरी थी। वहां, वृजवीर्य नाम का राजा राज्य करता था, जिसकी रानी का नाम लक्ष्मीवती था। किरणतेज का जीव, बारहवें कल्प का आयुष्य समाप्त करके, लक्ष्मीवती की कोंख से उत्पन्न हुआ। वृजवीर्य ने बालक का व्रजनाभि नाम रखा। बड़ा होने पर व्रजनाभि, अनेक कलाओं का ज्ञाता हुआ। वृजवीर्य ने, व्रजनाभी का विवाह अनेक राजकन्याओं के साथ कर दिया। कुछ काल पश्चात् राजा वृजवीर्य, अपना राज-पाट वज्रनाभि को सौंपकर आत्मकल्याण में लग गये।

राजा वज्रनाभि के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम चक्रायुधं रखा गया। बहुत काल तक राज्य करने के पश्चात, राजा वज्रनाभि की इच्छा, संयम लेकर आत्म कल्याण करने की हुई। पुण्ययोग से शुभंकरा नगरी में, चेमंकर नाम के तीर्थंकर भगवान पधार गये। भगवान चेमंकर का उपदेश सुनकर; राजा वज्रनाभि, संयम में प्रवर्जित हो गये। थोड़े ही समय में, वज्रनाभि मुनि, सूत्र सिद्धान्त के पारगामी होगये, और अनेक प्रकार के तप करते हुए विचरने लगे। उन्हें, आकाशगामिनी आदि अनेक लब्धियां भी प्राप्त हुई।

एक बार आकाशमार्ग से विहार करते हुए व्रजनाभि मुनि सुकच्छ विजय में पधारे। छठे नरक से निकल कर कमठ का जीव भी, इसी सुकच्छविजय के ज्वलनगिरि वन में कुरंगक नाम का

भील हुआ था। कुरंगक भी, उस जंगल में भ्रमण करता हुआ, शिकार द्वारा आजीविका करता था। वज्रनाभि मुनि भी विहार करते हुए उसी ज्वलनगिरि नाम के जंगल में आ निकले। संध्या का समय हो गया था, इस कारण वज्रनाभि मुनि, ज्वलनगिरि की एक कन्दरा में ही, कायोत्सर्ग करके ध्यानारूढ़ हुए। जंगल में भ्रमण करता हुआ कुरङ्गक भील भी, वहीं आ निकला, जहां, वज्रनाभि मुनि कायोत्सर्ग करके ध्यान में थे। पूर्वभव के वैर के प्रभाव से मुनि को देख कर कुरंगक भील ने, अपने लिए अपशकुन समझा। उसने क्रोधित होकर मुनि के बाण मारा। बाण लगने से, मुनि पीड़ित हुए, फिर भी क्रोध रहित मुनि ने, अनशन करके शुभ ध्यान में शरीर त्यागा। शरीर त्याग कर वज्रनाभि मुनि, मध्य ग्रैवेयक में परममहर्द्धिक देव हुए। क्रूरकर्मी कुरंगक भी, समय पर, बुरे परिणामों से मृत्यु पाया और सातवें नरक के रौरव नामक नरकवास में उत्पन्न हुआ।

इसी जम्बूद्वीप के पूर्वमहाविदेह में पुराणपुर नामक न[illegible] था। वहां, कुलिशबाहु नाम का राजा राज्य करता था, [illegible] सुदर्शना नाम्नी पटरानी थी। मध्यग्रैवेयक का आयु[illegible] वज्रनाभि का जीव, महारानी सुदर्शना की कोख में [illegible] रानी सुदर्शना ने, चौदह महास्वप्न देखे। [illegible] फल सुनकर कि 'तुम्हारी कोख से चक्रवर्ती [illegible]

उत्पन्न होगा' महारानी सुदर्शना प्रसन्न हुई और सावधानी-पूर्वक गर्भ का पोषण करने लगीं। समय पर रानी ने एक सुन्दर और पुण्यवान बालक को जन्म दिया। राजा कुलिशबाहु ने, पुत्रजन्मोत्सव मना कर, बालक का नाम स्वर्णबाहु रखा। थोड़े ही समय में स्वर्णबाहु, सब प्रकार से योग्य होगया। महाराजा कुलिशबाहु ने, राज-भार स्वर्णबाहु को सौंप दिया और स्वयं संयम में प्रवर्जित हो गये। स्वर्णबाहु, राजा हुआ। स्वर्णबाहु का प्रताप दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। कुछ काल पश्चात् स्वर्णबाहु के यहां चौदह रत्न प्रकट हुए और वह छः खण्ड पृथ्वी साध कर चक्रवर्ती हुआ।

एक समय, भगवान तीर्थंकर पुराणपुर में पधारे। स्वर्णबाहु चक्रवर्ती भगवान को वन्दना करने गये। भगवान की वाणी सुन कर, स्वर्णबाहु को संसार से विरक्ति होगई और वे संयम में प्रवर्जित होगये। कठिन तप और अर्हद्भक्ति आदि बीस बोलों की आराधना करके स्वर्णबाहु ने, तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया।

[illegible]ातवें नरक का आयुष्य भोग कर कुरंगक भील का जीव [illegible] पास के क्षीरवणा जंगल में सिंह हुआ था। विहार [illegible]ाहु मुनि, इसी क्षीरवरणा जंगल में आ निकले। [illegible]ेखा। पूर्वभव के वैर से मुनि को देखकर सिंह [illegible] पर झपटा। उपसर्ग जान कर मुनि, सचेत

होगये थे, इसलिये उन्होंने आत्म-शुद्धि-पूर्वक अनशन कर लिया था। सिंह ने, मुनि की हत्या कर डाली। स्वर्णबाहु मुनि, समाधि पूर्वक शरीर त्याग कर, दसवें कल्प के महाप्रभ विमान में, वीस सागर की स्थिति के महर्द्धिक देव हुए और सिंह भी मर कर चौथे नरक में दस सागर की स्थिति वाला नैरयिक हुआ।

अन्तिम भव

मध्य जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्रान्तर्गत मध्य खण्ड में गंगा नदी के तट पर काशी देश है, जहां वाणारसी नाम की एक रमणीय नगरी थी। वहां, ईक्ष्वाकु वंश में मुकुट के समान; अश्वसेन नाम के राजा राज्य करते थे। अश्वसेन की रानियों में, वामादेवी सब से श्रेष्ठ रानी थी, जो पटरानी भी थीं। स्वर्णबाहु चक्रवर्ती का जीव, प्राणत कल्प का आयुष्य भोग कर, चैत्र कृष्णा ४ की रात को वामादेवी के गर्भ में आया। सुख-शैय्या पर शयन किये हुए महारानी वामादेवी ने, तीर्थंकर के गर्भ सूचक चौदह महा-स्वप्न देखे। स्वप्नों को देखकर वे जाग उठीं। उन्होंने, देखे हुए स्वप्न, अपने पति महाराजा अश्वसेन को सुनाये, और पति से स्वप्नों का फल सुनकर प्रसन्न होती हुई अपने शयनागार में चली गईं, तथा शेष रात्रि धर्म जागरण में व्यतीत की।

महारानी वामादेवी, गर्भ का पोषण करने लगीं। गर्भ काल समाप्त होने पर, महारानी ने, पौष कृष्णा १० की रात को-जब चन्द्र अनुराधा नक्षत्र में आया हुआ था, तब—नीलमणि की शोभा को हरण करनेवाले, तथा अहि के मुख्य चिन्ह वाले त्रिलोकपूज्य पुत्र को जन्म दिया। भगवान के जन्मते ही क्षणभर के लिए त्रिलोक में प्रकाश हुआ और नारकीय जीवों को भी शांति मिली। छप्पन दिक्कुमारियों, अच्युतादि इन्द्र और देवों ने, भगवान का जन्म कल्याण मनाया।

प्रातःकाल महाराजा अश्वसेन ने, पुत्रजन्मोत्सव मनाकर बालक का नाम पार्श्वकुमार रखा। अनेक देवी-देव एवं मानव-मानवी से लालित-पालित भगवान पार्श्वकुमार, वृद्धि पाने लगे। भगवान, युवक हुए। उस सयम उनका नव हाथ ऊँचा नीलवर्णीय शरीर, बहुत शोभायमान मालूम होता था।

कुशस्थल नगर के राजा प्रसेनजित की प्रभावती नाम्नी एक कन्या थी, जो बहुत सुन्दरी थी। जब प्रभावती, विवाह के योग्य हुई, तब उसके माता पिता, प्रभावती के अनुरूप वर की खोज करने लगे। राजा प्रसेनजित ने बहुत तलाश की, लेकिन प्रभावती के योग्य वर का पता न लगा। एक दिन प्रभावती, अपनी सखियों के साथ बाग में टहल रही थी। वहां उसे किन्नरियों द्वारा गाया जाने वाला एक गीत सुनाई दिया, जिसमें

अश्वसेन-सुत पार्श्वकुमार के उत्कृष्ट रूप का वर्णन होने के साथ ही उस स्त्री को धन्य बताया गया था, जिसे पार्श्वकुमार की पत्नि बनने का सौभाग्य प्राप्त होगा। इस प्रकार का गीत सुन कर, प्रभावती के हृदय में पार्श्वकुमार के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उसने निश्चय किया, कि मैं अपना विवाह, नरश्रेष्ठ पार्श्वकुमार के साथ ही करूँगी, अन्यथा अविवाहिता ही रहूँगी। प्रभावती की सखियों ने, प्रभावती का यह निश्चय प्रभावती के माता-पिता को सुनाया। प्रभावती का निश्चय सुन कर प्रसेनजित प्रसन्न हुए और कहने लगे, कि जिसप्रकार कन्याओं में प्रभावती श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पुरुषों में पार्श्वकुमार श्रेष्ठ है। इन दोनों की जोड़ी योग्य है। प्रभावती का निश्चय पूर्ण करने की मैं चेष्टा करूँगा।

राजा प्रसेनजित प्रभावती को साथ लेकर वाणारसी आये। उन्होंने महाराजा अश्वसेन को प्रभावती का निश्चय सुनाया। महाराजा अश्वसेन कहने लगे, कि पार्श्वकुमार, बाल्यकाल से ही संसार को घृणा की दृष्टी से देखते हैं। वे, भविष्य में क्या करना चाहते हैं, इस विषय में हम कुछ नहीं जानते। चाहते तो हम भी यही हैं कि पार्श्वकुमार किसी योग्य कन्या के साथ विवाह करें, परन्तु उनके स्वभाव को देखते हमारी आशा पूर्ण होने में सन्देह है। फिर भी मैं प्रयत्न करूँगा कि पार्श्वकुमार, प्रभावती के साथ विवाह करलें।

महाराजा अश्वसेन, महाराजा प्रसेनजित और उनकी कन्या प्रभावती को साथ लेकर पार्श्वकुमार के पास गये। वे, पार्श्व-कुमार से कहने लगे, हे पुत्र, इन महाराजा प्रसेनजित की इस प्रभावती कन्या ने, तुम्हारे साथ विवाह करने की आशा से बड़ा कष्ट उठाया है। यह तुम पर मुग्ध है और इसने तुम्हें पति रूप मान भी लिया है। अतः तुम इसके साथ अपना विवाह करो। यद्यपि भगवान पार्श्वनाथ को विवाह-बन्धन में पड़ना स्वीकार न था; फिर भी पिता का आग्रह देखकर और भोग फल देनेवाले कर्म शेष जान कर, भगवान ने, विवाह करना स्वीकार कर लिया। परिणामतः भगवान—पार्श्वकुमार का, प्रभावती के साथ विवाह हो गया और दोनों आनन्द-पूर्वक रहने लगे।

एक समय झरोखे में बैठे हुए भगवान पार्श्वकुमार, बाजार की छटा देख रहे थे। उस समय भगवान ने देखा, कि झुण्ड के झुण्ड लोग, हाथ में फल फूलादि लिये हुये नगर से बाहर की ओर जा रहे हैं। पूछने से पता लगा, कि कमठ नाम का तापस पंचधुनी तापता है। वह, चारों ओर आग जला लेता है और ऊपर से सूर्य का आताप सहता है। लोग, उसी की भेंट—पूजा के लिए यह सामग्री लेकर जा रहे हैं। इतने ही में, माता वामादेवी का भेजा हुआ यह सन्देश भी भगवान के पास आया कि 'मैं, कमठ तपस्वी को वन्दन करने जा रही हूँ, आप भी वहीं

चले।' यद्यपि भगवान पार्श्वकुमार, इस प्रकार के तप को अज्ञान कष्ट समझते थे, फिर भी माता की आज्ञा का पालन करने, और वहां कोई बड़ा काम बनने वाला है, यह विचार कर, भगवान पार्श्वकुमार, गंगा तट पर वहां गये, जहां, कमठ तापस ताप ले रहा था।

यह कमठ तापस वही है, जिसने सिंह के भव में स्वर्णबाहु मुनि की हत्या की थी और जो चौथे नरक में गया था तथा भगवान पार्श्वनाथ, जब पूर्वभव में, विश्वभूति पुरोहित के लड़के मरुभूति थे, तब यह तापस, इन्हीं का भाई था और उसी समय से वैर बांधता आ रहा है। विश्वभूति के कमठ और मरुभूति, इन दोनों लड़कों में से कमठ तो यहां कमठ तापस के रूप में है और मरुभूति, पार्श्वकुमार के रूप में है।

भगवान पार्श्वकुमार, गंगा तट पर तप करते हुए कमठ तापस की धुनी के पास आये। वहां उन्होंने देखा कि धुनी में जलते हुए एक लक्कड़ में बैठा हुआ एक नाग भी जल रहा है। भगवान ने, तापस से कहा कि 'जिसमें बड़े-बड़े जीवों की हिंसा होती हो ऐसे अज्ञान तप से कोई सिद्धि नहीं मिल सकती। इस प्रकार धुनी तापने से कोई लाभ नहीं है, जिसमें कि पंचेन्द्रिय प्राणी तक की हत्या हो। देखो, इस धुनी में जलते

हुए लक्कड़ के साथ, एक सांप भी जल रहा है ।' तापस से यह कह कर, भगवान ने अपने सेवकों से उस लक्कड़ को धुनी से बाहर निकलवाया और सावधानी से लक्कड़ फाड़ने की आज्ञा दी। लक्कड़ के फटते ही, उसमें से तड़फता हुआ नाग निकल आया। भगवान ने, उस नाग को नमस्कार मंत्र की शरण दी। धर्म पर सम्यक् प्रकार से श्रद्धा लाने के कारण वह नाग, अपना शरीर त्याग कर, नागकुमार का स्वामी धरणेन्द्र हुआ। भगवान पार्श्व-कुमार भी, अपने महल को लौट आये।

यह घटना देखकर, लोगों ने उस तापस की बहुत निन्दा की। अपमानित होने के कारण तापस को भगवान पार्श्वकुमार पर बहुत क्रोध आया, परन्तु विवश था, अतः उसने अपने तप के फल स्वरूप यह कामना की कि मैं, मेरे वैरी पार्श्वकुमार के लिए दुःखदायी बनूं। अज्ञानतप के फल से कमठ तापस-मृत्यु-पाकर-मेघमाली देव हुआ। मेघमाली देव,भगवान पार्श्वकुमार से बदला लेने के समय की प्रतीक्षा करने लगा।

भगवान पार्श्वकुमार की आयु जब तीस वर्ष की हुई, तब एक दिन भगवान विचारने लगे, कि अब मेरे भोगफल देनेवाले कर्म, खपने आये हैं, अब मुझे आत्मकल्याण करना चाहिए। भगवान इस प्रकार विचार कर रहे थे, इतने ही में लोकान्तिक देवों ने आकर प्रार्थना की, कि हे प्रभो, अब धर्म तीर्थ प्रवर्ताइये।

भगवान ने, उसी समय से वार्षिकदान देना प्रारम्भ कर दिया।

वार्षिकदान समाप्त होने पर, दीक्षाभिषेक के पश्चात भगवान पार्श्वनाथ, विशाला नाम्नी शिविका में विराजे। इन्द्र और देव-देवी भगवान का निष्क्रमणोत्सव मनाने लगे। शिविकारूढ़ भगवान, मनुष्यों और देवों द्वारा होने वाले जयजयकार के मध्य वाणारसी नगरी में होते हुए, आश्रमपद नामक उद्यान में पधारे। वहां, सब वस्त्राभूषण त्यागकर, तीन सौ राजाओं के साथ, अष्टम के तप में, पौष कृष्णा ११ को—जब चन्द्र, अनुराधा नक्षत्र में था——भगवान पार्श्वकुमार ने संयम स्वीकार किया। संयम स्वीकार करते ही, भगवान पार्श्वनाथ को मनःपर्यय नाम का चौथा ज्ञान उत्पन्न हुआ।

दूसरे दिन, कोपकट ग्राम में धन्य नामक गृहस्थ के यहां, भगवान पार्श्वनाथ का पारणा हुआ। पारणा करके भगवान, अन्यत्र विहार कर गये।

एकबार, अप्रतिबन्ध विहार करते हुए भगवान, तापसों के आश्रम के समीप पधारे। सूर्यास्त हो चुका था, इसलिए भगवान पार्श्वनाथ, वहीं कुएँ के समीपस्थ वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग करके खड़े हो गये। मेघमालि देव ने, इस अवसर को अपना वैर चुकाने के लिए उपयुक्त समझा। उसने, पहले तो सिंह, चीता, हाथी और सिंह बनकर, भगवान को डराने की

चेष्टा की, परन्तु जब उसे सफलता न मिली, तब उसने आकाश में मेघ लाकर जल बरसाना शुरू किया। मेघ के गरजने, बरसने, बिजली के कड़कने और वायु के वेग से, बड़े-बड़े वृक्ष भी उखड़-उखड़कर गिरने लगे। वन के पशु-पक्षी, इधर-उधर भागने लगे। सारा वन, जलमय हो गया। जल, क्रमशः भगवान पार्श्वनाथ की कमर, छाती और नाक तक पहुँच गया, फिर भी भगवान, ध्यान में अविचल रहे। अनायास धरणेन्द्र का ध्यान इस ओर गया। भगवान पर यह उपसर्ग देखकर, धरणेन्द्र शीघ्र ही भगवान की सेवा में उपस्थित हुआ। भगवान को नमस्कार करके, धरणेन्द्र ने, भगवान के चरणों के नीचे स्वर्ण-कमल वैक्रिय किया और भगवान के मस्तक पर, अपने सप्त फण का छत्र करके भगवान के शरीर को अपने शरीर से आच्छादित कर लिया। उस समय भगवान की शोभा कुछ और ही दिखने लगी।

धरणेन्द्र ने, इस प्रकार भगवान का उपसर्ग निवारण किया। पश्चात वह, क्रुध होकर मेघमालि देव से कहने लगा। कि—अरे दुष्ट, तू यह क्या कर रहा है! या तो शीघ्र ही अपनी माया समेट कर भगवान का शरण ले, अन्यथा मैं तेरे इस अपराध को क्षमा न करूँगा। धरणेन्द्र की बात सुनकर मेघमालि बहुत लज्जित हुआ। अपनी माया समेट कर वह अपने मन में कहने लगा, कि मैंने इन महापुरुष को कष्ट देने के लिए

अपनी सारी शक्ति लगा दी, तब भी ये महापुरुष धीर ही बने रहे और मेरी समस्त शक्ति वृथा ही गई ! इसके सिवा ये महापुरुष, अंगूठ से मेरु पर्वत को हिलाने में समर्थ हैं, फिर भी इन्होंने मेरे पर क्रोध नहीं किया । अतः अब मेरी कुशल इन महापुरुष की शरण लेने में ही है । इस प्रकार विचार कर, मेघमालि अभिमान तज भगवान के चरणों में गिर पड़ा और भगवान से क्षमा-प्रार्थना करने लगा । वीतराग भगवान पार्श्वनाथ के समीप तो धरणेन्द्र और मेघमालि, समान ही थे, अतः भगवान ने, मेघमालि को आश्वासन दिया । अन्त में, धरणेन्द्र और मेघमालि दोनों, भगवान को नमस्कार करके अपने-अपने स्थान को गये । भगवान भी, अन्यत्र विहार कर गये ।

भगवान पार्श्वनाथ, छद्मस्थ-अवस्था में चौरासी दिन तक विचरते रहे । विचरते हुए भगवान वाणारसी के उसी उद्यान में पधारे, जिसमें भगवान ने संयम स्वीकार किया था । वहां, शुद्ध ध्यान में स्थित होने और सर्व घातिक कर्म नष्ट हो जाने से, भगवान ने, चैत्र कृष्णा १४ के दिन केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया । भगवान को केवलज्ञान होते ही, इन्द्र और देवता, भगवान का केवलज्ञान महोत्सव मनाने के लिए उपस्थित हुए । समवसरण की रचना हुई । बारह प्रकार की परिषद्, भगवान से धर्म श्रवण करने के लिए एकत्रित हुई । महाराजा अश्वसेन

आदि भी भगवान को वन्दन करने आये। भगवान ने, भव्यजीवों के लिए हितकारी उपदेश दिया। भगवान का उपदेश सुन कर, बहुत से जीव प्रतिबोध पाये। महाराजा अश्वसेन, महारानी वामादेवी, तथा रानी प्रभावती आदि ने भगवान के समीप संयम स्वीकार किया।

भगवान पार्श्वनाथ के आर्यदत्त आदि आठ गणधर थे। पन्द्र हजार मुनि थे। अड़तीस हजार साध्वियां थीं। एकलाखचव्व हजार श्रावक थे। और तीन लाख उन्चालीस हजार श्राविका थीं

भगवान पार्श्वनाथ, कुछ कम सत्तर वर्ष तक केवली पर्या में विचरते रहे और अनेक भव्य जीवों का कल्याण करते रहे अपना निर्वाणकाल समीप जानकर, एक सहस्र मुनियों सहि भगवान पार्श्वनाथ ने सम्मेत शिखर पर पधार कर अनशन क लिया जो एक मास तक चलता रहा। अन्त में, शैलेशी अवस्थ को प्राप्त हो भगवान पार्श्वनाथ ने सब कर्मों का अन्त कर दिय और सिद्ध पद को प्राप्त किया।

भगवान पार्श्वनाथ, तीस वर्ष तक कुमार पद पर रहे। तीन मास से कुछ कम, छद्मस्थ-अवस्था में विचरते रहे और शेष आयु केवली पर्याय में व्यतीत की। इस प्रकार एक सौ वर्ष का आयुष्य ोग कर भगवान पार्श्वनाथ, भगवान अरिष्टनेमि के निर्वाण को पौनेचौरासी हजार वर्ष वीत जाने पर निर्वाण पधारे।

प्रश्न—

१—भगवान पार्श्वनाथ के माता-पिता और जन्म-स्थान का नाम क्या था ?

२—भगवान पार्श्वनाथ की पत्नी का नाम क्या था और वे किसकी कन्या थीं, तथा किस घटना के कारण किस प्रकार दोनों का सम्बन्ध जुड़ा था ?

३—भगवान पार्श्वनाथ, वामादेवी के गर्भ में किस गति से- कितना आयुष्य भोग कर–पधारे थे ?

४—भगवान पार्श्वनाथ को मेघमालि देव ने क्या उपसर्ग पहुंचाया था और किस कारण ? उपसर्ग पहुँचाने का कारण कब एवं किस रूप में उत्पन्न हुआ था ?

५—भगवान पार्श्वनाथ के और कमठ तापस के बीच में कौनसी घटना घटी थी ?

६—धरणेन्द्र ने भगवान का उपसर्ग क्यों ? और किस प्रकार मिटाया था ?

७— कमठ तापस पूर्व-भव में कौन था ?

८—भगवान की जन्मतिथि, दीक्षातिथि और केवलज्ञान-तिथि बताओ ।

९—भगवान के शरीर का परिणाम और वर्ण बताओ।

१०—भगवान की आयु किस-किस प्रकार बीती ?

११—भगवान पार्श्वनाथ के और भगवान नमीनाथ के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा ?

भगवान श्री महावीर

प्रार्थना
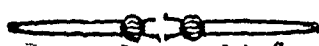
श्लोकः—

सिद्धार्थवंश भवनेऽस्तुत यं सुराली,
हृयातमोहम करध्वज माऽऽनतारे।
त्वांनौमि वीर! विनयेन सुमेरुधीरं,
हृया तमोह मकरध्वज मान तारे ॥

भावार्थ—जिनके हृदय से मोहनीय कर्म-काम क्रोध और मान हट गया है, जो मेरुपर्वत की भांति धीर हैं और देववृन्द जिन की स्तुति करते हैं ऐसे सिद्धार्थ वंश के पताका तुल्य और अरिवृन्द को नष्ट करने वाले हे महावीर! मैं विनय पूर्वक आपकी प्रार्थना करता हूँ क्योंकि आप अज्ञान को दूर हटाने वाले हैं।

पूर्व भव

इसी जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह की महावप्र विजय में जयन्ती नाम की एक नगरी थी। वहां, शत्रुमर्दन नाम का राजा राज्य करता था। उसके राज्यान्तर्गत पृथ्वप्रतिष्ठान नामक ग्राम में नयसार नाम का एक व्यक्ति रहता था, जो राजा शत्रुमर्दन का सेवक था। नयसार, स्वभाव से स्वामिभक्त, गुणग्राहक, कोमल स्वभाववाला और अपकृत्यों से दूर रहनेवाला था।

एक बार नयसार, कई गाड़े लेकर जंगल में, लकड़ी लाने गया। लकड़ी काटते-काटते मध्यान्ह का समय हो गया, तब अपने साथियों सहित नयसार, भोजन करने के लिये तैयार हुआ। इतने ही में नयसार ने देखा कि एक महात्मा चले आरहे हैं, जो सूर्य के प्रचण्ड ताप और क्षुधा-तृषा से पीड़ित हैं, मुनि को देखकर नयसार, प्रसन्न हुआ। अपना अहोभाग्य मानकर नयसार ने मुनि को प्रणाम किया और मुनि से पूछा कि आप इस गहन जंगल में कैसे पधारे हैं। मुनि ने उत्तर दिया कि मार्ग भूलने के कारण ही इस जंगल में भटक रहे हैं। नयसार ने श्रद्धा-भक्ति पूर्वक मुनि को दान दिया। मुनि ने आहर किया। पश्चात् नयसार ने, मुनि के साथ जाकर, मुनि को ठीक मार्ग से एक नगर के किनारे पहुँचा दिया। तब मुनि ने, नयसार को धर्मोपदेश दिया। नयसार ने मुनि से समकित स्वीकार की।

समकित स्वीकार करके नयसार, शुद्ध सम्यक्त्व पालता हुआ, मुनियों की सेवा करने लगा। कुछ काल पश्चात मृत्यु पाकर नयसार, प्रथम देवलोक में एक पल्य की स्थितिवाला देव हुआ।

इसी जम्बूद्वीप के इसी भरतक्षेत्र में विनीता नाम की नगरी थी, जहां भगवान ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती राज्य करते थे। प्रथम देवलोक का आयुष्य भोगकर नयसार का जीव, भरत चक्रवर्ती के यहां पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। शरीर की चमकती हुई कान्ति के कारण, इसका नाम मरीचि रखा गया।

जब भगवान ऋषभदेव संयम में प्रवार्जित होकर धर्मोपदेश देने लगे, तब मरीचि ने भी, भगवान के पास से संयम स्वीकार किया। मरीचि ने, ग्यारह अंग का अभ्यास भी किया, परन्तु उसे विहार की गर्मी असह्य हुई और वह परिषह को न जीत सका, अपितु परिषह से पराजित हो गया। परिषह जीतने में असमर्थ रहने के कारण, मरीचि, त्रिदण्डी (सन्यासी) हो गया। सन्यासी होने पर भी, मरीचि की श्रद्धा शुद्ध ही रही। जब उससे कोई धर्म के विषय में पूछता, तब वह वीतराग प्ररूपित साधु-धर्म ही श्रेष्ठ बताता और जब कोई यह पूछता, कि तुम उस धर्म को क्यों नहीं पालते हो, तब वह अपनी असमर्थता प्रकट करता। मरीचि, अपने उपदेश से प्रतिबोध पाये हुए व्यक्तियों को

भगवान ऋषभदेव के पास भेज देता । इस प्रकार करता हुआ मरीचि, भगवान ऋषभदेव के साथ ही विचरता रहा ।

एक बार भरत चक्री ने भगवान ऋषभदेव से पूछा, कि–हे प्रभो, इस अवसर्पिणी काल में, इस भरतक्षेत्र में आप जैसे कितने तीर्थंकर होंगे ? भगवान ने उत्तर दिया कि मुझ जैसे तेईस तीर्थंकर और होंगे, तथा तुझ जैसे ग्यारह चक्रवर्ती होंगे । इसी प्रकार नवनारायण नव बलदेव, और नव प्रतिवासुदेव होंगे । यह सुनकर भरत चक्रवर्ती ने फिर प्रश्न किया कि हे प्रभो, यहां पर कोई व्यक्ति ऐसा है, जो अवसार्पिणी काल में होने वाले अन्य तेईस तीर्थंकरों में तीर्थंकर होनेवाला हो ? भगवान ऋषभदेव ने उत्तर दिया, कि तुम्हारा पुत्र मरीचि, अवसर्पिणी काल के चौवीस तीर्थंकरों में से महावीर अथवा वर्द्धमान नाम का अन्तिम तीर्थंकर होगा । यही मरीचि, त्रिपृष्ट नाम का प्रथम वासुदेव तथा महाविदेह क्षेत्र में, प्रियमित्र नाम का चक्रवर्ती होगा ।

भरत चक्रवर्ती, भगवान को वन्दन करके मरीचि त्रिदण्डी के पास आये । मरीचि को वन्दन करके भरत चक्रवर्ती उनसे कहने लगे, कि 'भगवान ऋषभदेव का आपके लिए यह कथन है, कि आप भविष्य में, इस अवसर्पिण काल मे होने वाले चौवीस तीर्थंकरों में से अन्तिम तीर्थंकर होंगे और प्रथम वासुदेव होंगे तथा महाविदेह में चक्रवर्ती भी होंगे । मैंने आपको

सन्यासी समझ कर वन्दन नहीं किया किन्तु आप भावी तीर्थंकर हैं, इसलिए आपको नमस्कार किया है ।

भरत चक्रवर्ती द्वारा भगवान ऋषभदेव की भविष्यवाणी सुनकर, मरीचि त्रिदण्डी बहुत प्रसन्न हुआ । हर्षावेश में, वह कूदने लगा और कहने लगा, कि मैं, वासुदेव, चक्रवर्ती और तीर्थंकर होऊँगा ! मेरे पिता, प्रथम चक्रवर्ती हैं और मेरे पितामह प्रथम धर्मचक्री हैं ! मैं भी, प्रथम वासुदेव होऊँगा ! मैं कैसा कुलवान और श्रेष्ठ कर्म करने वाला हूँ ! मेरा कैसा सद्भाग्य है ! इस प्रकार गर्वोन्मत्त होकर मरीचि, बार-बार कहने लगा । उसने, अपने गर्व की आलोचना भी नहीं की, इसलिए उसने नीच गोत्र का उपार्जन किया ।

भगवान ऋषभदेव के निर्वाण पधारने के बाद भी, मरीचि, भगवान ऋषभदेव के साधुओं के ही साथ रहने लगा । कुछ दिन पश्चात वेदनीयकर्म के उदय से मरीचि, बीमार पड़ गया । भगवान ऋषभदेव के साधुओं ने मरीचि की [illegible], उसकी सुश्रुषा नहीं की । तब मरीचि विचारने लगा [illegible] जो कोई भी मेरे पास आता, मैं [illegible] पास भेज देता, अपना शिष्य न [illegible] मेरे साथ सहानुभूति [illegible] भी [illegible] विचार करने के पश्चात् ही मरीचि [illegible]

जो महात्मा अपने शरीर की भी उपेक्षा रखते हैं, वे मुझ जैसे पतित की सेवा सुश्रुषा क्यों करें ? और मैं उनसे ऐसी आशा भी क्यों करूँ ? अब तो मेरे लिए यही अच्छा है, कि स्वस्थ्य होने के पश्चात मैं भी एक शिष्य बनाऊँ।

एक समय कपिल नाम का एक व्यक्ति, धर्म का अर्थी होकर मरीचि के पास आया। मरीचि ने उसे अर्हत-धर्म का उपदेश दिया। कपिल ने मरीचि से पूछा कि तुम जिस धर्म का उपदेश मुझे दे रहे हो, उस धर्म का पालन स्वयं क्यों नहीं करते ? मरीचि ने, अर्हतधर्म पाल सकने की अपनी असमर्थता, कपिल के सामने प्रकट की। तब कपिल ने, मरीचि से पूछा कि क्या तुम्हारे मार्ग में धर्म नहीं है ? कपिल का प्रश्न सुनकर, मरीचि समझ गया कि यह कपिल जैन धर्म पालने में आलसी है। मरीचि ने, कपिल को अपना शिष्य बनाने के लोभ से, उनके प्रश्न के उत्तर में कहा, कि अर्हत-भाषित मार्ग में भी धर्म है और मेरे मार्ग में भी धर्म है। यह कह कर मरीचि ने, कपिल को अपना शिष्य बनाया। शिष्य के लोभ में कपिल ने सम्यक्त्व की विराधना करके एक क्रोड़ा-क्रोड़ सागर का मोहनीय कर्म उपार्जन किया। उसने, अपने इस कार्य की आलोचना भी नहीं की। अन्त में अनशन द्वारा काल करके मरीचि, ब्रह्मकल्प में दस सागर की स्थितिवाला देव हुआ।

मरीचि के शिष्य कपिल ने भी, असुर आदि अनेक शिष्य
य। अन्त में काल करके कपिल, पांचवें स्वर्ग में गया। वहां
वधिज्ञान से अपना पूर्वभव जानकर कपिल ने, मोहवश अपने
र्वभव के स्थान पर आकर अपने मत का प्रचार किया। उसी
समय मे सांख्य दर्शन की प्रवृत्ति हुई हो ऐसा माना जाता है।

मरीचि का जीव, ब्रह्मदेवलोक का आयुष्य भोगकर, कोलाक
गाम में ब्राह्मण हुआ। वहां भी वह त्रिदण्डी हुआ। पश्चात
भव-भ्रमण करता हुआ, स्थूण नामक स्थान में प्रियमित्र ब्राह्मण
हुआ। वहां भी, त्रिदण्डी ही हुआ। वहां से काल करके,
सौधर्म कल्प में देव हुआ। सौधर्मकाल का आयुष्य भोगकर,
...त्य नामक स्थान में अग्न्युद्योत नाम का ब्राह्मण हुआ। वहां भी
...न्यासी बना। पश्चात मृत्यु पाकर, ईशान्य कल्प मे देव हुआ।
ईशान्य कल्प से, मन्दिर नाम के सन्निवेश में अग्निभूति ब्राह्मण
हुआ। वहां भी त्रिदण्डी हुआ और फिर मृत्यु पाकर सनत्कुमार
...ल्प में देव हुआ। वहां से, ताम्बी नगरी में भारद्वाज ब्राह्मण
हुआ। वहां भी सन्यासी हुआ और काल करके माहेन्द्रकल्प में
...व हुआ। फिर अनेक भव भ्रमण करने के पश्चात ...
... में स्थावर नाम का ब्राह्मण हुआ। वहां भी सन्यासी ...
और काल करके ब्रह्मदेवलोक में देव हुआ ...
... सम्यक्त्व की विराधना करने पर, ...

इस प्रकार अनेक भवों में भ्रमण करता हुआ नयसार-या मरीचि-का जीव, राजगृह नगर के राजा विश्वनन्दी के छोटे भाई युवराज विशाखभूति की धारिणी रानी की कोंख से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। जिसका नाम विश्वभूति हुआ। विश्वभूति पराक्रमी था। एक बार विश्वभूति के भाइ विशाखनन्दी ने, विश्वभूति के साथ कपट किया। इस घटना ने विश्वभूति को संसार से विरक्त बना दिया। परिणामतः विश्वभूति, संयम लेकर उग्र तप करने लगा। यद्यपि तप के कारण विश्वभूति का शरीर बहुत दुर्बल हो गया था, फिर भी वह गीतार्थ होकर गुरु-आज्ञा से अकेला विचरने लगा।

एक समय राजकुमार विशाखनन्दी, मथुरा की राजकुमारी से विवाह करने के लिए मथुरा में आया हुआ था। इधर विचरते हुए विश्वभूति मुनि भी मथुरा में आये हुये थे। विशाखनन्दी, अपने ठहरने के महल की खिड़की में बैठा हुआ था। इतने ही में उधर से विश्वभूति मुनि मास-क्षमण के पारणे को भिक्षार्थ

बनने से भी जीव का कल्याण नहीं होता। बल्कि अज्ञानपूर्वक किया गया तप, और भवभ्रमण ही कराता है। मरीचि के इतने भव बड़े-बड़े हुए हैं, परन्तु उसे एकेन्द्रयादिक के भवों में भी भ्रमण करना पड़ा है। इसीलिए नमीराज ने इन्द्र से कहा था कि अज्ञानवश किया हुआ मास-मास-क्षमण का तप भी, तत्वज्ञ पुरुषों की करणी के सोलहवें अंश की भी समता नहीं कर सकता। —लेखक

निकले। कृश-शरीर विश्वभूति मुनि, एक गाय की टक्कर से भूमि पर गिर पड़े। विशाखनन्दी ने मुनि को पहचान लिया और मुनि का उपहास करता हुआ कहने लगा—कि रे कोठ पर के फलों को गिराने वाले; तेरा वह बल कल कहां गया ? विशाखनन्दी की व्यंग पूर्ण बात विश्वभूति मुनि को असह्य हुई। उन्होंने, क्रुद्ध होकर जिस गाय की टक्कर लगी थी. उसके सींग पकड़ कर उठा लिया और चक्कर देकर फिर भूमिपर रख दिया। पश्चात यह कामना की, कि मैं भवान्तर मे तप-प्रभाव से विशाखनन्दी को मारनेवाला होऊं। मुनि ने, इस दुष्यकामना की आलोचना भी नहीं की। अन्त में बहुत काल तक तप करके वे शरीर त्याग महाशुक्र देवलोक में उत्कृष्ट आयुष्य वाले देव हुए।

इसी जम्बू द्वीप के इसी भरत क्षेत्र में पोतनपुर नाम का एक नगर था। वहां, रिपुप्रतिशत्रु अथवा प्रजापति नाम का राजा राज्य करता था। रिपुप्रतिशत्रु की भद्रा नाम्नी रानी की कोख से, अचल नाम के बलदेव उत्पन्न हुए। पश्चात [illegible] की मृगावती नाम की दूसरी रानी की कोख से—[illegible] देवलोक का आयुष्य भोगकर—विश्वभूति का जीव, पुत्र [illegible] उत्पन्न हुआ। इस पुत्र के पृष्ठ भाग में तीन [illegible] [illegible] का नाम, त्रिपृष्ठ हुआ। [illegible] [illegible]—दोनों भाई—आनन्द से रहने [illegible]

उन्हीं दिनों में, अश्वग्रीव नामका प्रतिवासुदेव, तीन खण्ड पृथ्वी का स्वामी बन रहा था। वासुदेव और बलदेव के पिता राजा रिपुप्रतिशत्रु तथा और बड़े २ राजा भी, अश्वग्रीव की आज्ञा मानते थे। एक समय अश्वग्रीव ने एक नैमित्तिक से पूछा, कि मेरी मृत्यु किस प्रकार होगी ? नैमित्तिक ने कहा,कि जो पुरुष आपके चण्डवेग दूत पर आक्रमण करेगा, और जो तुंगगिरि के समीप रहे हुए केसरीसिंह को लीला मात्र में चीर डालेगा, उसी--रिपुप्रतिशत्रु राजा के पुत्र-त्रिपृष्ठ से आपका युद्ध होगा। उस युद्ध में त्रिपृष्ठ, आपको मारकर तीन खण्ड पृथ्वी का भोक्ता वासुदेव होगा।

नैमित्तिक से यह जानकर कि मेरी मृत्यु,त्रिपृष्ठ वासुदेव से होगी, अश्वग्रीव को बड़ी चिन्ता रहने लगी। उसने, प्रतापी और दूत-क्रिया-कुशल चण्डवेग को पोतनपुर भेजा। पोतनपुर में, अपने पुत्रों सहित राजा रिपुप्रतिशत्रु, नाटक देख रहे थे। चण्डवेग, सीधा उसी नाट्य-स्थल पर चला गया, जिससे नाटक का रंग–भंग हो गया, त्रिपृष्ठ वासुदेव को यह बात असह्य हुई। उन्होंने, चडण्वेग से कहा, कि रे मूर्ख तूं सूचना दिये बिना नाट्य-सभा में कैसे चला आया ? यह कह कर त्रिपृष्ट वासुदेव ने, अपने दूतों द्वारा चण्डवेग को खूब पिटवाया। चण्डवेग के साथी यह देख कर भाग गये और उन्होंने यह सब हाल अश्व-

ग्रीव को जा सुनाया। यह घटना सुनकर, अश्वग्रीव की चिन्ता और बढ़ गई।

उन्हीं दिनों विश्वभूति का भाई (विश्वभूति मुनि का उपहास करने वाला) विशाखनन्दी कुमार, भव-भ्रमण करके, तुंगगिरि की तराई में केसरी सिंह हुआ था। वह सिंह बहुत बलवान, क्रोधी और जनता के लिये भय का कारण था। इस सिंह के भय से, तुंगगिरि के समीपस्थ शंखपुर के प्रदेश के शालि-खेत की रक्षा करना, प्रजा के लिए असम्भव हो गया था। इस लिए राजा अश्वग्रीव अपने आज्ञाकारी राजाओं को शंखपुर-प्रदेश की प्रजा की सहायता के लिए भेजा करता था।

एक बार, शंखपुर के शालि खेतों की रक्षा करनेवाले कृषकों की सहायता के लिए राजा रिपुप्रतिशत्रु के जाने का क्रम आया। राजा, रिपुप्रतिशत्रु, अपने दोनों पुत्रों को राज्य सम्हला कर, शंखपुर की ओर जाने को तैयार हुए। तब त्रिपृष्ठ कुमार ने रिपुप्रतिशत्रु से कहा—पिताजी, ऐसे तुच्छ कार्य के लिए आपका जाना ठीक नहीं है, आप यहीं रहिये, हम दोनों भाई जाते हैं। राजा रिपुप्रतिशत्रु ने बहुत रोका, परन्तु त्रिपृष्ठ कुमार और अचल बलदेव, पिता की आज्ञा लेकर गये ही।

निश्चित स्थान पर पहुँच कर, त्रिपृष्ठ [illegible] ने, [illegible] लोगों से पूछा कि यहाँ क्या [illegible] है [illegible]

लोग, क्या करते हैं ? लोगों ने उत्तर दिया, कि शाली-खेत की चारों ओर सेना का कोट बनाकर तब तक रहते हैं, जब तक कि शालि कट नहीं जाती। त्रिपृष्ठ ने कहा कि इतने समय तक पड़े रहना, मेरे लिए तो व्यर्थ ही है। तुम लोग मुझे वह सिंह बता दो, कि मैं उसे मार डालूँ।

लोगों ने, त्रिपृष्ठ कुमार के साथ जाकर, उन्हें वह सिंह बता दिया। त्रिपृष्ठकुमार रथ तथा अस्त्र-शस्त्र छोड़ निःसस्त्र हो सिंह से युद्ध करने लगे। युद्ध करते हुए त्रिपृष्ठ कुमार ने, सिंह को पकड़ कर चीर डाला। क्रोध और दुःख के मारे सिंह तड़फड़ाने लगा। उस समय त्रिपृष्ठ कुमार के सारथी ने सिंह से कहा कि— हे पशुराज, तू किसी साधारण मनुष्य से नहीं मारा गया है, किन्तु पुरुषोत्तम के हाथ से मारा गया है। अतः वृथा दुःख न कर, न अपना अपमान ही मान। सारथी की वाणी से सिंह को संतोष हुआ और वह पंचत्व को प्राप्त हुआ। देवताओं ने त्रिपृष्ठ पर पुष्पादि की वर्षा की।

अश्वग्रीव प्रति वासुदेव ने त्रिपृष्ठ द्वारा सिंह के मारे जाने का समाचार सुना। नैमित्तिक के कहे हुए लक्षण ठीक जानकर, अश्वग्रीव को बहुत दुःख हुआ। वह, त्रिपृष्ठ की ओर से सशंक रहने लगा।

वैताढ्य गिरि पर, विद्याधरों की श्रेणी में, रथनू पुर-चक्रवाल नामक नगर था। वहां ज्वलनजटी नाम का विद्याधर राजा राज्य

१

...ा था। विद्याधर ज्वलनजटी की अनुपम सुन्दरी स्वयंप्रभा
...ी कन्या थी। जब स्वयंप्रभा सयानी हुई, तब ज्वलनजटी
...चार करने लगा, कि मैं यह कन्या-रत्न किसे दूँ ! इतने ही में
...क नैमित्तिक आया। नैमित्तिक ने ज्वलनजटी से कहा, कि
पोतनपुर के रिपुप्रतिशत्रु राजा का पुत्र त्रिपृष्ठ कुमार, इस कन्या
के योग्य वर है। त्रिपृष्ठ कुमार, थोड़े ही समय में राजा अश्वग्रीव
को मार कर त्रिखण्ड पृथ्वीपति प्रथम वासुदेव होगा और आपको
यह विद्याधरों की दोनों श्रेणी का अधिपति बनावेगा। नैमित्तिक
की बात मान कर, ज्वलनजटी ने, स्वयंप्रभा का विवाह, त्रिपृष्ठ के
साथ कर दिया। जब यह समाचार अश्वग्रीव ने सुना, तब वह
यह विचार कर ज्वलनजटी पर क्रुध हुआ, कि उसने स्वयंप्रभा
का विवाह, मेरे शत्रु त्रिपृष्ठ के साथ क्यों किया मेरे साथ क्यों
नहीं किया ! अश्वग्रीव ने, त्रिपृष्ठ और ज्वलनजटी के विरुद्ध युद्ध
ठान दिया। अश्वग्रीव और त्रिपृष्ठ में घोर युद्ध हुआ अन्त में
अश्वग्रीव को मारकर, त्रिपृष्ठ, तीन खण्ड पृथ्वी को स्वाधीन [illegible]
वासुदेव हुए। भरतार्द्ध के समस्त राजाओं ने, त्रिपृष्ठ वासुदेव का
आधिपत्य स्वीकार किया।

त्रिपृष्ठ नारायण, तीन खण्ड पृथ्वी का [illegible]
[illegible] काल बिताने लगा। [illegible]
[illegible], पोतनपुर [illegible]

से समकित प्राप्त की लेकिन भोगों में बहुत अधिक मूर्छित रहने के कारण वासुदेव ने, सम्यक्त्व को भी भुला दिया। एक समय, श्रेष्ठ गायक गारहे थे। शयन करते समय वासुदेव ने, शैया-रक्षक को यह आज्ञा दी, कि जब मुझे नींद आ जावे, तब गायकों को बिदाकर देना। शैया-रक्षक गायकों के गीत पर ऐसा मुग्ध हुआ, कि वह वासुदेव की आज्ञा को विस्मृत हो गया। वासुदेव जब जागे, तब गायकों का गीत सुनाई दिया। उन्होंने, शैया-रक्षक से पूछा, कि मेरी आज्ञानुसार तूने इन गायकों को बिदा क्यों नहीं कर दिया? उसने वास्तविक कारण प्रकट करके वासुदेव से क्षमा मांगी लेकिन वासुदेव उस पर बहुत क्रुध हुए और उनने प्रातःकाल तपाया हुआ शीशा, उस शैया-रक्षक के कानों में डलवा दिया। शैया-रक्षक मर गया। इस प्रकार त्रिपृष्ठ वासुदेव ने महा निकाचित अशाता-वेदनी कर्म उपार्जन किया। अन्त में, त्रिपृष्ठ वासुदेव, उग्र कर्म उपार्जन करके, चौरासी लाख वर्ष का आयुष्य भोग, सातवें नरक में उत्पन्न हुए।

नयसार अथवा विश्वभूति अथवा त्रिपृष्ट वासुदेव का जीव, सातवें नरक में कई सागर का आयुष्य भोगकर, केसरीसिंह हुआ फिर, चौथे पंक प्रभा नरक में उत्पन्न हुआ। वहां से, शुभ कर्म के योग से फिर मनुष्य भव पाया और संयम पाल देवलोक गया।

अपर महाविदेहकी मूका नगरीमें धनंजय राजा था, जिसकी

धारिणी रानी थी । देवलोक का आयुष्य भोग कर त्रिपृष्ठ का जीव धारिणी रानी की कोंख में आया । धारिणी रानी ने, चौदह स्वप्न देखे । समय पर धारिणी रानी ने, तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया । धनंजय राजा ने, वालक का नाम प्रियमित्र रखा ।

जब प्रियमित्र बड़ा हुआ तब धनंजय ने राजपाट उसे सौंप दिया और स्वयं संयम में प्रवर्जित हो गया । प्रियमित्र, न्याय पूर्वक राज्य करने लगा । कुछ काल पश्चात, प्रियमित्र के यहां चौदह महारत्न प्रकट हुए छः खण्ड पृथ्वी को साध प्रियमित्र चक्रवर्ती हुआ । प्रियमित्र, बहुत काल तक चक्रवर्ती की समृद्धी भोगता रहा ।

एक समय मूका नगरी में पोटिल नामके आचार्य पधारे । चक्रवर्ती, उन्हें वन्दना करने गया । मुनि के उपदेश से वैराग्य पाकर प्रियमित्र चक्रवर्ती, अपने पुत्र को राज्य सौंप कर संयम में प्रव-जित हो गया । ज्ञानाभ्यास एवं कोटि वर्ष तक उत्कृष्ट तप करके प्रियमित्र, अनशन द्वारा शरीर त्याग महा शुक्र नाम के आठवें देवलोक में देव हुआ ।

का जीव, धारिणी की कोंख से पुत्र-रूप में उत्पन्न हुआ, जिसका नाम नन्द रखा गया । जब कुमार नन्द बड़ा हुआ, तब जितशत्रु ने राज–पाट उसे सौंप कर संयम स्वीकार लिया ।

नन्द राजा हुआ । वह, चौबीस लाख वर्षों तक सुख पूर्वक राज्य करता रहा । पश्चात संसार से विरक्त हो, संयम में प्रवर्जित हो गया। संयम में प्रवर्जित हो कर नन्द मुनि ने, एक लाख वर्ष तक मास क्षमण का तप किया । अप्रमत्तपने ज्ञान दर्शन और चारित्र की आराधना करके और उत्कृष्ट भावों से बीस बोलों का सेवन करके, प्रियमित्र ने, तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन किया अन्त में अनशन करके, सब जीवों से क्षमा-याचना पूर्वक विशुद्ध हो, शरीर त्याग, प्राणतकल्प के महा पुष्पोत्तर विमान में, बीस सागर की उत्कृष्ट स्थितिवाला देव हुआ।

वर्त्तमान भव

इसी जम्बूद्वीप में, मनुष्यों के निवास के दस क्षेत्र हैं। इन क्षेत्र में से भरतक्षेत्र, सब से छोटा तो है, परन्तु है सब से अधिक रमणीय । गंगा और सिन्धु के प्रवाह के कारण भरतक्षेत्र, छः भागों में विभक्त हो गया है । इन छः भाग में से मध्य भाग

की रमणीयता, कुछ अलौकिक ही है। अर्थात पहाड़, नदियों और वृक्षों के कारण विहार और उड़ीसा का प्रदेश चित्ताकर्षक एवं आनन्द दायक बनरहा है।

विहार-उड़सी के प्रदेश में, ब्राह्मणकुंड नामक एक ग्राम था। यहां ऋषभदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था, जो वेद का पारंगत था। ऋषभदत्त ऋद्धि-सम्पन्न था, इसी तरह अधिकारी भी था। ऋषभदत्त की पत्नी का नाम देवानन्दा था, जो बहुत रूपवती होने के साथ ही, पति-अनुगामिनी भी थी।

प्राणत देवलोक के महापुण्डरीक पुष्पोत्तर विमान में बीस सागर का आयुष्य पूर्ण करके नन्द राजा का जीव पूर्व-कर्म अवशेष होने के कारण, आषाढ़ शुक्ला ६ की रात को हस्तोत्तरा नक्षत्र में, देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में आया। सुख-पूर्वक सोती हुई देवानन्दा ने तीर्थंकर का जन्म सूचित करने वाले स्वप्न—हाथि वृषभ, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चन्द्र, सूर्य, ध्वज, कुंभकलश, पद्म, सरोवर, क्षीर समुद्र, विमान, रत्नराशि और अग्निशिखा—ये क्रमशः देखा। इन स्वप्नों को देखकर देवानन्दा जाग उठी।

की प्राप्ति होगी, जो वेद-शास्त्र का पारगामी और विद्वानों में शिरोमणि होगा। स्वप्नों का यह फल सुन कर देवानन्दा बहुत प्रसन्न हुई और यत्न पूर्वक गर्भ का पोषण करने लगी।

देवानंदा को गर्भ धारण किये लगभग बयासी दिन बीते, तब दक्षिण-लोक के स्वामी सौधर्मेन्द्र को अवधिज्ञान द्वारा यह देख कर आश्चर्य हुआ, कि अंतिम तिर्थंकर भगवान महावीर, देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में हैं। वे, तत्क्षण गर्भस्थ भगवान को नमस्कार करके यह विचार करने लगे, कि तीर्थङ्करादि महापुरुष उत्तम कुल में ही उत्पन्न होते हैं, दीन-हीन कुल में उत्पन्न नहीं होते, फिर अन्तिम तीर्थंकर महावीर, ब्राह्मणी के गर्भ में क्यों है ? विचार करते हुए सौधर्मेन्द्र, इस निर्णय पर पहुँचे कि एक तो भगवान महावीर, पूर्वकृत नाम गौत्र कर्म की प्रकृतियों के कारण ब्राह्मणी के गर्भ में आये हैं, और दूसरे अनन्तकाल में हुंडासार्पिणी के प्रभाव से भी ऐसा हो जाता है। इस निर्णय पर पहुँचकर, सौधर्मेन्द्र ने अपने कर्त्तव्य को दृष्टि में रखकर, भगवान को ऐसे कुल में न जन्मने देने और गर्भस्थ भगवान को उत्तम कुल में जन्माने का निश्चय किया। उन्होंने, तत्क्षण अपने सेनापती हरिणगवेषी देव को बुलाया और उसे आज्ञा दी, कि तुम देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भस्थ अन्तिम तिर्थंकर भगवान महावीर को क्षत्रियकुण्ड

ग्राम के राजा सिद्धार्थ की रानी त्रिशलादेवी के गर्भ में पहुँचाओ तथा त्रिशलादेवी के गर्भ में जो कन्या है, उसे देवानन्दा के गर्भ में पहुँचाओ और यह कार्य करके मुझे सूचना दो। इन्द्र की आज्ञानुसार कार्य करके हरिणगवेषी देव, गर्भस्थ भगवान से क्षमा प्रार्थना कर, इन्द्र के पास गया, और उनसे प्रार्थना की, कि मैंने आपकी आज्ञानुसार कार्य कर दिया है।

हरिणगवेषी देव ने, देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में रहे हुए भगवान महावीर को, आश्विन कृष्णा १३ की रात में त्रिशला देवी के गर्भ में पहुँचाया। उसी समय सुख-शैया पर सोई हुई महारानी त्रिशलादेवी ने तीर्थङ्कर के गर्भ सूचक चौदह महास्वप्न

भगवान महावीर जिस दिन से गर्भ में पधारे, उस दिन से राजा सिद्धार्थ के यहां धन धान्य सुख सम्पत्ति और राज्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। महाराजा सिद्धार्थ और महारानी त्रिशलादेवी ने इसे गर्भ का ही प्रताप समझ कर यह निश्चय किया, कि गर्भस्थ बालक जब उत्पन्न होगा तब उसका नाम वर्द्धमान देंगे।

गर्भस्थ भगवान ने, अनन्त दयालुता के कारण यह विचार कर माता के पेट में हिलना डुलना बंद कर दिया कि मेरे हिलने डुलने से माता को कष्ट होता होगा। इस प्रकार माता पर अनुकम्पा करके भगवान ने अपने अंग संकोच लिए लेकिन इस घटना से त्रिशलादेवी को और दुःख हुआ। वे विचारने लगीं, कि मेरे गर्भ को क्या होगया, जो स्थिर है ! इस प्रकार त्रिशला देवी की शारीरिक पीड़ा तो कम हुई, परन्तु मानसिक पीड़ा बढ़ गई। वे, चिन्ता सागर में गोते लगाने लगीं। राज-महल में होने वाले वाद्यगीत भी बन्द होगये। गर्भस्थ भगवान ने देखा कि मेरे अंगोपांग सिकोड़ने से तो माता को और कष्ट होरहा है, जो मुझे इष्ट नहीं है, तो उन्होंने तत्क्षण अंगसंचालन किया। भगवान के अंगसंचालन करते ही, त्रिशला देवी की चिन्ता मिटगई और वे पूर्ववत् प्रसन्न रहने लगीं। त्रिशलादेवी के इस गर्भस्थ पुत्र-प्रेम को दृष्टि में रख कर, भगवान ने गर्भ में ही यह प्रतिज्ञा

का प्रतिविम्ब रख, भगवान को अपने हाथों उठा कर शक्रेन्द्र, जय-जयकार के मध्य भगवान को मंदराचल पर्वत पर लाये। वहां, विधिवत् भगवान का जन्मकल्याण महोत्सव किया। भगवान को स्नान कराते समय भगवान का छोटा शरीर देखकर शक्रेन्द्र के मनमें शंका हुई। अवधिज्ञान द्वारा इंद्र के मन की शंका जान कर भगवान ने, सारे पर्वत को कंपायमान कर दिया और इस प्रकार इन्द्र की शंका निवारण की। इस घटना को दृष्टि में रख कर ही देवों ने भगवान का नाम महावीर दिया।

भगवान का जन्मकल्याण-महोत्सव मनाकर शक्रेन्द्र उसी रात में भगवान को माता के पास रखकर माता की अस्वापिनी निद्रा हटा कर अपने स्थान को गये। प्रातःकाल महाराजा सिद्धार्थ ने पुत्र जन्मोत्सव मनाकर भगवान का नाम वर्द्धमान रखा। अनेक धाइयों के संरक्षण से भगवान वृद्धि पाने लगे।

यद्यपि तीर्थङ्कर जन्म से ही अवधिज्ञान युक्त होते हैं, उन्हें किसी विद्या या कला के सीखने की कोई आवश्यकता नहीं होती फिर भी भगवान महावीर माता-पिता की आज्ञा मानकर सात वर्ष से कुछ अधिक अवस्था में कलाचार्य के पास कला सीखने के लिए गये। कलाचार्य के पास भगवान विद्याध्ययन कर रहे थे, उस समय इन्द्र पंडित का रूप बना कर पाठशाला में गये। इन्द्र ने, कुमार वर्द्धमान से कई विकट प्रश्न किये। कुमार वर्द्धमान ने,

इन्द्र के प्रश्नों का सुयोग्यता-पूर्वक उत्तर दिया, उसे देख कर, कलाचार्य को भी दंग रह जाना पड़ा। कलाचार्य विचारने लगे, कि जिन प्रश्नों का उत्तर मैं भी नहीं दे सकता, उन प्रश्नों का उत्तर देने वाले को मैं क्या पढ़ाऊँगा ! इस प्रकार विचार कर, कलाचार्य ने, महाराजा सिद्धार्थ से कहा कि कुमार वर्द्धमान तो मेरे भी गुरु हैं, मैं इन्हें क्या पढ़ाऊं! आप इन्हें लिया जाइये! कलाचार्य की बात सुन कर, महाराजा सिद्धार्थ, महोत्सव-पूर्वक भगवान को महलों में ले आये।

भगवान महावीर के एक बड़े भाई थे जिनका नाम नन्दि-वर्द्धन था। इसी प्रकार सुदर्शन नाम्नी एक बहन भी थी।

भगवान के बड़े भाई नन्दिवर्द्धन, माता-पिता के स्वर्गवास से बहुत दुःखी हुए; लेकिन भगवान महावीर ने, वस्तु स्वरूप का विचार करके माता-पिता के वियोग को शान्तिपूर्वक सहन किया और अपने भ्राता नन्दिवर्द्धन को भी उपदेश द्वारा धैर्य दिलाया।

राज-नियम के अनुसार, पिता की राजगादी पर, बड़े भाई का ही अधिकार होता है, लेकिन महाराजा सिद्धार्थ के बड़े पुत्र नन्दिवर्द्धन ने विचार किया कि कुमार वर्द्धमान, बलवान और राज्य करने के योग्य हैं, और बलवानों को ही राज्य प्राप्त होता है, अतः मेरे लिए यही उचित है, कि मैं पिता के राज्या-सन पर, कुमार वर्द्धमान को आरूढ़ करूं। इस प्रकार विचार कर नन्दिवर्द्धन कुमार वर्द्धमान से कहने लगे, कि--पिता का राजभार तुम स्वीकार करो। वर्द्धमान ने, भाई को उत्तर दिया कि राज्य के अधिकारी आप हैं, अतः आप ही राज्य करिये। मैं ऐसा राज्य नहीं लेना चाहता, जिसमें अशांति ही अशांति हो; मैं तो वह राज्य चाहता हूं, कि जिसमें अशान्ति का चिन्ह भी न हो। अंत में, महाराजा सिद्धार्थ के स्थान पर, नंदिवर्द्धन राजा हुए।

दीर्घकाल से दीक्षा लेने के लिए, उत्सुक होते हुए भी, भगवान महावीर, माता-पिता को मेरे वियोग का दुःख न हो इस दृष्टि से गृहस्थाश्रम में ठहरे हुए थे। माता-पिता का स्वर्गवास होने के पश्चात भगवान ने, अपने भ्राता नन्दिवर्द्धन से-दीक्षा

लेने के लिए अनुमति मांगी। भगवान की बात सुनकर, नन्दि-वर्द्धन, आंखों में आंसू भरकर, भगवान से कहने लगे, कि—अभी मैं माता-पिता के वियोग का दुःख तो विस्मृत कर ही नहीं सका हूं, फिर आप यह क्या कह रहे हैं ! आप इसी समय अपने वियोग के दुःख से मुझे और दुःखी क्यों करना चाहते हैं वैसे तो आप गृह में रहते हुए भी गृहत्यागी के ही समान हैं, लेकिन गृह त्याग कर, मुझे और दुःखी न बनाइये इस पर भी यदि आपकी इच्छा संयम लेने की ही है, तो अभी थोड़े दिन और ठहरिये, फिर जैसा आप उचित समझें, वैसा करना। भ्राता की बात मानकर भगवान, एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक गृह

सब आभूषण त्याग कर छट्ठ के तप में पञ्चमुष्टि लोच करके, मार्गशीर्ष कृष्ण १० को दिन के पिछले पहर में जब चन्द्र हस्तोत्तरा नक्षत्र में आया हुआ था—भगवान ने संयम स्वीकार किया। उसी समय भगवान को, मनःपर्यय नामका चौथा ज्ञान उत्पन्न हुआ। राजा नन्दिवर्द्धन आदि, भगवान को वन्दन करके अपने स्थान को आये और भगवान, अन्यत्र विहार कर गये।

विहार करते हुए जब संध्या हुई, तब भगवान जंगल में ही ध्यान धर कर खड़े हो गये। इतने ही में, कुछ ग्वाले वहां आगये। वे भगवान से बोले, कि हम कुछ काम करके फिर आते हैं, तब तक तुम हमारी इन गायों की सम्हाल रखना, ये कहीं चली न जावें। प्रभु महावीर ध्यान में मग्न थे। वे यह जानते ही न थे, कि कौन क्या कह रहा है! इसके सिवा गृह-संसार त्यागी भगवान, गायें सम्हालने के प्रपंच में भी क्यों पड़ने लगे! ग्वाले, भगवान से गायें सम्हालने का कह कर चले गये, लेकिन जब वापस आये, तब उन्हें गायें वहां न मिली. तितिर-बितर होकर कहीं चली गई थी। वे भगवान से पूछने लगे कि गायें कहां हैं? लेकिन भगवान ध्यान में थे, इससे उन्होंने कुछ भी उत्तर न दिया। तब ग्वाले, क्रुद्ध होकर कहने लगे, कि हम गायें इस धूर्त्त को सम्हलवा गये थे, इसीने गायों को कहीं छिपाया है और अब पूछने पर बोलता भी नहीं है! उन

ग्वालों में से एक ग्वाला, हाथ में की रस्सी का कोड़ा बनाकर उसे घुमाता हुआ और भगवान से गायों के लिये पूछता हुआ, भगवान को कोड़ा मारने के लिये तैयार हुआ। इतने ही में, इन्द्र का ध्यान, उस घटना की ओर गया। इन्द्र, तत्काल वहां उपस्थित हुए, और भगवान को नमस्कार करके, ग्वालों की ओर कड़ी दृष्टि से देखते हुए, मन ही मन कहने लगे, कि—प्रभो आप पर इसी प्रकार के उपसर्ग आने वाले हैं अतः आप मुझे अपने साथ रहकर सेवा करने की स्वीकृति दीजिये! मन में की हुई इंद्र की इस प्रार्थना के उत्तर में, भगवान बोले—हे इन्द्र, मेरी मुक्ति में पर [illegible] से [illegible]! न, मेरी शक्ति, कहना

सब आभूषण त्याग कर छट्ठ के तप में पञ्चमुष्टि लोच करके, मार्गशीर्ष कृष्ण १० को दिन के पिछले पहर में जब चन्द्र हस्तोत्तरा नक्षत्र में आया हुआ था—भगवान ने संयम स्वीकार किया। उसी समय भगवान को, मनःपर्यय नामका चौथा ज्ञान उत्पन्न हुआ। राजा नन्दिवर्द्धन आदि, भगवान को वन्दन करके अपने स्थान को आये और भगवान, अन्यत्र विहार कर गये।

विहार करते हुए जब संध्या हुई, तब भगवान जंगल में ही ध्यान धर कर खड़े हो गये। इतने ही में, कुछ ग्वाले वहां आगये। वे भगवान से बोले, कि हम कुछ काम करके फिर आते हैं, तब तक तुम हमारी इन गायों की सम्हाल रखना, ये कहीं चली न जावें। प्रभु महावीर ध्यान में मग्न थे। वे यह जानते ही न थे, कि कौन क्या कह रहा है! इसके सिवा गृह-संसार त्यागी भगवान, गायें सम्हालने के प्रपंच में भी क्यों पड़ने लगे! ग्वाले, भगवान से गायें सम्हालने का कह कर चले गये, लेकिन जब वापस आये, तब उन्हें गायें वहां न मिली. तितिर-बितर होकर कहीं चली गई थी। वे भगवान से पूछने लगे कि गायें कहां हैं? लेकिन भगवान ध्यान में थे, इससे उन्होंने कुछ भी उत्तर न दिया। तब ग्वाले, क्रुद्ध होकर कहने लगे, कि हम गायें इस धूर्त्त को सम्हलवा गये थे, इसीने गायों को कहीं छिपाया है और अब पूछने पर बोलता भी नहीं है! उन

ग्वालों में से एक ग्वाला, हाथ में की रस्सी का कोड़ा बनाकर उसे घुमाता हुआ और भगवान से गायों के लिये पूछता हुआ, भगवान को कोड़ा मारने के लिये तैयार हुआ। इतने ही में, इन्द्र का ध्यान, इस घटना की ओर गया। इन्द्र, तत्क्षण वहां उपस्थित हुए, और भगवान को नमस्कार करके, ग्वालों की ओर कड़ी दृष्टी से देखते हुए, मन ही मन कहने लगे, कि—प्रभो आप पर इसी प्रकार के उपसर्ग आने वाले हैं अतः आप मुझे अपने साथ रखकर सेवा करने की स्वीकृति दीजिये ! मन में की हुई इंद्र की इस प्रार्थना के उत्तर में, भगवान बोले–हे इन्द्र, तेरी बुद्धि में यह विकार कहां से आया ! तू, मेरी भक्ति करता है, या आसातना करता है ? क्या तू तीर्थङ्कर और वीतराग को सहायता देने की इच्छा रखता है ! जो अपने कर्मक्षय करने के लिये निकला है, क्या वह तेरी सहायता की अपेक्षा रखेगा ! तू यह तो विचार कर, कि अनन्त बली अरिहन्त की सहायता करने के लिये तैयार होना, अरिहंत की भक्ति है, या उनका अपमान है ! तू, मेरा काम मुझे ही करने दे, मेरे लिए किसी प्रकार की चिन्ता मत कर। भगवान का उत्तर सुनकर, इन्द्र को बहुत आश्चर्य हुआ। आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से भगवान की ओर देखते हुए, भगवान को नमस्कार करके इन्द्र अपने स्थान को गये और जाते समय सिद्धार्थ नाम के व्यन्तर देव को, अदृश्य,

रूप से, भगवान की सेवा में रहने की आज्ञा दे गये। उसी समय, घटनास्थल पर एक दम प्रकाश हो गया, जिसे देखकर ग्वाले आश्चर्य करने लगे और भगवान महावीर के लिये कहने लगे, कि यह पुरुष तो अलौकिक है, इसे हमारी गायों से क्या मतलब! हमने इसकी आसातना करके बहुत बड़ा अपराध किया है! अंतमें वे ग्वाले, भगवान के पैरों पड़, अपना अपराध क्षमा करा कर अपने स्थान को गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल कोल्लाक ग्राम में, बहुलनामक ब्राह्मण के यहां भगवान का परमान्न से पारणा हुआ। दान की महिमा दिखाने के लिए देवों ने, पांच दिव्य प्रकट किये। भगवान वहां से भी विहार कर गये, और अप्रतिबन्ध रूप से विचरने लगे। दीक्षा के समय, भगवान के शरीर पर देवों ने सुगन्धित द्रव्य लगाये थे। उस सुगन्ध से आकर्षित हो भ्रमरों ने, भगवान के शरीर को बहुत कष्ट दिया—यहां तक कि शरीर में छिद्र भी कर दिये, लेकिन भगवान, इन सब कष्टों को धैर्यपूर्वक सहते रहे। उनका हृदय, किंचित भी विचलित नहीं हुआ।

प्रथम चातुर्मास में भगवान महावीर, अस्थिक ग्राम में रहे। जिस स्थान पर भगवान चातुर्मास में रहे थे, एक यक्ष, उस स्थान पर किसी मनुष्य को नहीं रहने देता था। भगवान, उस स्थान पर निर्भय होकर रहे और वहीं कायोत्सर्ग किया। रात के समय

वह शूलपाणि यक्ष आया। उसने, भगवान महावीर को अनेक प्रकार के उपसर्ग दिये, लेकिन भगवान अविचल ही बने रहे। जब वह थक गया, तब आश्चर्य में पड़ा और फिर भगवान से क्षमा की प्रार्थना करने लगा। उस समय सिद्धार्थ व्यन्तर ने, उस यक्ष को उपदेश दिया, जिससे उसने समकित प्राप्त की।

चातुर्मास की समाप्ति पर, अस्थिकग्राम से विहार करके भगवान, श्वेताम्बिका की ओर पधारे। श्वेताम्बिका की ओर जाते हुए भगवान से, मार्ग में, ग्वालों के बालकों ने प्रार्थना की, कि प्रभो, यह मार्ग जाता तो सीधा श्वेताम्बिका को ही है, परन्तु मार्ग में, तापसों के आश्रम के समीप, आज कल एक ऐसा सर्प रहता है, कि जिसकी दृष्टि से ही विष चढ़ता है। अतः आप इस रास्ते को छोड़ कर अन्य मार्ग से श्वेताम्बिका पधारिये। ग्वालों के बालकों की यह प्रार्थना सुनकर भी भगवान, यह विचार कर उसी मार्ग से पधारे, कि वह सर्प, बोध पाने के योग्य है। चलते-चलते भगवान, उस सर्प की बांबी के समीप पहुंचे और बांबी के समीप ही कायोत्सर्ग करके खड़े हो गये। कुछ ही समय में वह दृष्टि-विषधारी सर्प बांबी से बाहर निकला। बांबी के समीप खड़े हुए भगवान को देख कर, वह सर्प, बहुत क्रुद्ध हुआ और फन फैला कर, पशु पक्षी मनुष्य तथा वृक्षों को भस्म कर देने वाली विष भरी दृष्टि भगवान पर बार-बार डालने

लगा। सांप की दृष्टि से निकलने वाली विष-ज्वाला, भगवान के शरीर पर पड़-पड़ कर उसी प्रकार निष्फल हुई जिस प्रकार समुद्र पर पड़ी हुई विजली, निष्फल जाती है। अपनी विषदृष्टि को निष्फल देख, सांप का क्रोध और बढ़ गया। वह, एक वार सूर्य की ओर देख कर और इस प्रकार अपने विष को उग्र बना कर, फिर भगवान पर दृष्टि द्वारा विष ज्वाला छोड़ने लगा, परंतु उसे इस तरह भी सफलता न मिली। तब वह क्रोध करके भगवान के समीप आया और इन्द्र द्वारा पूजनीय भगवान के चरण कमल को उसने अपने दांतों से डसा। सांप के डसने से, भगवान को वेदना तो हुई, परन्तु भगवान के शरीर के पुद्गल, विष-पुद्गल से विपरीत थे। इस कारण, भगवान के शरीर में, सर्प के विष का कोई प्रभाव न हुआ। अपितु भगवान के चरण से गौ-दुग्ध जैसी उज्ज्वल खून की धारा, बह निकली सर्प को, वह उज्ज्वल रक्त-धारा, बहुत मीठी लगी। भगवान के चरण से निकलते हुए उज्ज्वल और मीठे रक्त को बार-बार पीकर सर्प विचारने लगा, कि यह अलौकिक पुरुष कौन है! विचारते-विचारते, ज्ञाना वरणीय कर्म का क्षयोपशम होने से सांप को जाति-स्मृति ज्ञान हुआ। भगवान ने, यह समय उपदेश के लिये उपयुक्त देख कर, सांप को उपदेश दिया और सांप से कहा, कि ऐ चण्ड कौशिक! प्रतिबोध पा! जातिस्मृति-ज्ञान से अपने पूर्वभव को

देख कर और भगवान को पहचान कर, सांप ने, नम्रता-पूर्वक भगवान को वन्दन किया और भगवान से अपना अपराध क्षमा कराया।

जिस क्रोध के कारण सांप की योनि पाई, उस क्रोध पर विजय पाने के लिए और मेरी विषदृष्टि से फिर किसी प्राणी को कष्ट न हो, इसलिए, उस सांप ने, अनशन करके, अपना सारा शरीर बांबी से बाहर रख कर, अपना फण बिल में डाल दिया और सम-भाव में मग्न हो गया। सांप की अनुकम्पा के लिये, भगवान भी, बांबी के समीप ही ठहर गये। भगवान को सुरक्षित देख कर, ग्वालों के लड़के भी बांबी के समीप आये। भगवान को सकुशल जीवित और सांप को बांबी में फण किये वहीं पड़ा देख कर, ग्वालों को बड़ा आश्चर्य हुआ। विश्वास करने के लिए वे लड़के वृक्षादि की ओट से उस सांप को पत्थर और ढेले मारने लगे, परन्तु सांप निश्चल ही रहा। तब सांप के समीप आकर वे लड़के, सांप को लकड़ी के हूरे (घोदे) से छेड़ने लगे, लेकिन सांप विचलित न हुआ। सांप की यह दशा देख कर, उन लड़कों ने सब बात और लोगों से कही। अनेक स्त्री-पुरुष वहां एकत्रित हो गये और भगवान एवं मरणोन्मुख सांप को वन्दन करने लगे। पश्चात्, ग्वालिनों ने, सांप के शरीर पर, दूध दही और घी छिड़क कर सांप की पूजा की। घी की गन्ध के कारण, सांप

के शरीर में चींटियां लग गई। चींटियों ने, सांप के शरीर को काटकाट कर चलनी सा कर डाला, फिर भी सांप यही विचारता रहा, कि मेरे पापों की अपेक्षा यह कष्ट न कुछ के बराबर है। बल्कि सांप ने यह विचार कर शरीर को हिलाना भी बंद कर दिया, कि मेरे शरीर हिलाने से, कहीं कोई चींटी दब जावेगी। इस प्रकार वह सांप, क्षमा पूर्वक सब कष्टों को सहता रहा, और शान्त चित्त बना रहा। अंत में पन्द्रह दिन तक अनशन करके, अपने शरीर को भगवान की अमीदृष्टि से सिंचन कराता हुआ सर्प, शरीर छोड़ सहस्रार कल्प में महर्द्धिक देव हुआ।

सर्प का भव सुधारकर और वहां के मनुष्य तथा पशु-पक्षियों का कष्ट निवारण करके भगवान ने चण्डकौशिक सर्प की बांबी के समीप से विहार किया। मार्ग में उत्तर वाचाल ग्राम में नागसेन गृहस्थ के यहां भगवान का पारणा हुआ। वहां दान की महिमा दिखाने के लिए देवों ने, पांच दिव्य प्रकट किये।

उत्तर वाचाल नगर से भगवान ने, श्वेताम्बिका के लिए आगे की ओर विहार किया। जब भगवान गंगा नदी के समीप पहुंचे, तब अन्य लोगों के साथ, गंगा नदी पार करने के लिए नाव में बैठे। भगवान महावीर ने, त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में जिस केसरी सिंह, को मारा था, अनेक भव करता हुआ, वह केसरी सिंह सुदंष्ट्र नाम का देव हुआ था। भगवान को देखकर, उसे पूर्व-वैर

गोशालक ने सुना, तब वह भगवान के लिये विचार करने लगा कि ये मुनि, कोई सामान्य मुनि नहीं हैं, जिसको दान देने वाले के घर रत्न-वृष्टि होती है, वह अवश्य ही कोई लोकोत्तर पुरुष हैं। मैं, चित्रपट को छोड़कर, इन मुनि का शिष्य हो जाऊँ, यही मेरे लिये अच्छा है। गोशालक, इस प्रकार विचारता था, इतने ही में भगवान पधारगये और पुनः कायोत्सर्ग में स्थित हो गये। तब गोशालक, भगवान को नमस्कार करके बोला—भगवन्, मैं अब आपका शिष्य होऊँगा, मेरे लिये आपकी सेवा ही शरण है। गोशालक ने ऐसा कई बार कहा, परन्तु भगवान मौन ही रहे। तब गोशालक, स्वयं ही भगवान का शिष्य बन कर, भगवान के पास रहने लगा।

भगवान ने, दूसरे मास क्षमण का पारणा आनन्द नाम के गृहपति के यहां किया और तीसरे मास क्षमण का पारणा, सुनन्द नाम के गृहपति के यहां किया। तीसरे मास क्षमण का पारणा करके भगवान, पुनः मौन धारण कर ध्यानस्थ रहे। कार्तिकी पूर्णिमा के दिन, गोशालक ने भगवान के लिए विचार किया, कि मैं इनको महाज्ञानी सुनता हूँ, अतः आज परीक्षा करूँ। इस प्रकार विचार कर, गोशालक, भगवान से पूछने लगा, कि हे—प्रभो, आज पूर्णिमा-महोत्सव के कारण घर-घर में उत्तम भोजन बनता है, अतः आज मुझे भिक्षा में क्या मिलेगा?

गोशालक के यह पूछने पर भी, भगवान तो मौन ही रहे, परन्तु सिद्धार्थ व्यंतर ने, भगवान के शरीर में प्रविष्ट होकर गोशालक से कहा, कि—भद्र, आज तुझे कूर और बिगड़े हुए कोदों का भोजन मिलेगा, तथा एक खोटा रुपया दक्षिणा में भी मिलेगा। यह सुनकर गोशालक उत्तम भोजन के लिए दिन भर भ्रमण करता रहा, परन्तु उसे कहीं से कुछ भी न मिला। संध्या समय एक सेवक गोशालक को अपने घर ले गया। वहां उसने गोशालक के आगे वही भोजन रखा, जो सिद्धार्थ व्यंतर ने कहा था। गोशालक, दिन भर का भूखा था, अतः उसने विवश होकर वही भोजन किया। भोजन कराने के पश्चात्, सेवक ने, गोशालक को एक रुपया भी दक्षिणा में दिया. परन्तु परीक्षा कराने पर, वह रुपया खोटा निकला। इस घटना पर से, गोशालक ने यह निश्चय किया, कि जो भावी होता है, वही होता है। इस प्रकार उसने अपने में नियतिवाद को स्थान दिया।

चातुर्मास समाप्त होने के कारण भगवान, नालन्दी से विहार कर गये। गोशालक जब शाम को बुनकर शाला में आया, तो उसने वहां भगवान को नहीं देखा। तब, लोगों से भगवान के विषय में पूछ-ताछ करके गोशालक, भगवान के पास जाने को चला। कोलाक नाम के सन्निवेश में उसने लोगों को यह कहते सुना, कि बहुल ब्राह्मण को धन्य है, जिसने मुनि को दान दिया

और दान प्रभाव से उसके यहां, देवों ने रत्नवृष्टि की। लोगों के मुँह से यह सुन कर गोशालक समझ गया, कि यह बात मेरे गुरु के लिए ही है। भगवान को ढूँढता हुआ गोशालक उस स्थान पर पहुँच गया, जहां भगवान, कायोत्सर्ग किये खड़े थे। वहां, भगवान को वन्दन करके गोशालक प्रार्थना करने लगा, कि—हे प्रभो, मैं, पहले तो आपका शिष्य होने के योग्य न था, परन्तु अब वस्त्रादिक त्याग कर, निःसंग हूँ, अतः आप मुझे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार करिये। यद्यपि आप राग-रहित हैं, परन्तु मेरा मन, आपकी सेवा चाहता है। महापुरुष, किसी की उचित आशा भंग नहीं करते, इस कारण भगवान ने, गोशालक की यह प्रार्थना अस्वीकार नहीं की।

गोशालक, भगवान के साथ ही साथ विचरने लगा। तीसरा चातुर्मास, चम्पा नगरी में बिताने के लिए भगवान, चम्पा नगरी पधारे। वहां भगवान ने, दो दो मास की तपस्या करके चातुर्मास बिताया। तीसरे चातुर्मास में, भगवान के साथ गोशालक भी था। चातुर्मास के पश्चात् भगवान, पुनः कोलाक ग्राम में पधारे वहां, भगवान तो कायोत्सर्ग करके रहे, परन्तु गोशालक अपनी उच्छृंखलता के कारण, कोलाक के राजकुमार द्वारा दण्डित हुआ। चौथे चौमासे में भगवान, पृष्ट चम्पा पधार गये, और वहां चौमासी-तप-पूर्वक कायोत्सर्ग करके रहे। चौमासे के

अनार्यदेश में बहुत कर्म खपा कर भगवान पुनः आर्यदेशकी ओर पधारे और अनेक ग्राम नगर में विचरते हुए पांचवां चौमासा, चौमासी तपयुक्त भद्दिलपुर में विताया। भद्दिलपुर से भगवान ने, विशाला की ओर विहार किया। उस समय गोशालक ने भगवान से कहा—प्रभो, अब मैं आपके साथ नहीं रहना चाहता। क्योंकि लोग जब मुझे मारते हैं, तब आप तटस्थ की तरह देखा करते हैं और जब आप को उपसर्ग होते हैं, तब आपके साथ रहने के कारण मुझे भी उपसर्ग सहने पड़ते हैं। भगवान ने तो मौन धारण कर रखा था इसलिए वे तो कुछ न बोले, लेकिन सिद्धार्थ व्यंतर ने, गोशालक की बात के उत्तर में गोशालक से कहा, कि तू, तेरी इच्छा हो, वैसा कर।

भगवान, विशाला पधारे। विशाला में भगवान एक लोहार की शाला में कायोत्सर्ग करके रहे। वहां, उस लोहार ने भगवान को मारने के लिए लोहा कूटने का घन उठाया, लेकिन देवयोग से वह घन, उसी लोहार पर गिरा, जिससे लोहार मर गया। भगवान, वहां से विहार करके आगे बढ़े।

भगवान नें, छट्ठा चौमासा, भद्रिकापुरी मे बिताया। भद्रिकापुरी में भी भगवान, चौमासी तप पूर्वक कायोत्सर्ग करके रहे थे। विशाला के मार्ग में गोशालक ने भगवान का साथ छोड़ दिया था, लेकिन भद्रिकापुरी में वह फिर भगवान के साथ हो गया।

भद्रिकापुरी से विहार करके भगवान, मगधदेश में विचरने लगे। भगवान ने सातवां चातुर्मास, आलंभिका में, चातुर्मासिक तप करके बिताया। आलंभिका से विहार करके अनेक ग्राम नगर को पावन करते हुए भगवान ने, आठवां चातुर्मास,–चातुर्मासिक तप पूर्वक राजगृह नगर में बिताया।

भगवान ने विचार किया, कि मुझे बहुत अधिक कर्म क्षय करने हैं, अतः इसके लिए मुझे म्लेच्छ देशों में जाना उचित है। इस प्रकार विचार करके चातुर्मास की समाप्ति पर भगवान ने, वज्रभूमि लाट देश की ओर विहार किया। वहां के निवासी म्लेच्छ लोग, भगवान को विविध प्रकार से कष्ट देने लगे लेकिन भगवान––कर्म खपते हैं, इस विचार से–शान्त और आनन्दित ही बने रहे। उस देश में, स्थान न मिलने के कारण भगवान को शीत, तप और वर्षा भी सहन करनी पड़ी, परन्तु धैर्य पूर्वक समस्त उपसर्गों को सहन करते हुए भगवान ने, नववां चातुर्मास उसी अनार्य देश में व्यतीत किया।

अनार्य देश में चातुर्मास विता कर भगवान, सिद्धार्थपुर की ओर पधारे। गोशालक भी साथ ही था। मार्ग में, वैशिकायन नाम का तापस, सूर्य के संमुख मुख करके सूर्य की आतापना ले रहा था। उस तप के प्रभाव से तेजोलेश्या लब्धि प्राप्त हुई थी सूर्य की गर्मी के कारण, वैशिकायन के बढ़े हुए बालों से, जुयें

नीचे गिरती थीं जिन्हें उठा-उठा कर वैशिकायन अपने बालों में फिर रखता जाता था। गोशालक सहित भगवान महावीर, उसी मार्ग से निकले। गोशालक, वैशिकायन के पास जाकर कहने लगा--रे तापस, तू कौन से तत्व जानता है ? तू इन जुओं का शय्यान्तरी है। तू पुरुष है या स्त्री है ? आदि। गोशालक ने इस प्रकार की अनेक बातें कहीं, लेकिन समतावान वैशिकायन तापस कुछ नहीं बोला। तब गोशालक तापस को पुनः पुनः छेड़ने लगा। अंत में तापस, क्रुद्ध हो उठा। उसने गोशालक पर तेजोलेश्या लब्धि का प्रयोग किया। विकराल ज्वाला की तरह तेजोलेश्या से भय पाकर गोशालक, भागकर भगवान के पास आया। तेजोलेश्या से गोशालक को भयभीत देख कर, करुणा सागर भगवान ने गोशालक की रक्षा के लिए उस तेजोलेश्या को शीतल दृष्टि से देखा। भगवान की शीतल दृष्टि से वह तेजोलेश्या उसी प्रकार शांत होगई, जिस प्रकार समुद्र में गिरी हुई बिजली शांत हो जाती है। भगवान की शक्ति देख कर, वैशिकायन विस्मित हुआ और भगवान के पास आकर नम्रता से बोला—प्रभो, मैं आपका ऐसा प्रभाव नहीं जानता था, आप मेरा अपराध क्षमा करें। इस प्रकार क्षमा—प्रार्थना करके वह तापस, अपने स्थान गया।

वैशिकायन तापस के चले जाने के पश्चात गोशालक ने

भगवान से पूछा, कि–प्रभो, तेजोलेश्या लब्धि कैसे प्राप्त होती है ? भगवान ने उत्तर दिया, कि–नियमाधारी होकर छःमास तक बेले-बेले का तप करके पारणे के समय केवल मुट्ठी भर उर्द तथा अंजलि भर जल से पारणा करने से छःमास के अंत में तेजो–लेश्या लब्धि प्राप्त होती है। तेजोलेश्या लब्धि प्राप्त करने का उपाय जानकर, गोशालक भगवान का साथ छोड़ कर तेजोलेश्या लब्धि की प्राप्ति का उपाय करने के लिए श्रावस्ती की ओर चला। श्रावस्ती पहुँच कर वह एक कुम्हार की शाला में ठहर, तेजोलेश्या लब्धि की प्राप्ति के लिए तप करने लगा। छः मास समाप्त होने पर, गोशालक को तेजोलेश्या लब्धि प्राप्त हुई, गोशालक ने परीक्षा के लिए क्रोध करके एक दासी पर तेजो–लेश्या का प्रयोग किया जिससे वह दासी जल कर भस्म होगई। तेजोलेश्या लब्धि मुझे प्राप्त है, यह जानकर गोशालक प्रसन्नता पूर्वक अन्यत्र विचरने लगा। विचरते हुए गोशालक को भगवान पार्श्वनाथ के छः शिष्य मिले, जो अष्टांग महानिमित्त के तो पण्डित थे, परन्तु चारित्र से रहित थे। भगवान पार्श्वनाथ के शिष्यों ने, मित्र-भाव से गोशालक को वह निमित्तज्ञान बता दिया। उस निमित्तज्ञान और तेजोलेश्या लब्धि पर गर्व करता हुआ, गोशालक, अपने आपको जिनेश्वर बताता हुआ विचरने लगा।

जनपद में विचरते हुए भगवान महावीर श्रावस्ती पधारे और भगवान ने, दसवां चातुर्मास श्रावस्ती में ही किया। श्रावस्ती में भी भगवान चातुर्मासिक तप करके रहे थे। चातुर्मास के अंत में पारणा करके भगवान ने श्रावस्ती से विहार कर दिया।

विचरते हुए भगवान महावीर भद्र, महाभद्र और सर्वतो-भद्र तप करने के लिए सोलह दिन तक एक स्थान पर कायो-त्सर्ग पूर्वक किसी एक पदार्थ पर दृष्टि लगा कर रहे। पश्चात उस स्थान से विहार करके पैढाला नगरी के समीपस्थ उद्यान में अष्टम तप पूर्वक एक शिला पर कायोत्सर्ग करके भगवान एक ही पुद्गल पर दृष्टि जमा प्रतिमाधारी हुये।

उस समय सौधर्म सभा में बैठे हुए शक्रेन्द्र ने अवधिज्ञान से भगवान को ध्यान मग्न देखा। वहीं से भगवान को वंदन करके शक्रेन्द्र सभा में भगवान की प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि इन ध्यानस्थ परमात्मा को विचलित करने में कोई भी देव दानव या मनुष्य समर्थ नहीं है। इन्द्र द्वारा की गई भगवान की प्रशंसा सुनकर महामिथ्यात्वी और रौद्रपरिणामी संगम नाम का सामा-निक देव, इन्द्र से कहने लगा——स्वामी आप बार-बार मनुष्य की प्रशंसा करके हम देवों का अपमान करते हैं। कोई भी मनुष्य हम देवों से अधिक सामर्थ्य न रखता होगा। आप जिनकी प्रशंसा करते हैं उनको मैं अभी विचलित करके आपको बताता

हूँ, कि देव, मनुष्यों की अपेक्षा कैसे शक्ति-सम्पन्न होते हैं। संगम देव की बात, इन्द्र को अनुचित तो मालूम हुई, लेकिन इन्द्र यह विचार कर चुप रहे, कि मेरे कुछ बोलने से इस देव को यह कहने को जगह मिल जावेगी, कि इन्द्र की सहायता से ही अरिहन्त तप करते हैं।

दुष्ट प्रकृतिवाला संगम देव, गर्व-पूर्वक भगवान के समीप आया और भगवान को ध्यान से विचलित करने के लिए, बड़े-बड़े उपसर्ग देने लगा। उसने प्रारंभ में रजवृष्टि की। पश्चात वज्रमुखी चींटियां, डांस, प्रचण्ड चोंच वाली धीमेल, बड़े बड़े डंक वाले बिच्छू न्योले, सांप, मूसे, गज, व्याघ्र, पिशाच, सिद्धार्थराजा, त्रिशला रानी, दावानल, चाण्डालादिक क्रूर स्वभाववाले मनुष्य, तीक्ष्ण चोंच वाले पक्षी, प्रचण्ड वायु, वंटोलिया, चक्र, आदि उत्पन्न किये। इसी प्रकार, कामदेव के अस्त्ररूप उपवन सहित स्त्रियां भी वैक्रिय की और एक ही रात में सब मिला कर वीस उपसर्ग भगवान को दिये। संगम द्वारा दिये हुए उपसर्गों से भगवान को पीड़ा तो अवश्य हुई, परन्तु भगवान, ध्यान से किंचित भी विचलित नहीं हुए। जब वह देवता अपने कृत्यों में असफल रहा और थक गया, तब बहुत लज्जित हुआ। सूर्योदय हो जाने से भगवान, प्रतिमा पालकर विहार कर गये, तब भी दुष्ट बुद्धिवाला देव, 'मैं इन्द्र के सामने किस मुँह से जाऊँगा,' इस विचार से,

छः महीने तक भगवान के साथ-साथ रहा। वह देव, जहां भगवान भिक्षा के लिये जाते, वहां पदार्थों को अनेषणिक कर देता और इसी प्रकार भगवान को अन्य भी कष्ट देता रहा। अनेक उपाय करने पर भी जब वह देव, अपने उद्देश में सफल न हुआ, तब निराश हो, ॐभगवान को नमस्कार करके भगवान से प्रार्थना करने लगा—प्रभो! इन्द्र द्वारा आपकी प्रशंसा सुनकर, आपको अप्रशंसनीय बनाने के लिए मैंने, गर्वपूर्वक अनेक कष्ट दिये लेकिन आप उन कष्टों में भी उसी प्रकार धीर बने रहे, जिस प्रकार तपाने पर भी सोना अपनी कान्ति नहीं त्यागता। अब आप मेरे अपराध क्षमा करिये और आहार लाकर पारणा करिये। इस प्रकार भगवान से क्षमा प्रार्थना करके वह संगम देव अपने स्थान को गया।

इन्द्रादि देव, गीत नृत्य बन्द करके, संगम की चेष्टा का परिणाम देख ही रहे थे। छःमास पश्चात जब संगम देव असफल होकर, मलिन मुख और लज्जित बदन से सुधर्मसभा में आया तब इन्द्र ने उसकी ओर से मुंह फेर लिया और उन्होंने उच्चस्वर में सब देवताओं से कहा, कि— यह संगम, महापापी है; इसका मुख देखने से भी पाप लगता है; यदि यह यहां रहेगा, तो इसके पापपुद्गल अपने को भी चिपटना संभव है, अतः इसे देवलोक

ॐऐसा भी सुना है कि नमस्कार अर्ज कुछ भी न करते हुए लज्जित होकर अपने स्थान पर चलागया।

के आज भी तप होगा, भगवान कल पधारेंगे। इस प्रकार आशा-ही-आशा में चार मास बीत गये। चातुर्मास की समाप्ति पर जीर्ण सेठ ने, स्वयं भी इस आशा में पारणा नहीं किया कि आज तो भगवान पधारेंगे ही। भगवान को दान देने की अभिलाषा से जीर्ण सेठ, भगवान के पधारने की प्रतीक्षा करने लगा। किन्तु भिक्षा के समय पर भगवान ने, पूरण श्रेष्ठि के यहां पधार कर पारणा किया। देवों ने, पांच दिव्य प्रकट करके दान की महिमा की। देवदुंदुभी की आवाज सुनकर, जीर्ण सेठ, भगवान के न पधारने से, अपनेआप को मन्दभागी मानने लगा। भगवान को दान देने के लिए जीर्ण सेठ के परिणाम इतने उत्कृष्ठ थे, कि यदि जीर्ण सेठ को दुंदुभीनाद एक घड़ी भर न सुनाई देता, और उसके उत्कृष्ठ परिणामों का प्रवाह न टूट जाता, तो केवलज्ञान प्राप्त हो जाता।

पूरण सेठ के वहां पारणा करके भगवान ने विशाला से विहार किया। विचरते हुए भगवान कौशाम्बी पधारे। कौशाम्बी में तप करके भगवान ने एक महा-कठिन अभिग्रह धारण किया और निश्चय किया, कि यदि अभिग्रह की पूर्ति के साथ मुझे पारणा के दिन आहार मिलेगा, तब तो मैं पारणा करूंगा अन्यथा छः मास तक अन्न न लूंगा। वह इस प्रकार का अभिग्रह किया, कि (१) राजा की कन्या हो, (२) स्वयं दासीपने को प्राप्त

हुई हो,(३)अविवाहिता हो,(४)तीन दिनकी भूखी हो,(५)सिर मुण्डा हो,(६)कछोटा धारण किये हो. (७)एक पांव चौखट [डेहली] के बाहर हो और एक पांव चौखट के भीतर हो,(८)हाथों में हथकड़ी हो,(९)पांवों में बेड़ी हो,(१०)उर्द के बाकले हो, जिन्हें वह सूपके कोने में लिये हो,(११,दान की भावना कर रही हो और(१२)एक आंख हर्षपूर्ण तथा(१३)दूसरी आंख अश्रुपूर्ण हो। ऐसी कन्या से भिक्षा मिलेगी, तभी मैं—इस तप के अन्त में--पारणा करूँगा।

इस प्रकार तेरहबोलों का कठिन अभिग्रह लेकर भगवान विचरने लगे। भगवान को विचरते हुए, पांच दिन कम छः मास हो गये,परन्तु अभिग्रह के अनुसार योग न मिला। कौशम्बी के राजा सन्तानिक और उनकी रानी मृगावती ने, भगवान का अभिग्रह जानने और भगवान को पारणा कराने की बहुत चेष्टा की, परन्तु वे असफल ही रहे। भगवान जहां जाते, बस घर के लोग पहले तो हर्षित होते, लेकिन जब भगवान—-अभिग्रह का योग न मिलने से-बिना आहार लिये वापस जाते, तब लोगों में निराशा और चिन्ता होती।

दोपहर का समय है। सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणों से भूमि को तपा रहा है। लोग, गर्मी से बचने के लिए अपने-अपने घरों में आनन्द कर रहे हैं। ऐसे समय में धनावह सेठ ने, अपने घर के तहखाने में बन्द एक विपद्ग्रस्त राज्यकन्या को, तहखाने से

बाहर निकाला। वह कन्या अत्यन्त रूपवती थी, परन्तु उसका सिर मुँडा हुआ था, हांथों में हथकड़ी और पांवों में वेड़ी पड़ी हुई थी, काछ लगाये थी, तथा तीन दिन की भूखी, भूमिगृह में बन्द थी। उस राजकन्या को वाहर निकाल कर धनावह सेठ, उससे इस दशा में पहुँचने का कारण पूछने लगा। राजकन्या ने, धनावह सेठ को उत्तर दिया, कि--पिताजी, आप मेरा समाचार फिर पूछना, पहले मुझे कुछ खाने को दीजिये, मैं वहुत भूखी हूँ। धनावह सेठ ने अपने घर में इधर-उधर देखा, तो सब दूर ताले लगे हुए थे। केवल घुड़साल में, घोड़ों के लिए उबाले हुए उर्द रखे थे। वहां कोई वर्तन भी न था, केवल एक सूप दिखाई दिया। धनावह सेठ ने उसी सूप में, थोड़ेसे उर्द रखकर राजकन्या को दिये और आप, भोजन, सामग्री लाने के लिए वाजार में चला गया। उर्द के बाकले रखे हुए सूप को लेकर राजकन्या, किसी अतिथि की प्रतीक्षा करती हुई, घर के द्वार में बैठी। यह राजकन्या वही है, जो आगे जाकर भगवान महावीर की प्रधान-शिष्या के रूप में महासती चन्दनबाला के नाम से प्रख्यात हुई।

चन्दनवाला, अतिथि की प्रतीक्षा करती हुई द्वार में वैठी है, इतने ही में, भगवान महावीर, वहां पधारे। भगवान ने देखा, कि अभिग्रह की और वातें तो पूरी हैं, लेकिन एक आंख अश्रुपूर्ण नहीं है। इस कारण भगवान, धनावह सेठ के द्वार

पर से वापस लौट चले। भगवान को लौटते देखकर, सती के दुःख का पार न रहा। उसकी आंख से, अश्रुधारा निकल पड़ी। भगवान ने फिर कर देखा, तो उन्हें, अभिग्रह की तेरहों बातें पूरी दिखाई दी। उसी वक्त धनावह सेठ के द्वार पर पधार कर भगवान ने, कर-पात्र में चन्दनबाला का 'उर्दबाकले' का दान ग्रहण किया। भगवान को दान देते ही, देवताओं ने, चन्दनबाला के हाथ पांव की हथकड़ी-बेड़ी को स्वर्णरत्न के आभूपणों में परिणित कर दिया और शरीर दिव्य अलंकारयुक्त बनाके रत्न-दृष्टि द्वारा दान की महिमा की।

कौशम्बी से विहार करके भगवान चम्पानगरी पधारे। भगवान ने, बारहवां चातुर्मास, चम्पानगरी में--स्वातिदत्त ब्राह्मण की अग्निहोत्र शाला में रहकर--बिताया। चातुर्मास की समाप्ति पर भगवान ने, चम्पानगरी से विहार कर दिया और जनपद में विचरने लगे।

भगवान, विचरते हुए, एक जगह कायोत्सर्ग करके रहे। उस समय त्रिपृष्ट वासुदेव के भव में जिस शैया-रक्षक के कानों में तपाया हुआ शीशा डलवाया था, उस शैया-रक्षक का जीव, ग्वाला हुआ था। भगवान को देखकर ग्वाले ने—पूर्वभव का वैर होनेके कारण द्वेष करके भगवान के कानों में लकड़ी की खूंटियां ठोक दी, और किसी को दिखाई न पड़े, इसलिए उसने खूंटियों

का बाहरी भाग काट कर बराबर कर दिया। भगवान ने, इस वेदना को भी धैर्य-पूर्वक सह लिया, परन्तु वे, ध्यान से विचलित नहीं हुए । वहां से विहार करके भगवान, अपापापुरी पधारे। अपापापुरी में भगवान, भिक्षार्थ, सिद्धार्थ नाम के वणिक के घर गये। सिद्धार्थ के यहां, एक वैद्य बैठा हुआ था। भगवान का दुर्बल मुँह देखकर, वैद्य समझ गया कि ये मुनि शल्य-पीड़ित हैं। उसने, सिद्धार्थ से कहा । अन्त में, सिद्धार्थ की प्रेरणा से वैद्य ने, भगवान के कानों की कीलों को युक्ति-पूर्वक निकाल डाला। कानों की कीलें निकालते समय, भगवान को घोर वेदना हुई। और भगवान के मुँह से, सहसा चीख निकल पड़ी। कीलें निकाल कर वैद्य ने, संरोहिणी औषध द्वारा भगवान के कानों में के घाव बन्द किये।

इस प्रकार के उपसर्गों की शृङ्खला को सम-भाव से सहते रहने के कारण भगवान के घातक कर्म प्रायः नष्ट हो चले थे। उपसर्ग सहने के साथ ही भगवान ने, बारह वर्ष, छः मास और पन्द्रह दिन घोर तप भी किया। उन्होंने नित्य भोजन या उपवास के पारणे में कभी भोजन नहीं किया। भगवान ने सब मिलाकर तीनसौ उनपचास पारणें किये थे। [तीन सौ उनपचास दिन भोजन किया था] शेष दिन तपस्या में ही बिताये थे। तपस्या में, बेले से कम की तपस्या कभी नहीं की, हां, अधिक में छः

मास तक का तप अवश्य किया था। भगवान ने जितना भी तप किया, सब चौविहार किया। भगवान, कभी सोये भी नहीं, उनका लगभग समस्त समय, विहार या कायोत्सर्ग में ही व्यतीत हुआ।

उपसर्गों को सहते और तप करते हुए भगवान, ऋजुबालिका नदी के तट पर स्थित, जृम्भक ग्राम में पधारे। वहां, छट्ठ का तप करके भगवान, शाम गृहस्थ के खेत में उत्कटिक आसन से सूर्य की आतापना लेने लगे। उस समय श्रेणयारूढ़ भगवान के घातिक कर्म क्षय हो जाने से, वैशाख शुक्ल १० को दिन के पिछले पहर में, हस्तोत्तरा नक्षत्र में भगवान वर्द्धमान को सम्पूर्ण केवलज्ञान केवल दर्शन प्राप्त हुआ। भगवान को केवलज्ञान प्राप्त होते ही, क्षणभर के लिए त्रिलोक में उद्योत हुआ और नारकीय जीवों को भी शान्ति मिली।

आसनकम्प से भगवान महावीर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ जान, देव तथा इन्द्र, अपने-अपने परिवार सहित, भगवान को वन्दन करने के लिए आये। समवशरण की रचना हुई, परन्तु सायंकाल का समय था, इसलिए बारह प्रकार की परिषद् के बदले आठ ही प्रकार की परिषद् उपस्थित हुई। भगवान ने, धर्मोपदेश दिया, फिर भी कोई त्याग प्रत्याखान नहीं हुआ। क्योंकि, परिषद् में, चार जाति के देव और देवियां ही उपस्थित थीं और देव के चारित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम

नहीं होता, किन्तु उदय में ही रहता है। इस कारण भगवान का उपदेश होने पर भी कोई त्याग-प्रत्याख्यान नहीं हुआ। यह आश्चर्य की घटना भी, इस अवसर्पिणी काल के प्रभाव से ही घटी। क्योंकि, केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात तीर्थङ्करों द्वारा दिया गया प्रथम उपदेश, सफल ही होता है, निष्फल नहीं होता; लेकिन भगवान महावीर द्वारा दी गई यह देशना, फल-शून्य रही।

जृम्भक ग्राम से भगवान ने, मध्य-अपापा नगरी की ओर विहार किया। वहां, एक बड़ा भारी यज्ञ हो रहा था, जिसके लिए धुरन्धर विद्वान ब्राह्मण एकत्रित हुए थे। भगवान का समवशरण, अपापा नगरी के महासेन वन में हुआ। भगवान के उस समवशरण में, इन्द्रों और देव-देवियों का आगमन विशेष रूप से होता था।

अपापा नगरी में, सोमल ब्राह्मण ने यज्ञ करने के लिए इन्द्रभूति आदि ग्यारह धुरन्धर विद्वानों और हजारों ब्राह्मणों को बुलाया था। वे सब यज्ञ कर रहे थे, इतने ही में, भगवान के समवशरण में जाते हुए देव उधर से निकले। देवों को देख कर, इन्द्रभूति उपाध्याय, सब से कहने लगे, कि—देखो, यज्ञ के लिए मन्त्र से बुलाये हुए देवता, प्रत्यक्ष यहां आ रहे हैं! इन्द्रभूति की बात सुनकर सब लोग, देवों की तरफ देखने लगे, लेकिन देव, यज्ञवेदि पर न आकर, यज्ञ-स्थल से आगे निकल

गये। तब इन्द्रभूति गर्व-पूर्वक कहने लगे, कि--मनुष्य तो भूलते ही हैं, परन्तु देव भी भूलते हैं! इतने ही में किसी ने कहा, कि महासेन वन में, सर्वज्ञ भगवान महावीर पधारे हैं और ये देवगण, उन्हीं को वन्दन करने जा रहे हैं। यह सुनकर इन्द्रभूति कहने लगे--क्या कोई और भी सर्वज्ञ है? मैं अभी जाकर सर्वज्ञ कहानेवाले महावीर का गर्व दूर करता हूँ।

अपने पाँच सौ शिष्यों को साथ लेकर इन्द्रभूति, भगवान महावीर के समवशरण में आये। भगवान की शान्त-मुद्रा देख कर, इन्द्रभूति के विचार कुछ और ही हो गये। इतने ही में, भगवान के मुख से 'हे इन्द्रभूति गौतम, तुम आये?' यह सुन कर इन्द्रभूति आश्चर्य में पड़ गये, कि ये मेरा नाम कैसे जानते हैं! फिर यह विचार कर उन्होंने अपना आश्चर्य मिटाया, कि मेरा नाम प्रसिद्ध है इसलिये ये जानते हों तो कोई आश्चर्य नहीं। मेरा नाम ठाम बता देने के कारण ही मैं इन्हें सर्वज्ञ नहीं मान सकता, सर्वज्ञ तो तभी मान सकता हूँ, जब ये मेरे हृदय के संशय को जानकर उसे मिटावें। इन्द्रभूति इस प्रकार का विचार कर ही चुके थे, कि भगवान ने कहा—हे इन्द्रभूति, तुम्हारे हृदय में जीव विषयक शंका है, कि जीव है या नहीं? परन्तु वास्तव में जीव है, और इन-इन प्रमाणों से जीव का अस्तित्व सिद्ध है। अपने हृदय का संशय और उसका समाधान सुनकर,

इन्द्रभूति, भगवान को नमस्कार करके कहने लगे, कि—हे प्रभो, मैंने अज्ञान वश गर्व किया था, परन्तु आपने मेरा अज्ञान मिटा दिया, जिससे मेरा गर्व भी दूर हो गया। अब आप कृपा करके मुझे अपना शिष्य बनाइये। इस प्रकार भगवान से प्रार्थना करके अपने पांच सौ शिष्यों सहित इन्द्रभूति गौतम, भगवान के समीप संयम में, प्रवर्जित हो गये।

शिष्यों सहित इन्द्रभूति के संयम में प्रवर्जित होने का समाचार सुनकर, अग्निभूति विचारने लगे, कि मेरे भ्राता इन्द्रभूति मायावी द्वारा छले गये हैं; अतः मैं जाकर उस मायावी को जीतूँगा और अपने भाई को लिवा लाऊँगा। इस प्रकार विचार कर अपने पांच सौ शिष्यों सहित अग्निभूति भी भगवान के पास आये, लेकिन अपने हृदय के कर्म विषयक संशय का समाधान भगवान से सुनकर, अपने शिष्यों सहित अग्निभूति भी संयम में प्रवर्जित हो गये। इन्द्रभूति और अग्निभूति की ही तरह—यज्ञ कराने के लिए आये हुए ग्यारह विद्वानों में से शेष—नौ विद्वान भी अपने-अपने शिष्यों सहित भगवान के पास संयम में प्रवर्जित हो गये। भगवान ने, इन ग्यारह विद्वान शिष्यों को त्रिपदी का उपदेश दिया, जिससे उन्होंने द्वादशांगी की रचना की। भगवान ने उन ग्यारहों को गणधर पद पर नियुक्त किया।

जिनके हाथ से उर्द-के बाकले लेकर भगवान ने पारणा किया

था, उस सती चन्दनबाला ने यह प्रण किया था, कि भगवान महावीर को केवलज्ञान होते ही, मैं, भगवान महावीर के पास दीक्षा लूँगी। देवों ने, चन्दनबाला को भगवान की खबर दी तब वह सेवा में उपस्थित हुई, वहां उपस्थित अन्य स्त्रियों सहित चन्दनबाला ने भगवान का उपदेश सुना, जिससे उन सब स्त्रियों को संसार से वैराग्य हो गया और उन्होंने, चन्दनबाला के नेतृत्व में भगवान के पास से संयम स्वीकार किया।

पश्चात भगवान जनपद में विचरने लगे। एक समय भगवान, विचरते हुए ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में पधारे। वहां की परिषद, भगवान को वन्दन करने के लिए आई, जिसमें ऋषभदत्त ब्राह्मण और उसकी पत्नी देवानन्दा भी थी। सब लोग, भगवान को वन्दना करके बैठ गये। उस समय, देवानन्दा को आप ही आप ऐसा हर्ष हुआ, कि रोमांच हो आया और उसके स्तनों से दूध की धारा निकल पड़ी। देवानन्दा की प्रसन्नता और उसके स्तनों से निकलती हुई दूध की धारा देखकर, श्री इन्द्रभूति गणधर ने, भगवान से इसका कारण पूछा। भगवान ने उत्तर में फरमाया—हे इन्द्रभूति गौतम, यह देवानन्दा मेरी माता है। दसवें स्वर्ग का आयुष्य पूर्ण करके मैं इसी के गर्भ में आया था। बयासी रात तक देवानन्दा के गर्भ में रहा। पश्चात, इन्द्र की आज्ञा से हरिणगवेषी देव ने, मुझे त्रिशला देवी के गर्भ में पहुँचाया

भगवान के मुख से यह वृत्तान्त सुनकर, ऋषभदत्त और देवानन्दा को बड़ा ही आश्चर्य और हर्ष हुआ। वे अपने मन में कहने लगे, कि पूर्व-पुण्य की न्यूनता से हम, इस विभूति को अपने यहां न रख सकें। अन्त में संसार की अनित्यता को समझ, ऋषभदत्त और देवानन्दा संयम में प्रवर्जित हो गये और कर्मक्षय करके दोनों ने सिद्ध पद प्राप्त किया।

गौशालक, भगवान के पास से तभी से पृथक् हो गया था, जब भगवान छद्मस्थ थे। तेजोलेश्या की लब्धि और अष्टांग निमित्त के ज्ञान से गर्वित गौशालक, अपने आप को सर्वज्ञ कहता और जिनेश्वर मानता हुआ, श्रावस्ती में आया था। इधर विचरते हुए भगवान भी श्रावस्ती पधारे। भगवान के शिष्य आनन्द नामके स्थविर मुनि, श्रावस्ती नगर में गये थे। वहां उन्होंने यह सुना कि गौशालक सर्वज्ञ है। वे, भगवान के पास आकर भगवान से पूछने लगे—हे प्रभो, क्या गौशालक, सर्वज्ञ है? भगवान ने गौशालक का समस्त पूर्व-वृत्तान्त, प्रकट कर दिया। भगवान द्वारा प्रकट किया हुआ गौशालक का पूर्व-वृत्तान्त, श्रावस्ती नगरी में फैल गया, जिससे गौशालक बहुत क्रुद्ध हुआ और जब आनन्द मुनि, गौशालक के निवासस्थान के पास से निकले तब गौशालक ने उनसे कहा, कि—तेरा धर्माचार्य, सभा के मध्य मेरी निन्दा करता है, परन्तु वह मेरी शक्ति को नहीं जानता! मैं तेरे,

धर्माचार्य को उसके शिष्यों सहित जला कर भस्म कर दूँगा! आनन्द मुनि ने, लौटकर गौशालक की कही हुई बात भगवान से कही और भगवान से प्रश्न किया, कि—हे प्रभो, क्या गौशालक आपको जलाने में समर्थ है? भगवान ने उत्तर दिया, कि—सर्वज्ञ तीर्थंकर पर गौशालक की शक्ति नहीं चल सकती, हां, वह संताप अवश्य दे सकता है। इतने ही में, गौशालक, भगवान के पास आया और भगवान को यद्वा-तद्वा बोलने लगा। भगवान के शिष्य, सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनि को गौशालक की बात बुरी लगी, इससे उन्होंने गौशालक से कहा कि—रे गौशालक, जिन गुरु की कृपा से तू जीवित रह सका है, उन्हीं गुरु को इस प्रकार बोलता है। सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनि का कथन सुन कर गौशालक का क्रोध बढ़ गया। उसने, इन दोनों मुनि पर तेजोलेश्या छोड़ी, जिससे दोनों मुनि, मृत्यु को प्राप्त हुए और देव गति में उत्पन्न हुए। पश्चात जब भगवान ने गौशालक को शिक्षा रूप कुछ कहा, तब गौशालक ने भगवात पर भी तेजोलेश्या का प्रयोग किया; लेकिन भगवान पर तेजोलेश्या अपना भस्म करने का प्रभाव न दिखा सकी। वह, भगवान की प्रदक्षिणा करके वापस लौट गई और उसे छोड़नेवाले गौशालक में ही प्रवेश कर गई; जिससे गौशालक को पीड़ा हुई और वह, सातवें दिन मर गया। गौशालक की छोड़ी हुई तेजोलेश्या की हवा की झपट लगने से, भगवान के शरीर में भी छः मास तक रक्तस्राव

की पीड़ा रही, जो रेवती के यहां के बिजोरापाक से शमन हुई।

जमाली–जो भगवान के भानजे और जामाता थे–ने भी, संसार से विरक्त होकर भगवान के पास दीक्षा ली थी। लेकिन जब वे बीमार हुए, तब उनकी श्रद्धा पलट गई। अन्त में वे, भगवान के वचन से प्रतिकूल हो गये और काल करके किलविषि में उत्पन्न हुए।

भगवान श्री महावीर, साढ़े छः मास कम तीस वर्ष तक केवली पर्याय में रहे। भगवान के इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधर थे। चौदह सहस्र मुनि थे। चन्दनबाला आदि छत्तीस सहस्र आर्यिका थी। शंख आदि एकलाख उन्सठहजार श्रावक थे और तीनलाख अठारहहजार श्राविका थीं। भगवान के मुनियों में से तीनसौ मुनि पूर्वधारी थे। चारसौ चर्चावादी थे। पांचसौ मनःपर्ययज्ञानी थे। सातसौ केवलज्ञानी थे। सातसौ वैक्रिय लब्धि के धारक थे। आठसौ, अनुत्तरविमानगामि और तेरहसौ, अवधिज्ञानी थे। आर्यिकाओं में से चौदहसौ आर्यिका केवल-ज्ञानी हुईं।

चतुर्थकाल से तीनवर्ष साढ़ेआठमास शेष रहे तब, कार्तिक कृष्णा आमावस्या की रात को, स्वाती नक्षत्र आने पर, छट्ठ भक्त के अनशन में, भगवान महावीर, सोलह पहर तक

निरन्तर उपदेश देते हुए अयोगी अवस्था को प्राप्त हो, सब कर्मों को क्षय करके निर्वाण पधारे। इन्द्र, देवताओं और मनुष्यों ने, अश्रुपूर्ण नेत्र से, भगवान के त्यागे हुए शरीर का अन्तिम संस्कार किया।

जिस रात में भगवान महावीर सिद्ध गति को प्राप्त हुए, उसी रात में इन्द्रभूति गौतम को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। नव गणधर, भगवान के मोक्ष पधारने से पहले ही मोक्ष पधार चुके थे, इसलिए भगवान के पट्ट पर सौधर्म स्वामी नाम के पंचम गण-धर को नियुक्त किया गया। सुधर्मा स्वामी की परम्परा ही आज विद्यमान है जो पंचमकाल के अन्त तक रहेगी।

भगवान महावीर, अट्ठाईस वर्ष तक गृहस्थाश्रम में रहे। दो वर्ष तक भाव-यतिपने में रहे। बारह वर्ष साढ़े छः मास छद्मस्थ-अवस्था में और कुछ कम तीस वर्ष केवली पर्याय में रहे। इस प्रकार सब बहत्तर वर्ष का आयुष्य भोगकर भगवान श्री पार्श्वनाथ के निर्वाण को ढाईसौ वर्ष बीत जाने पर निर्वाण पधारे।

प्रश्न—
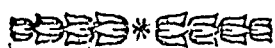
१—भगवान श्री महावीर ने मरीचि के भव में किस कारण नीच गोत्र का उपार्जन और महामोहनीय कर्म का बंध किया था ?

२—भगवान के त्रिपृष्ट वासुदेव के भव में कौन २ से कार्य ऐसे हुए थे, कि जिनके कारण वे प्रसिद्ध हुए। इसी प्रकार, किन कार्यों द्वारा त्रिपृष्ट वासुदेव ने महानिकाचित असातावेदनीय कर्म उपार्जन किया ?

३—भगवान महावीर ने पूर्व के किस भव में तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन किया था ?

४—देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में भगवान का जीव किस स्थान से, कितना आयुष्य भोगकर आया था और फिर त्रिशिला देवी के गर्भ में किस कारण और कैसे गया ?

५—भगवान का नाम वर्द्धमान किस कारण रखा गया था ?

६—किस घटना से प्रभावित होकर भगवान ने माता-पिता को अपने वियोग का दुःख न देने का प्रण किया था ?

७—भगवान महावीर के भाई, भगवान की पत्नी, बहन तथा पुत्री, भगवान के माता-पिता और जामाता का नाम क्या था ?

८—भगवान् की जन्मतिथि, दीक्षातिथि, केवलज्ञानतिथि और निर्वाणतिथि बताओ ?

९—छद्मस्थपने में भगवान के चातुर्मास कहां-कहां हुए और कितने-कितने ?

१०—भगवान ने सब कितना तप किया था और किसी तप के साथ कोई कठिन अभिग्रह भी लिया था ? यदि लिया था तो कैसा और वह किसके द्वारा किस प्रकार पूरा हुआ ?

११—संगमदेव ने, भगवान को क्यों और किस रूप में उपसर्ग दिये थे, तथा उभयपक्ष के लिए क्या परिणाम हुआ ?

१२—भगवान महावीर और गोशालक के बीच कौन-कौन-सी घटना घटी थी और परिणाम क्या निकला ?

१३—चण्डकौशिक सर्प और भगवान के बीच क्या घटना घटी थी ?

१४—भगवान, अनार्य देश में क्यों पधारे थे और वहां क्या-क्या कष्ट भोगने पड़े ?

१५—भगवान ने गोशालक पर क्या उपकार किया था ?

१६—भगवान के सर्व प्रथम शिष्य का नाम क्या था ? किस घटना के वश वे भगवान के शिष्य हुए थे ?

१७—भगवान महावीर के तीर्थ की भिन्न-भिन्न संख्या क्या थी ?

१८—जमाली के विषय में क्या जानते हो ?

१९—भगवान महावीर और भगवान अरिष्टनेमि के निर्वाण में कितने काल का अन्तर रहा है ?
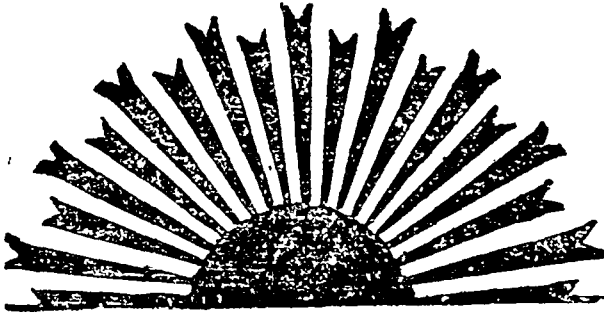
उपसंहार

संसार में तीर्थंकर-भगवान उत्कृष्ट पुरुष माने जाते हैं। वे जगत-जीवों के उपकारी होने के कारण इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र एवं नरेन्द्र भी उनके चरणों में सिर झुकाते और अपने को कृत्य-कृत्य मानते हैं। अन्य धर्मों में अवतारों के विषय में जैसा असंगत वर्णन है वैसा असंगत वर्णन जैन धर्म में नहीं है। जैनधर्म किसी व्यक्ति विशेष को महत्व नहीं देता। वह कर्म प्रधान सिद्धान्त का समर्थक है। ऊपर के चरितानुवाद से भलीभांति प्रकट है कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी सद्‌गुणों का सेवन करने में उन्नति की चर्मसीमा तक पहुँच सकता है और संसार में महापुरुष माने जाने पर भी सद्‌गुणों का त्याग करने एवं मोहमाया में लिप्त रहने से दुर्गति का अधिकारी बन जाता है। तीर्थङ्कर भगवान भी हमारे जैसे मनुष्य ही होते हैं; अन्तर केवल गुणों का है। प्रत्येक आत्मा को अपनी उन्नति करने और तीर्थंकर बनने का अधिकार है। तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करने के लिए सम्यक्त्व पूर्वक बीस बोलों का आराधन आवश्यक है जो शास्त्रकार ने इस प्रकार बताये हैं।

अरिहन्तसिद्ध पवयण, गुरुथेरबहुस्सुए तवस्सीसु ।
वच्छल्लया य तेसिं, अभिक्ख नाणोवओगेय ॥१॥
दंसणविणय आवस्सएय, सीलव्वए निरइयारे ।
खणलव तवच्चियाए, वेयावच्चे समाहिए ॥२॥
अपुव्वनाण गहणे, सुयभत्तीपवयणे पभावणया ।
एएहिं कारणेहिं तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥३॥

अर्थात्–१—अरिहन्त २—सिद्ध भगवन्त के गुणानुवाद करना ३—प्रवचन की आराधना करना ४—शास्त्रोक्त गुणधारी गुरु महाराज ५—स्थविर ६—बहुश्रुति ७—तपस्वी इनके भी गुणानुवाद करना ८—प्राप्त ज्ञान का बार-बार चिन्तन-मनन करना ९—श्रद्धा (सम्यक्त्व) की शुद्धि करना १०—गुरुजन का विनय करना ११—कालोकाल आवश्यक (प्रतिक्रमण) करना १२—सदाचार (अहिंसव्रतादि का निरतिचार पालन) का सेवन करना १३—शुभ और शुद्ध ध्यान ध्याना १४—बारह प्रकार का तप करना १५—अभयसुपत्रादि दान देना १६—गुरुजन एवं आश्रितों की सेवा (वैयावाच्च) करना १७—चारों तीर्थ का वात्सल्य करना १८—नया-नया अपूर्वीय ज्ञान सम्पादन करना १९—सूत्र सिद्धान्तों का बहुमान करना २०—उपदेश व कार्यों द्वारा जैनधर्म को दिपाना ।—उपरोक्त बोलों का उत्कृष्ट भाव से सेवन करने वाला व्यक्ति ही तीर्थंकर होता है।

विशेष की नहीं । जो जैसा करता है वैसा ही वह पाता है।
इस चरित्र से हमे यह शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये कि, हम भी दुर्गुणों और दुर्व्यसनों को त्याग, सद्गुणों को अपनावें; जिससे हम भी अपनी आत्मा को पूजक से पूज्य बनालें।

यहां प्रश्न यह होता है कि यदि जैनधर्म कर्म प्रधान है तब हमें तीर्थंकरों का चरित्र पढ़ना और उनका भजनस्मरण क्यों करना चाहिये। इससे क्या लाभ है ? इसका समाधान यह है कि—

(१) तीर्थंकर भगवान का चरित्र हमारे लिए मार्ग-दर्शक है, इसके सहारे, हम भी अपनी आत्मा को उस दशा के लिए अग्रसर कर सकते हैं।

(२) तीर्थंकरोंका जन्म जगत के कल्याणार्थ होता है। वे जगत-वासी जीवों को वस्तुस्थिति का सच्चा ज्ञान करा देते हैं, जिससे संसार के जीव स्व पर कल्याण करने में समर्थ हो जाते हैं।

(३) तीर्थंकरों के पांचों कल्याण एवं जीवन की एक—एक घटना, महत्ताओं से भरी हुई और बोधप्रद है, जो वाचक ऊपर अवलोकन कर ही चुके हैं।